दण्डि स्वामि विश्वेश्वर तीर्थ

१६०

दण्डि स्वामि बिस्वेश्वरानंदतीर्थ

व/१८

कुम्भकके अष्टभेद

१ सूर्यभेद ५ भस्त्रिका
२ उज्जाई ६ भ्रामरी
३ सीत्कारी ७ मूर्छा
४ सीतली ८ प्लावनी

2/

4/2

पुस्तक मिलने का पता

नाम सोमासन और अक्षय युवावस्था

भारतवासी प्रेस
दारागंज इलाहाबाद

॥ ॐ ॥

योगवासिष्ठान्तर्गत-

वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण ।

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

संवत् १९९१, शके १८५६.

1934

मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

प्रस्तावना.

परमात्मने नमः ।

ब्रह्मरूप अरु ब्रह्मवित्, ताकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेदभ्रम छेद ॥

वेदांत विषे यह " योगवासिष्ठ " ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है यह ग्रन्थ मूल संस्कृतमें है तिसका कर्त्ता वाल्मीकि ऋषि है. तिसपर कोई विद्वान्‌ने टीका करी है. यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन है. इसकी भाषा कोई परमार्थी साधु पुरुषने करी है तिनका नाम ज्ञात नहीं है. ऐसा सुना है कि योगवासिष्ठकी कोई महात्मा पुरुष कहूँ कथा करते थे तहाँ इस भाषाके करनेवाले साधु श्रवण वास्ते प्रति दिन जाते थे, श्रवण करिके आश्रमपर आतेथे और जैसा सुनते थे वैसाही व्याख्यान सहित लिखते जाते थे, ऐसे करिकै योगवासिष्ठ ग्रन्थकी भाषा तिस साधु पुरुषने सम्पूर्ण करी. इस रीतिसे यह ग्रन्थ भया है और तिस कारणते इसकी भाषा अति सुगम भई है और वह साधु पुरुष अनुभवी थे याते कहीं भी सिद्धांत विरोध वाक्य इसमें नहीं देखपडते हैं. भाषा पढनेवाले मुमुक्षु जनोंपर तिस कृपालु साधु पुरुषका वडा उपकार भया है.

सब मिलिके इस ग्रन्थके षट् (६) प्रकरण हैं, सो सब छपे हैं, परंतु तिसकी वडी कीमत होनेसे सर्वको उपयोगी नहीं होवै है तिस कारणते और मुमुक्षु जनोंको आरम्भके दो प्रक-

रण अति उपयोगी धारिके ये दोनों प्रकरण बडे अक्षरों (टाइपों) में मैंने छपायें हैं इसकी कीमत लघु होनेते सर्वको इसका उपयोग सहजमें होवेगा.

इन दो प्रकरणोंनें ही वेदान्त सिद्धान्त इतना दिखाया है कि, जो कोई शास्त्र रीतिसे इसका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करे तो अवश्यमेव मोक्षकी प्राप्ति होवे. वैराग्य प्रकरणमें इस जगत्की असत्यता ऐसी स्पष्ट दिखाई है जो श्रवणमात्रते पुरुषकी वृत्ति वैराग्यवाली हो आवै है और तिसकरी जगत्जालसे छूटनेकी तिस पुरुषको इच्छा हो आवै है.

परमानन्दकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति अर्थ मुमुक्षुको विचारही कर्त्तव्य है और तिसकरिके ज्ञान होवे है, ऐसा इस ग्रन्थके मुमुक्षु प्रकरणके "विचार" वर्णनमें भलीप्रकार वर्णन किया है, जगत्के तुच्छ पदार्थनकी प्राप्ति अर्थ पुरुष बहुत वर्षोंपर्यन्त पुरुषार्थ करते हैं तब वाञ्छित पदार्थकी प्राप्ति होती है. जगत्के कोई भी पदार्थ मोक्षके समान नहीं हैं, मोक्षकी प्राप्तिका मनुष्य जन्म हेतु है, याते तिसकी प्राप्ति अर्थ पुरुषको दृढ अभ्यास करना चाहिये.

इस ग्रन्थके विचारमें और अद्वितीयके बोधक प्रक्रिया ग्रन्थोंका गुरुमुखसे श्रवण अपेक्षित है; काहेते जो मुमुक्षु प्रकरणमें पृष्ठ २२३ पर कहा है—जो पद पदार्थको जाननेहारा होवे अरु इसको वारम्वार विचारे. तब तिसका दृश्य भ्रम नाश पावे. इस शास्त्रके विचारविषे और किसी तीर्थ, तप, दान

आदिकी अपेक्षा नहीं; जहां स्थान होवै तहां बैठे; जैसा भोजन गृहविषे होवै तैसा करै अरु वारम्वार इसका विचार करै; तब अज्ञान नष्ट हो जावे अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवे.

इस ग्रन्थमें बहुत पुनरुक्ति दृष्टि आती हैं. सो दूषण नहीं है. किन्तु ग्रन्थका भूषण है, काहेते जो इस शास्त्रका विषय दुर्बोध है, याते एकही दृष्टांत वा सिद्धांतका वारम्वार श्रवण अथवा विचार मुमुक्षुको दृढता निमित्त उपयोगी है.

अपनी तरफसे इस ग्रन्थमें कछु अधिक न्यून नहीं किया है. विचारमात्रकी सरलताके अर्थ प्रसंगोंको भिन्न भिन्न कर दिये हैं. इस ग्रन्थके छपनेमें चक्षु दोष करि कोई चूक रही होवे तो सुज्ञ जन सुधारिकै बाचैंगे ऐसी इस संतोंके सेवककी विनती है.

मुमुक्षुओंका कृपाकांक्षी—
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण—बम्बई.

ॐ ।

विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
वैराग्यप्रकरण.		सर्वांतप्रतिपादन	.... १२५
कथारम्भ	१	वैराग्यप्रयोजन	.... १२८
तीर्थयात्रा	.... १४	अनन्यत्याग	.... १३०
विश्वामित्रागमन	.... १९	देवसमाज	.... १३३
विश्वामित्रेच्छा	.... २६	मुनिसमाज	.... १३४
दशरथोक्ति	.... २९	**मुमुक्षुप्रकरण.**	
रामसमाज	.... ३३	शुकनिर्वाण	.... १३८
राम वैराग्य	.... ४४	विश्वामित्रोपदेश	.... १४१
लक्ष्मी तिरस्कार	.... ४९	असंख्यसृष्टिप्रतिपादन	.... १४५
संसारसुखनिषेध	.... ५२	पुरुषार्थोपक्रम	.... १४९
अहंकार दुराशा	.... ५५	पुरुषार्थ	.... १५१
चित्तदौरात्म्य	.... ५९	परमपुरुषार्थ	.... १५६
तृष्णा गारुडी	.... ६४	पुरुषार्थउपमा	.... १६०
देहनैराश्य	.... ७०	परमपुरुषार्थ	.... १६४
बालावस्था	.... ८०	वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमन	.... १७१
युवागारुडी	.... ८४	वशिष्ठोपदेश	.... १७७
स्त्रीदुराशा	.... ९१	तत्त्वज्ञमाहात्म्य	.... १८४
जराअवस्था	.... ९६	शमवर्णन	... १८९
कालवृत्तान्त	.... १०१	विचारनिरूपण	.... १९९
कालविलास	.... १०६	संतोषवर्णन	.... २०१
कालकालिका	.... १०७	साधुसङ्ग	.... २०९
कालविलास	.... ११०	षट्प्रकरणविवरण	.... २१३
सर्वपदार्थभाव	.... ११४	दृष्टांतवर्णन	.... २१९
जगद्विपर्यय	.... १२०	आत्मप्राप्ति	.... २३०

इति विषयानुक्रमणिका ।

श्रीः ।

परमात्मने नमः ।

श्री योगवासिष्ठ ।

वैराग्यप्रकरण प्रारंभ ।

प्रथमः सर्गः १ ।

अथ कथारंभ वर्णन ।

सत्-चित् आनंदरूप जो आत्मा है तिसको नमस्कार है. सो कैसा है जिसते यह सब भासता है। अरु जिस विषे यह सर्व लीन होता है, अरु जिस विषे यह सब स्थित है तिस सत्य आत्माको नमस्कार है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया जिस करके सिद्ध होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है तिसको नमस्कार है जिस आनंदके समुद्रके कणसों संपूर्ण विश्व-आनंदवान् है. अरु जिस आनंद करि सर्व जीव जीवते हैं, अरु तिस आनंद-आत्माको नमस्कार है.

कोई एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यमुनिका शिष्य होता भया तिसके मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ, तिसको निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्यमुनिके आश्रमको गमन किया. जायकर विधिसंयुक्त प्रणाम करि स्थित भया और नम्र-भावसों प्रश्न करने लगा.

सुतीक्ष्णोवाच—हे भगवन् ! सर्व तत्त्वज्ञ, सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता, एक संशय मुझको है सो तुम कृपा करके निवृत्त

करो मोक्षका कारण कर्म है, कि ज्ञान है कि दोनों हैं ? याते जो मोक्षका कारण होय सो कहो.

अगस्त्योवाच–हे ब्रह्मण्य ! केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं और केवल ज्ञानते भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता किन्तु दोनों करके मोक्षकी प्राप्ति होती है. कर्म करके अंतःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होता. और अंतःकरणशुद्धि विना केवल ज्ञानते भी मुक्ति नहीं होती अर्थ यह–जो शास्त्रका तात्पर्य ज्ञानका निश्चय वह अंतःकरण शुद्ध हुए विना ज्ञानकी स्थिति नहीं होती. ताते दोनों करके मोक्षकी सिद्धि होती है. कर्म करके प्रथम अंतःकरणकी शुद्धि होती है, पुनः ज्ञान उपजता है; तब मोक्षकी सिद्धि होती है. जैसे दोनों पंख करके पक्षी आकाशमार्गको सुखसे उडता है तैसे कर्म और ज्ञान इन दोनों मोक्ष सिद्ध होता है. हे ब्रह्मण्य ! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है, सो तू श्रवण कर.

एक कारण नाम ब्राह्मण अग्निवेशका पुत्र था, सो गुरुके निकट जाकर चार वेद षडङ्ग सहित अध्ययन करता भया. अध्ययन करके घरको आवत भया. और कर्मते रहित होयकर चुप रहा. अर्थ यह–जो संशययुक्त होय कर्महीते रहित भया तब पिताने देखा जो यह कर्मते रहित होयकर स्थित भया है. ऐसा देखके इस प्रकार कहत भया–

अग्निवेशोवाच–हे पुत्र ! कर्मकी पालना क्यों नहीं कर्त्ता और तू कर्मके न करने सिद्धताको कैसे प्राप्त होवेगा ? जिस करके तू कर्मसे रहित हुआ है, सो कारण कहिदे.

कारणोवाच–हे पिताजी ! एक संशय मुझको उत्पन्न हुआ है. तिस करके मैं कर्मसे चुप हो रहा हूँ सो श्रवण करो वेदने एक ठौर कहा है कि, जबलग जीवता रहै तब लग कर्मको करना, जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं, सो कर-ताई रहै और ठौर कहा है कि, धन करके मोक्ष होता नहीं और कर्म करके मोक्ष होता नहीं और पुत्रादिक करके मोक्ष होता नहीं. केवल त्यागते मोक्ष होता है। इन दोनों विषे मुझको क्या कर्त्तव्य है ? यह संशय है। सो तुम कृपा करके निवृत्त करो कि, क्या कर्त्तव्य है ?

अगस्त्योवाच–हे सुतीक्ष्ण ! ऐसे जब कारणने पिताको कहा तब तिसका वचन सुन अग्निवेश कहत भया.

अग्निवेशोवाच–हे पुत्र ! एक कथा मुझसे तू श्रवण कर जो पहिले हुई है, तिसको सुनकर हृदय विषे धरके, आगे जो तेरी इच्छा होय सोई करना.

एक सुरुचि नाम अप्सरा थी, सो जितनी अप्सरायें थीं तिनके विषे उत्तम थी. सो एक समय हिमालयके शिखरपर बैठी थी, सो हिमालय पर्वत कैसा है कि कामना करके संपन्न जो हृदयमें बिचारे सो पावे, तहां देवता

और किन्नरके गण अप्सराके साथ क्रीडा करते हैं. औ
कैसा है. जहां गंगाजीका प्रवाह लहरी देती चली आती
है सो गंगा कैसी है कि, महापवित्र जल है जिसका ऐसे
शिखरपर सुरुचि अप्सरा बैठी थी तिसने इंद्रका दूत अंत-
रिक्षते चला आता देखा, जब निकट आया तब अप्सराने
कहा, अहो सौभाग्य देवदूत ! तू देवगणमें श्रेष्ठ है, तू
कहांसे आया और कहां जायगा ? सो कृपा करके कहि दे.

देवदूतोवाच–हे सुभद्रे ! तैंने पूछा है सो श्रवण कर
अरिष्टनेमि एक राजर्षि था, वाने अपने पुत्रको राज्य
देकर वैराग्य लिया, संपूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्याग
करके गंधमादन पर्वतमें जायकर भयंकर तप करने लगा
वह धर्मात्मा था तिसके साथ मेरा एक कार्य था सो
कार्य करके मैं अब संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करनेको
इंद्रके पास चला जाता हूं तिसका मैं दूत हूं.

अप्सरोवाच–हे भगवन् ! वृत्तांत कौनसा है ? सो
मुझसे कहो मेरेको तू अतिप्रिय है, यह जानकर पूछती हूं
और जो महा पुरुष हैं. तिनसो कोई प्रश्न करता है तब
वह उद्वेगते रहित होकर उत्तर देता है. ताते तू कहि दे.

देवदूतोवाच–हे भद्रे ! जो वृत्तान्त है सो सुन, विस्तार
करके मैं तुझको कहता हूं–अरिष्टनेमि जो राजा था सो
गंधमादन पर्वतमें तप करने लगा, सो बडा तप किया. तब
देवतोंके राजा जो इन्द्र हैं तिसने मुझको बुलाकर आज्ञा

करी कि, हे दूत ! तू गंधमादन पर्वतमें जा और विमान अप्सरा, नानाप्रकारकी सामग्री, गंधर्व यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदंग आदि वादित्र संग लेजा । वह गंधमादन पर्वत कैसा है ? जो नानाप्रकारकी लता वृक्ष करके पूर्ण है, तहां जायके राजाको विमान पर बिठायके इहां ल्याव, हे सुन्दरी ! जब इन्द्रने ऐसा कहा तब मैं विमान और सामग्री सहित तहां आया. अरु राजासे कहा–हे राजन् ! तेरे कारण विमान ले आया हूं तापर बैठके तू स्वर्गको चल और देवतानके भोग भोगो, जब मैं ऐसे कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा बोलत भया.

राजोवाच–हे देवदूत ! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तू मुझसे कह कि, तेरे स्वर्गमें दोष क्या और गुण क्या है ? तिनको सुनकर मैं हृदयमें विचारा. पीछे जो मेरी इच्छा होवेगी तो आऊंगा.

देवदूतोवाच–हे राजन् ! स्वर्गमें बडे दिव्य भोग हैं. सो स्वर्ग बडे पुण्यसों जीव पाते हैं. जो बडे पुण्यवाले होते हैं सो उत्तम सुख स्वर्गको पाते हैं, जो मध्यम पुण्यवाले हैं सो मध्यम सुख स्वर्गको पाते हैं अरु जे कनिष्ठ पुण्यवाले हैं सो कनिष्ठ सुख स्वर्गको पाते हैं यह तो गुण स्वर्गमें है सो तोसों कहे हैं । स्वर्गके जो दोष हैं सो सुन–हे राजन् ! जो आपते ऊँचे बैठे. दृष्टि आवते हैं, उत्तम सुख भोगते हैं, तिनको देखके

ताप उत्पत्ति होती है, क्योंकि, उनकि उत्कृष्टता सही नहीं जाती है और जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं तिनको देखके क्रोध उपजता है कि, मेरे समान क्यों बैठे हैं, और जो अपने नीचे बैठे हैं कनिष्ठ पुण्यवाले तिनको देखके आपको अभिमान उपजता है कि, मैं इनते श्रेष्ठ हूं और एक और भी दोष है कि, जब उसके पुण्य क्षीण होते हैं तब तिस कालमें उसको मृत्युलोकमें गिराय देते हैं. एक क्षण भी रहने देते नहीं। हे राजन्! यह जो दोष कहे सो स्वर्गमें हैं जो तैंने पूंछे सो मैंने गुण और दोष कहे.

हे भद्रे! जब इस प्रकार राजासे मैंने कहा तब मोंको राजाने कहा—हे देवदूत! इस स्वर्गके योग्य हम नहीं हैं और हमको इच्छा भी नहीं है हम उग्र तप करेंगे तप करके इस देहकोभी त्याग देंगे जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिके त्याग करता है तैसे हम भी त्याग कर देंगे, हे देवदूत! तुम अपने विमानको जहां ते लाये हो तहां ले जाओ, हमारे तो नमस्कार है.

हे देवि! जब इस प्रकार राजाने मुझको कहा तब विमान अप्सरा आदि सबको लेके स्वर्गमें गया, सम्पूर्ण वृत्तान्त इंद्रसे कहा. तब इंद्र प्रसन्न हुआ और सुन्दर वाणी करके मुझसे कहत भया—हे दूत! तू पुनः जहां राजा है तहां जा, वह संसारते आराम हुआ है

इसकी अब आत्मपदकी इच्छा हुई है. इसको साथ लेके वाल्मीकि जिसने आत्मतत्त्वको आत्मा करि जाना है; तिसके पास ले जाय मेरा संदेशा कहना कि, हे महाऋषि ! इस राजाको तत्त्वबोधका उपदेश करना; क्योंकि यह बोधका अधिकारी है. काहेते कि, इसको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं, अरु औरका भी वांछा नहीं; ताते तुम इनको तत्त्वबोधका उपदेश करो, जो तत्त्वबोधको पाय करके संसार दुःखते मुक्त होवे.

हे सुभद्रे ! जब इस प्रकार देवराजने मुझसे कहा तब मैं चला. जहां राजा था, तहां जाइ करिकै मैंने कहा कि, हे राजन् ! संसारसमुद्रते मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकिके पास चल, वाल्मीकि तुझको उपदेश करैगा तब तिसको साथ लेकर मैं वाल्मीकिके स्थानपर आय प्राप्त भया तिस स्थानमें राजाको बिठाया, अरु इंद्रका संदेशा कह दिया, जो वहां वृत्तांत भया सो सुन—जब वहां गये, अरु प्रणाम कर बैठे, तब वाल्मीकिने कहा हे राजन् ! कुशल है ?

राजोवाच—हे भगवन् ! परम तत्त्वज्ञ और वेदांतजाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! मैं अब कृतार्थ हुआ, तुम्हारे दर्शन करके अब मुझको कुशल हुआ है अरु कुछ पूछता हूं कृपा करके उत्तर कहना, जिससे संसारबन्धनते मुक्ति होय.

वाल्मीकि उवाच—हे राजन् ! महारामायण औषध तुझसे कहता हौं सो श्रवण करके तात्पर्य हृदय विषे धारनेका यत्न कर. जब तात्पर्य हृदय विषे धारेगा तब जीवन्मुक्त होयकर विचरेगा. हे राजन् ! वसिष्ठजी अरु रामचन्द्रजीका संवाद है तिसमें सब कथा मोक्षके उपायकी कही है. तिसको सुनके जैसे रामचन्द्रजी अपने स्वभावविषे स्थित हुए अरु जीवन्मुक्त होयके विचरे हैं तैसे तूभी विचरेगा.

राजोवाच—हे भगवन् ! रामचन्द्रजी कौन था अरु कैसा था अरु कैसे होकर बिचऱ्या है ? सो कृपा करके कहो.

वाल्मीकि उवाच—हे राजन् ! शापके वशते हरि जो विष्णु तिनने छल करके मनुष्यका देह धरा सो अद्वैत ज्ञानकर संपन्न है तोभी कछुक अज्ञानको अंगीकार करके मनुष्यका शरीर धरा था.

राजोवाच—हे भगवन् ! चिदानन्दरूप जो हरि हैं तिनको शाप किस कारण हुआ, और किसने दिया ? सो कहो.

वाल्मीकि उवाच—हे राजन् ! एक कालमें सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरीमें बैठे थे, और त्रिलोकीका पति जो विष्णु भगवान् सो वैकुंठते उतरके ब्रह्मपुरीमें आये, तब ब्रह्मा सहित सर्व सभा उठके खडी हुई और पूजन किया; और सनत्कुमारने पूजन किया नहीं तिसको देखकर विष्णु भगवान् बोलते भये—हे सनत्कुमार !

तेरेको निष्कामाताका अभिमान है; ताते तू काम करके अवतार पावेगा और स्वामिकार्तिक तेरा नाम होवेगा. जब विष्णु भगवान्‌ने ऐसा कहा, तब सनत्कुमार बोले हे विष्णु! सर्वज्ञताका अभिमान तुझको है सो तेरी सर्वज्ञता कोई काऊ निवृत्त होवेगी और अज्ञानी होवेगा. हे राजन् ! एक तो यह शाप हुआ और भी सुन.

एक कालमें भृगुकी स्त्री कहीं चली गई थी, तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआ था, तिसको देखके विष्णु जी हँसे तब भृगु ब्राह्मणने शाप दिया—हे विष्णु ! मेरे ताईं देखि तैंने हँसी करी है, सो मेरी नाईं तूभी स्त्रीके वियोगकर आतुर होवेगा.

एक दिन देवशर्मा ब्राह्मणने नरसिंह भगवान्‌को शाप दिया था, सो सुन एक दिन नरसिंह भगवान् गंगाके तीर-पर गये थे, तहां देव शर्मा ब्राह्मणकी स्त्री थी तिसको देखके नरसिंहजीने भयानक रूप दिखायके हँसे, तिसको देखके ऋषिकी स्त्रीने भय पाय प्राण छोड दिये, तब देव-शर्माने शाप दिया कि तुमने मेरी स्त्रीका वियोग किया ताते तुमभी स्त्रीका वियोग पाओगे.

हे राजन् ! सनत्कुमार और देव शर्माके शाप करके विष्णु भगवान्‌ने मनुष्यका शरीर धरा, सो राजा दशरथके घरमें प्रकटे. हे राजन् ! यह जो शरीर धरा है और आगे जो वृत्तांत हुआ है. सो सावधान होय श्रवण कर दिव्य

जो है देवलोक और भू जो है पृथ्वीलोक, और पाताल लोक ऐसी त्रिलोकीको प्रकाशता है; और अंतर बाहर आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है ऐसा अनुभवात्मक मेरा आत्मा है, तिस आत्माको नमस्कार है.

हे राजन् ! यह शास्त्र जो आरंभ किया है तिसका विषय क्या है, और प्रयोजन क्या है, और संबंध क्या है, और अधिकारी कौन है ? सो श्रवण कर. सत्, चित्, आनंद रूप, अचिंत्य,चिन्मात्र आत्माको जनावता है, सो विषय है. अरु परमानंद आत्माकी प्राप्ति और अनात्म अभिमान दुःखकी निवृत्ति, यह प्रयोजन इसमें है. और ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायकर आत्मपदका प्रतिपादन है, सो संबंध है. और जिसको यह निश्चय है कि, मैं अद्वैत ब्रह्म, अनात्म देहका साथी हुआ हूँ, सो किसी प्रकार छूटों, ऐसा ज्ञानवान् है, और मुमुक्षु है ऐसा जो विकृति आत्मा है सो इहां अधिकारी है.

इस शास्त्रका मोक्ष उपाय है, परन्तु कैसा है ? मोक्ष उपाय परमानन्दकी प्राप्ति करनेहारा है. जो पुरुष इसको विचारे सो ज्ञानवान् होवे, जन्म मृत्युरूप संसारमें न आवे. हे राजन् ! यह महारामायण जो है सो पावन है श्रवण-मात्रसे सब पापका नाशकर्त्ता है, जिस विषे रामकथा है सो प्रथम मैं अपने भारद्वाज शिष्यको श्रवण कराई है.

एक समय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरे पास आया था, तिसको मैं उपदेश किया था तिसको श्रवण करके वचनरूपीसमुद्रसे साररूपी रत्नको हृदय विषे धरके एक समय सुमेरु पर्वतपर गया, तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठे थे. और भारद्वाजने जायकर प्रणाम किया और पास बैठा और ब्रह्माजीको यह कथा सुनाई, तब ब्रह्माने प्रसन्न होयकर भारद्वाजसे कहा हे पुत्र ! कुछ वर मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूँ. हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने कहा तब परम उदार जिसका आशय है, ऐसा जो भारद्वाज कहता भया, हे भूत भविष्यके ईश्वर ! जो तुम प्रसन्न हुए हो तो यह वर देहो कि, संपूर्ण जीव संसार दुःखते मुक्त होहिं, अरु परमपदको पावहिं सो उपाय कहो ?

ब्रह्मोवाच–हे पुत्र ! तू अपने पुत्र वाल्मीकिके पास गमन कर फिर जो तिसने आत्मबोध महारामायण अनिंदित शास्त्रका आरंभ किया है तिसको सुनकर जीव महामोह संसारसमुद्र तरैंगे कैसा शास्त्र है महारामायण ? जो संसारसमुद्रते तरनेको पुल है, अरु परम पावन है.

वाल्मीकि उवाच–हे राजन् ! जब इस प्रकार कहा, तब आप परमेष्ठी ब्रह्मा, भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रममें आये, तब मैंने भले प्रकारसों इसका पूजन

किया सो ब्रह्माजी कैसे हैं ? जिसकी सर्व भूतके हितमें प्रीति है सो मुझसे कहते भये.

ब्रह्मोवाच—हे मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकि ! यह जो रामके स्वभावके कथनका आरंभ तुमने किया है तिस उद्यमका त्याग नहीं करना, इसको आदिते अंतपर्यंत समाप्त करना, कैसा है यह मोक्ष उपाय ? जो संसाररूपी समुद्रके पार करनेको जहाज है, इस करिकै सर्व जीव कृतार्थ होवेंगे.

वाल्मीकि उवाच—हे राजन् ! इसप्रकार ब्रह्माजी मुझसे कहिके अंतर्धान होगये, जैसे समुद्रते आवर्त्त चक्र एक मुहूर्तपर्यन्त उठके फिर लीन होजाता है तैसे ब्रह्माजी अंतर्द्धान होगये, तब मैंने भारद्वाजसे कहा हे पुत्र ! ब्रह्माजीने क्या कहा ?

भारद्वाजोवाच—हे भगवन् ! तुमको ब्रह्माजीने ऐसा कहा कि, हे मुनिश्रेष्ठ ! तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है तिसका त्याग नहीं करना, अंतपर्यंत समाप्ति करना. काहेते कि, इस संसारसमुद्रके पार करनेको यह कथा जहाज है, इस करिके अनेकजीव कृतार्थ होवेंगे अरु संसारसंकटते मुक्त होवेंगे.

वाल्मीकि उवाच—हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा, तब ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार मने ग्रंथ किया, अरु भारद्वाजको कहा, हे पुत्र ! वसिष्ठ-

जीके उपदेशको उपायकर जिसप्रकार रामजी निःशंक होकर विचरे हैं, तैसे तू भी विचर. तब उसने प्रश्न किया.

भारद्वाजोवाच–हे भगवन्! जिस प्रकार रामचंद्रजी जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं सो आदिसें क्रमकरके मुझको कहो.

वाल्मीकि उवाच–हे भारद्वाज! रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौशल्या, सुमित्रा, दशरथ ये आठों अष्टमंत्री अष्ट गुण आदि लेकर जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं तिनके नाम सुन–रामजीसे लेके दशरथपर्यंत आठ तो ये कृतार्थ हुये हैं. अविरोध, परमबोधवान् भये हैं और कृतभासी १, शतवर्धन २, शुक, धाम ३, बिभीषण ४, इंद्रजीत ५, हनुमंत ६, वसिष्ठ ७, वामदेव ८ ये अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भये, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुये हैं, इनको कदाचित् स्वरूपसे द्वैतभाव नहीं हुआ है. अनामय पदविषे स्थितीमें तृप्त. रहे जो केवल चिन्मात्र; शुद्धपद, परमपावनताको प्राप्त हुए हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कथारंभ-
वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग २.

अथ तीर्थयात्रावर्णनं ।

भारद्वाजोवाच–हे भगवन् ! जीवन्मुक्तिकी स्थिति कैसी है ? और रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुये हैं ? सो आदिसे लेकर अंतपर्यंत सब कहो.

वाल्मीकि उवाच–हे पुत्र ! यह जगत् जो भासता है सो वास्तविक कछु नहीं उत्पन्न हुआ. अविचार करके भासता है. विचार करनेसे निवृत्त होजाता है. जैसे आकाशमें नीलता भासती है. सो भ्रम करके है जब विचार करके देखिये तब नीलता प्रतीति दूर होजाती है तैसे अविचार करके जगत् भासता है, अरु विचारते लीन होजाता है. हे शिष्य ? जबलग सृष्टिका अत्यंत अभाव नहीं होता तबलग परमपदकी प्राप्ति नहीं होती. जब दृश्यका अत्यंत अभाव हो जावे तब पाछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी. कोई इस दृश्यको महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहते हैं; परंतु मैं तुझको तीनोंही कालका अभाव कहता हूं. सो शत शास्त्रकर इस शास्त्रमें श्रद्धा संयुक्त आदिसे लेकर अंतपर्यंत श्रवण कर, अरु तिनको धारणकर, तब तिसकी भ्रांति निवृत्त हो जावे, अरु अव्याकृत पदकी प्राप्ति होवे. हे शिष्य ! संसार भ्रममात्र सिद्ध है, इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना, सो मुक्ति है. अरु इसको बंधनका कारण वासना है. वासना-

करके भटकता फिरता है. जब वासनका क्षय होजाय तब परमपदकी प्राप्ति होवे, जो वासनामें फिरते हैं, तिसका नाम मन है जैसे जल शरदीकी दृढ जडता पायके बर्फ होता है, तब केवल शुद्ध जल होय रहता है, तैसे आत्मारूपी जल है तिसविषे संसारकी सत्यता रूपीजडता शीतलता है, तिस करके मनरूपी बर्फका पुतला हुआ है,जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवेगा तब संसारकी सत्यतारूपी जडता, शीतलता निवृत्त होजावेगी.

जब संसारकी सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई, तब मन नष्ट होजावेगा, जब मन नष्ट हुआ तब परमकल्याण हुआ, इसलिये इसके बंधनका कारण वासना है, और वासनाके क्षय हुएते मुक्ति है, सो वासना दो प्रकारकी है-एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध. सो अपने वास्तविक स्वरूपके अज्ञानते अनात्मा जो देहादिक तिनमें अहंकार करना सो जब अनात्मामें आत्म-अभिमान हुआ तब नाना प्रकारकी वासना उपजती हैं, तिस करके घटीयंत्रकें तरह चक्र भ्रमता है, हे साधु ! यह जो पंचभूतका शरीर तू देखता है सो सब वासनारूप है; वासना चक्र है जैसे मणके धागेके आश्रयसे खडे होते हैं, और जब धागा टूट पडा तब मणका न्यारा न्यारा होय पडता है, और ठहरता नहीं है, तैसे वासनाके क्षय हुए पंचभूतोंका शरीर नहीं रहता, इस लिये सब अनर्थका कारण

वासना है और जो शुद्ध वासना है उनमें जगत्का अत्यन्त अभाव निश्चय होता है, हे शिष्य! अज्ञानीका जो निश्चय है, सो वासना कर फिर जन्मका कारण हो जाता है, और ज्ञानीकी वासना है सो फिर जन्मका कारण नहीं होता है. जैसे–एक कच्चा बीज होता है. दूसरा दग्ध बीज होता है, तिसमें जो कच्चा है सो फिर उगता है, और जो दग्ध हुआ है सो नहीं उगता तैसे अज्ञानीकी वासना है सो रससहित है सो जन्मका कारण है। ज्ञानीकी वासना है सो रसरहित है सो जन्मका कारण नहीं, ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविक गुण करिके खडी होती है और किसी गुणके साथ मिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता. खाता है, पीता है, देता है, बोलता है, चलता है, विचार करता है, परन्तु अंतर सदा अद्वैत निश्चेष्टको धरता है कदाचित् द्वैतभावना तिसको फुरती नहीं है. अपणे स्वभावविषे स्थित है ताते निर्गुण अरु अरूप है ताको चेष्टा जन्मका कारण नहीं है. जैसे कुम्हारका चक्र है, सो जबलग उसको फेर चढावे तबलग वह फिरता है और जब फेर चढावना छोड दिया तब स्थीयमान गतिसे उतरत उतरत फिरको स्थिर रह जाता है। ऐसे जबलग अहंकार सहित वासना होती है तबलग जन्म पावता है जब अहंकारते रहित हुवा तब बहुरि जन्म पावता. हे साधु! यह जो अज्ञानरूपी वासना

है, तिसको नाश करनेका उपाय एक ब्रह्मविद्याही श्रेष्ठ है, ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायका शास्त्र है जब इसते और शास्त्रमें गिरेगा तब कल्पपर्यंतहू अव्याकृत पदको न पावेगा अरु जो ब्रह्मविद्याका आश्रय करेगा तो सुखसों आत्मपदको प्राप्त होवेगा. हे भारद्वाज! यह मोक्ष उपाय रामजी अरु वसिष्ठजीका संवाद सो विचारने योग्य है, बोधका परम कारण है. ताते आद्यंतपर्यंत मोक्ष उपाय श्रवण कर. जैसे रामजी जीवन्मुक्त होय विचरे हैं सो सुन.

एक दिन रामजी विद्या पढके अध्ययन शालाते अपने गृहमें आये अरु संपूर्ण दिन विचार करते व्यतीत कर दिया, बहुरि मनमें तीर्थ ठाकुरद्वारेका संकल्प धर पिता दशरथके पास आये, पितासों मिलके जो संपूर्ण प्रजाको सुखमें राखते थे; अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिके सुख पाई तिस दशरथका चरण श्री रघुनाथजीने ग्रहण किया, जैसे सुन्दर कमलको हंस ग्रहण करै तैसे पिताका चरण ग्रहण किया जैसे कमलके तरे कोमल तरियाँ होती हैं तिन तरियों सहित कमलको हंस पकडता है; तैसे दशरथजीकी अंगुरीनको रामजीने ग्रहण किया, और बोले कि हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ और ठाकुरद्वारेके दर्शनको उठा है ताते तुम आज्ञा करो तो मैं तीर्थका अरु ठाकुरद्वारेका दर्शन कर आऊं मैं तुम्हारा पुत्र हूँ तुमको पालना करनी योग्य है. आगे मैं कभी कछु कहा नहीं,

यह प्रार्थना अब करी है, ताते तुम आज्ञा देहु, जो
जाऊँ; यह वचन मेरा फेरना नहीं। काहेते कि ऐसा त्रिलो
कीमें कोऊ नहीं है; किन्तु सबका मनोरथ सिद्ध हुआ
ताते मुझको कृपाकर आज्ञा देहु.

वाल्मीकि उवाच-हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब राम
जीने कहा तब वसिष्ठजी पास बैठे थे, तिनने भी दशर
थसे कहा-हे राजन् ! रामजीको आज्ञा देहु सो तीर्थ क
आवें क्योंकि इनका चित्त उठा है राजकुमार हैं इनके
साथ सेना दीजिये; धन दीजै, मंत्री दीजै, ब्राह्मण दीजै
जो ये दर्शन कर आवें.

हे भारद्वाज ! जब ऐसे विचार किया, तब शुभ मुहू
देखकर रामजीको आज्ञा दीनी, जब चलने लगे त
पिता अरु माताके चरण लगे अरु सबको कंठ लगा
रुदन करने लगे तिनको मिलकर आगे चले, अ
लक्ष्मण आदि जो भाई हैं और मंत्री थे, तिनको सा
लेकर, अरु वसिष्ठ आदि जो ब्राह्मण विधिको जाननेवा
थे अरु बहुत धन सेना तिनको साथ ले चले. और दा
पुण्य करके जब गृहके बाहर निकले, तब वहांके ज
लोग थे अरु स्त्रियाँ थीं तिन सबने रामजीके ऊपर फू
अरु फूलोंकी मालाकी वर्षा करी. सो वर्षा बरफ ब
सती है ऐसी दीखती थी. अरु रामजीकी जो मूर्ति है स
हृदयमें धरलीनी, इस प्रकार रामजी वहांसे चले त

ब्राह्मण और निर्धनोंको दान देते देते तीर्थ गंगा, यमुना, सरस्वती आदि देखे हैं, इनमें स्नान विधिसंयुक्त कर पृथ्वीके चारों कोन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमको दान किया. और चारों ओर समुद्रके स्नान किये, और सुमेरु पर्वतपर गये, हिमालय पर्वतपर गये. अरु सालग्राम, बद्री केदार आदि गंगामें स्नान किये और दर्शन किये. ऐसे सब तीर्थ स्नान दान, तप, ध्यान, विधिसंयुक्त यात्रा करते भये. जैसी जैसी जहां विधि थी तैसी तैसी तहां करी, एक वर्षमें संपूर्ण यात्रा करके रामजी बहुरि घरमें आये.

इति श्रीयोवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्रावर्णनं
नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३ ।

अथ विश्वामित्रागमनवर्णन ।

वाल्मीकि उवाच–हे भारद्वाज ! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यामें आवत भये तब नगरके वासीलोग पुरुष और स्त्री फूलनकी वर्षा करत भये, और जय जय शब्द मुखते उच्चारने लगे. और प्रेमहास्य करने लगे और जैसे इंद्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आवत है तैसे रामचंद्रजी अपने घरमें आये. पहिले राजा दशरथको प्रणाम कर फिर वशिष्ठजीको प्रणाम कर फिर सब सभाके

लोगोंको यथायोग्य मिले, फिर अन्तःपुरमें आवत भये तहां कौशल्या आदि जो माता थीं, इनको यथायोग्य नमस्कार किये और भाई बान्धव कुटुम्ब थे तिन सबको मिले.

हे भारद्वाज ! इस प्रकार रामजीके आवनका उत्साह सप्तदिनपर्यन्त होता रहा. वा समयमें कोऊ मिलने आवे कोऊ कछु लेने आवे, तिनको दान पुण्य करत, बाजे बजते उत्साह हुआ. भाट आदि स्तुति करने लगे. तदनंतर रामजीका आचरण हुआ, सो सुन प्रातःकालमें उठके स्नान संध्यादिक सत्कर्म करते, बहुरि भोजन करते बहुरि भाई बंधुको मिल अपने तीर्थकी कथा करते देवद्वारके दर्शनकी वार्ता करते इस प्रकारसों उत्साह कर दिन रातको बितावते थे.

एक दिन प्रातःकालमें उठके पिताजी दशरथको देखे सो जैसे इंद्रका तेज है तैसा तेजवान् देखा, और वसिष्ठादिककी सभा बैठी थी, तहां वसिष्ठजीके साथ कथा वार्ता रामजी करते हुए तहां एक दिन राजा दशरथ कहत भये हे रामजी ! तुम शिकार खेलने जायबो करो, ता समयमें रामजीकी अवस्था १६ वर्षमें थोरेक महिना कमती थे, तब राजकुमार रामजीके साथ लक्ष्मण और शत्रुघ्न भाई थे, भरत नहानेको गये थे, फिर तिनके साथ स्नान संध्यादिक नित्य कर्म करके भोजन करके शिकार खेलने जाते तहां जो जीवको दुःख देनेहारे जानवर देखें तिनको मारते

और अवर लोकको प्रसन्न करते इस प्रकार दिनको शिकार खेलते रात्रीको निसान बाजते अपने घरमें आवते ऐसे करत केतेक दिन बीते तामें रामजी अपने अंतःपुरमें आइ सबका त्याग करके एकांतमें चिंतन करत बैठि रहते.

हे भारद्वाज ! जेती कछु राजकुमारकी चेष्टा सो सब को रामजीने त्याग कर दीनी थी जेते कछु रस संयुक्त इन्द्रियोंके विषय हैं इनको त्यागके शरीरते दुर्बल जैसे हो मुखकी कांती घट गई पीत वर्ण होगये जैसे कमल सूखके पीतवर्ण होय जाता है तैसे रामजीका मुख पीला होगया और जैसे सूखे कमलपर भँवर बैठते हैं तैसे सूखे मुखपर नेत्ररूपी भँवरे भासने लागे सोहु शोभा होवन लागी और इच्छा निवृत्त होय गयी जैसे शरत्कालमें ताल निर्मल होता है तैसे इच्छारूपी मलनते रहित चित्त रूपी तालहु निर्मल होता है, तैसी वासना निवृत्त होते दिन दिनपै शरीर निर्मल होगया और जहां बैठे तहां चिंता-संयुक्त बैठे रहिजावें उठें नहीं और बैठे तब हाथपै चिबुक धरके बैठें, जब टहलुवे मंत्री बहुत कहहि कि हे प्रभो ! यह स्नान संध्याका समय हुआ है सो अब उठो तब उठ-कर स्नानादि करहिं और हृदयमें न विचारहिं जेती कछु खाने पीने बोलने पहिरनेकी क्रिया हैं सो सब विरस होय गई ऐसे रामचंद्रजी भये ,तब लक्ष्मण शत्रुघ्नहू रामजीको संशय संयुक्त देखके तिस प्रकार हो बैठे. तब दशरथ यह

वार्त्ता सुनके रामजीके पास आय बैठे अरु देखे तब महा कृश जैसा होगया है इस चिंता करके आतुर हुआ कि हाय २ इनकी क्या अवस्था हुई ! इस शोकके लिये रामजीको गोदमें बैठाये और पूँछने लगे-कोमल सुन्दर शब्द करके बोले कि हे पुत्र ! तुमको क्या दुःख प्राप्त भया है! जिससे तुम शोकवान् हुये हो । तब रामजीने कहा कि हे पिता ! हमको तो दुःख कोई नहीं है ऐसे कहिके चुप हो रहा, जब केतेक दिवस इस प्रकार व्यतीत भये तब राजा भी शोकवान् हुआ और सब स्त्रियां भी शोकवान् भई और राजा मंत्री मिलके विचार करने लगे कि पुत्रका किसी ठौर विवाह करना और यह भी विचार किया कि क्या हुआ है जो मेरे पुत्र शोकवान् होय रहते हैं । तब वसिष्ठजीसे पूछा कि हे मुनीश्वर ! मेरे पुत्र शोकमें क्यों रहते हैं ? तब-

वशिष्ठजीने कहा-हे राजन् ! महा पुरुषको जो क्रोध होता है सो किसी अल्पकारणसे नहीं होता, और मोह भी अल्प कारणसे नहीं होता और शोकभी अल्प कारणसे नहीं होता. जैसे पृथ्वी, जल, वायु, आकाश जो महाभूत हैं सो अल्प कार्यमें विकारवान् नहीं होते, जब जगत्की उत्पत्ति प्रलय होती है तब विकारवान् होते हैं तैसे महापुरुष अल्प कार्यमें विकारवान् होते. तातें हे राजन् ! तुम शोक करने योग्य नहीं अरु रामजी जो

शोकवान् हुआ है सो भी किसी अर्थके निमित्त होगया पीछे इसको सुख मिलेगा तुम शोक मत करो.

वाल्मीकि उवाच–हे भारद्वाज ! ऐसे वसिष्ठ अरु राजा दशरथ विचार करते थे, तिस कालमें विश्वामित्रजी अपने यज्ञके सहाय अर्थ आवत भये, राजा दशरथके गृहमें आयकर पौरियोंसों कहते भये कि, राजा दशरथसे कहो कि गाधिके पुत्र विश्वामित्र बाहर खडे हैं तब इनने और बडे पौरियाको जाय कहा हे स्वामी ! एक बडा तपस्वी द्वारपर आय खडा है, उसने हमसे कहा कि राजा दशरथके पास जाय कहो कि विश्वामित्र आये हैं सो सुनके राजा दशरथके पास गये, अरु कहा कि विश्वामित्र गाधिका पुत्र बाहर खडा है अरु संपूर्ण मण्डलेश्वर कर पूज्य जो राजा दशरथ सबन सहित अपने सिंहासन पर बैठा है अरु बडे तेजकर संपन्न है तिससे कहा कि विश्वामित्रने हमसे कहा है कि दशरथके पास जाय कहो कि विश्वामित्र बाहर खडा है–

हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार बडे पौरियाने राजासों कहा तब राजा सुनके सुवर्णके सिंहासनसे उठ खडा हुआ अरु चरणोंकरके चला, एक ओर वसिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी । अरु सुभटकी नाईं मंडलेश्वर स्तुति करत चले, जब जहांते विश्वामित्रजी दृष्टि आये तब तहांते प्रणाम करने लगे. जहां पृथ्वीपर शीश राजाका

लागे तहां पृथ्वी भी हीरा, मोतीकी सुन्दर होय जावे इस प्रकार शीश नमावत राजा विश्वामित्रके आगे चला अरु बडी जटा शिरपरते कांधपर परी हैं ऐसे विश्वामित्र अग्निकी नाईं प्रकाशित हैं, और शरीर सुवर्णकी नाईं प्रकाशता है और हृदयमें शांति कोमल स्वभाव जाननेमें आवे ऐसे और महातेजवान् सुन्दरकांति और शांतिरूप और हाथमें बांसकी लकडी और महा धैर्यवान् ऐसे विश्वामित्रको प्रणाम करत राजा दशरथ चरणोंके ऊपर जाय गिरा. जैसे सूर्य सदा शिवके चरणोंपर जाय गिरे थे, तैसे मस्तक नवाय कर कहा मेरे बडे भाग्य हुए जो तुम्हारा दर्शन हुआ है. हमारे ऊपर तुमने बडा अनुग्रह किया है, हमको बडा आनंद प्राप्त हुआ है जो अनादि अनंत है, आदि मध्य अन्तते रहित अविनाशी है ऐसा जो अकृत्रिम आनंद है सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको प्राप्त हुआ दृष्टिमें आवता है. हे भगवन् ! आज मेरे बडे भाग्य हुए हैं जो मैं धर्मात्माके गिननेमें आऊँगा काहेते कि, जो तुम मेरे कुशलनिमित्त आये हो, हे भगवन् ! तुम्हारा आवना हमारे लक्षमें नहीं था, और तुमने बडा अनुग्रह किया है जैसे सूर्य कोई कार्य करनेको पृथ्वीपर आवे, तैसे तुम मुझको दृष्टिमें आवते हो और सबते उत्कृष्ट दृष्टिमें आवते हो। काहेते कि, तुममें दो गुण हैं एक तो क्षत्रियका स्वभाव तुम्हारेमें है और दूसरा ब्राह्म-

णका स्वभाव भी तुम्हारेमें भासता है और शुभ गुणकर संपूर्ण हो। हे मुनीश्वर! तुम क्षत्रियमेंते ब्राह्मण भये हो ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं देखी. और तुम्हारा शरीर प्रकाशमान दीखता है और जिस मार्गसे तुम आये हो और जिस मार्गमें तुम दृष्टि करत आये हो, तहांते अमृत वृष्टि करत आये हो ऐसा दृष्टि आवता है, हे मुनीश्वर! तुम आये सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको बडा लाभ हुआ है.

हे भारद्वाज! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्रसे बोले, और वसिष्ठजी आयकर विश्वामित्रको कण्ठ लगायके मिले, और जो मण्डलेश्वर राजा थे सो बहुत प्रणाम कर इस प्रकार सब मिले, तब विश्वामित्रको राजा दशरथ घरमें ले आये, जहां राजसिंहासन था तहां आनकर बिठाया, और वसिष्ठ, वामदेवको बिठाये, और राजा दशरथने विश्वामित्रका पूजन किया, और अर्घ्य पाद्यार्चन करके प्रदक्षिणा करी, बहुरि वसिष्ठजीने विश्वामित्रका, विश्वामित्रने वसिष्ठजीका पूजन किया, ऐसे अन्योन्य पूजन हुआ; इस प्रकार पूजन करके सब अपने आसनपर यथायोग्य बैठे। तब राजा दशरथ बोले हे भगवन्! हमारे बडे भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ जैसे कोऊ ततको अमृतप्राप्ति होवे; और जन्मांधका नेत्र प्राप्त होवैं सो आनंद पावे, जैसे निर्धनको चिंतामणि प्राप्त होवैं और आनन्दको पावे. और जैसे

किसीका बांधव मुवा होय सो विमानपर चढा हुआ आकाशते आवे, उसको जैसा आनंद प्राप्त होवे तैसे तुम्हारे दर्शन कर मैं आनन्दको प्राप्त हुआ हूँ. हे मुनीश्वर ! तुम्हारा आवना जिस अर्थ हुआ है ? सो कृपा कर कहो. और जो तुम्हारा अर्थ हो सो पूर्ण हुआ जानो, काहेते कि, ऐसा पदार्थ कोई नहीं है, जो तुमको देना कठिन है, सब कछु मेरे विद्यमान है, जो तुम्हारा अर्थ है सो निश्चय कर जानने योग्य होय रहा है, जो कछु तुम आज्ञा करोगे सो मैं देऊंगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४।

अथ विश्वामित्रेच्छावर्णन ।

वाल्मीकि उवाच–हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा. तब मुनिनमें शार्दूल जो विश्वामित्र सो बहुत प्रसन्न भये और रोम खडे हो आये, जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको देखके क्षीरसागर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न होकर कहत भये–

हे राजशार्दूल ! तुम धन्य हो ! ऐसा क्यों न होवे जो तुम्हारेमें दो गुण श्रेष्ठ हैं एक तो रघुवंशी हो दूसरे वशिष्ठजी तुम्हारे गुरु हैं; ताकी आज्ञामें चलते हो, ताते

हे राजन् ! जो कछु मेरा प्रयोजन है सो तुम्हारे आगे प्रगट करता हूँ श्रवण करो. दशरात्र यज्ञका मैंने आरंभ किया है सो जब यज्ञको करने लगता हूँ तब राक्षस खर और दूषण उस यज्ञको तोर डारते हैं, जहां जहां मैं जायकर यज्ञ करता हूँ तहां तहां आयकर अपवित्र जो रुधिर अरु मांस, अरु अस्थि सो डारते हैं, सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता और बहुरि मैं और ठौर करने लगता हूँ तहां भी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं तिसके नाश करनेके निमित्त मैं तुम्हारे पास आया हूँ कदाचित् ऐसे कहो कि, तुम भी तो समर्थ हो तो हे राजन् ! मैंने यज्ञका आरंभ किया है तिसके अंग क्षमा हैं जो उसको मैं शाप देऊं तो वह भस्म हो जावे, परंतु शाप क्रोध बिना होता नहीं, अरु क्रोध कियेते यज्ञ निष्फल होजाता है, अरु जो मैं चुप हो रहों तो वह राक्षस अपवित्र वस्तु डार जाते हैं ताते मैं तुम्हारी शरण आया हों, मेरा कार्य करो. हे राजन् ! तेरा जो रामजी पुत्र है, सो कमलनयन काकपक्षसंयुक्त है, अर्थ यह जो बालक दूसरी शिखासहित रहे हैं तिसको मेरे साथ देहु, जो राक्षसोंको मारैं, तब मेरा यज्ञ सफल होय. और तुमको ऐसा शोक करना नहीं चाहिये कि, मेरा पुत्र बालक है यह तो बडे इंद्रके समान शूरवीर हैं । इनके समीप वह राक्षस ठहर न सकैंगे, जैसे सिंहके

सन्मुख मृगके बच्चे ठहर नहीं सकते तैसे तेरे पुत्रके सन्मु
राक्षस न ठहर सकैंगे, ताते मेरे साथ उनको तुम दे
जो तुम्हारा भी धर्म रहै और यश भी रहै, मेरा कार्य
होवे इसमें संदेह नहीं करना.

हे राजन् ! ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोई नहीं
रामजीका किया कछु न होवे, इसीसे मैं तुम्हारे पुत्र
लिये जाता हूं. यह मेरे करसों ढांपा रहेगा, और इसव
कोई विघ्न मैं होने न देऊंगा, और जो तेरे पुत्र वस्तु
सो मैं जानताहूं, और वसिष्ठजीहू जानते हैं और
ज्ञानवान् त्रिकालदर्शी होवेगा, सो भी इनको जान
होयगा और कोईकी भी सामर्थ्य नहीं है जो इनव
जानसकै. ताते तुम इनको मेरे साथ देहु, जो मे
कार्यकी सिद्धि होय.

हे राजन् ! जो समयपर कार्य होता है सो थोरे कर
नेसे भी बहुत सिद्धि पावता है जैसे द्वितीयाके चंद्रमाक
देखके एक तंतुका दान किया हो सो भी बहुत है, पीं
वस्त्रका दान कियेते भी तैसा कार्य सिद्ध नहीं होत
तैसे समयपर थोडा कार्य भी बहुत कार्य भी थोरे फलक
देता है, ताते तुम मेरे साथ रामजीको दीजै. खर दूषण
ये बडे दैत्य हैं. सो आयकर मेरा यज्ञ खंडन करते हैं
जब रामजी आवैंगे तब वह भाग जायँगे रामजीके आगे
खडे न होय सकैंगे, इनके तेजसे वह सब अल्पबल होजा

वेंगे. जैसे सूर्यके तेज करिकै तारागणका प्रकाश छिप जाता है, तैसे रामजीके दर्शनसे वह स्थित न रहैंगे. जैसे गरुडके आगे सर्प नहीं ठहर सकते; तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठहर सकैंगे, देखकर भाग जायँगे ताते तुम मेरे साथ देहु जो मेरा कार्य होवे और तुम्हारा धर्म भी रहे, रामजीके निमित्त संदेह मत करना, वह राक्षसकी सामर्थ्य नहीं जो रामजीके निकट आवे. और मैं भी रामजीकी रक्षा करूंगा.

वाल्मीकि उवाच—हे भारद्वाज ! जब विश्वामित्रने ऐसा कहा, तब राजा दशरथ सुनकर चुप रहा और गिरपडा एक मुहूर्त्तपर्यंत पडा रहा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रेच्छावर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५ ।

अथ दशरथकथनवर्णन ।

वाल्मीकि उवाच—हे भारद्वाज ! एक मुहूर्त्त पीछे राजा उठे और महादीनसे होगये, और महामोहको प्राप्त होगये, धैर्यते रहित होकर बोले.

राजोवाच—हे मुनीश्वर ! यह तुमने क्या कहा ? रामजी अभी तो कुमार हैं शस्त्रविद्या अस्त्रविद्या भी सीखे नहीं अभी तो फूलनकी शय्यापर शयन करनेवारे हैं,

वह युद्धको क्या जानैं. अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बैठ
वाले हैं, राजकुमार बालकनके साथ खेलनेवाले हैं औ
कदाचित् रणभूमि देखीहू नहीं हैं, भ्रुकुटीको चढाय
कदाचित् युद्ध भी नहीं किया और कमलकी ना
जिसके हाथ हैं, और कोमल जिसका शरीर है वह राक्ष
सके साथ युद्ध कैसे करैगा, कहूं पत्थरका और कम
लका भी युद्ध हुआ है ? रामजीका वपु कमल समा
कोमल है, और वह महाक्रूर पत्थरकी नाईं हैं, उन
साथ युद्ध कैसे होवेगा ?

हे मुनीश्वर ! मैं नव सहस्र वर्षका हुआहूं अब दश
सहस्र लगा है वृद्ध हुआ हूँ यह वृद्धावस्थामें मेरे चर पु
हुवे हैं, सो चारोंके मध्य रामजी कमलनयन, कछु षोड
वर्षका हुआ है. और मुझको बहुत प्रियतम है औ
मेरा प्राण है. रामजी विन मैं एक क्षणभी रह नहीं सकत
जो तुम इनको ले जाओगे तो मेरा प्राण निकल जायग
म मृतक हो जाऊंगा.

हे मुनीश्वर ! केवल मेराही ऐसा सनेह हो सो नहीं
किन्तु उसका भाई जो लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न औ
उसकी माता जो हैं सो सबहीके प्राण रामजी हैं, जो तु
रामजीको लेजाओगे तो हम सबहीं मर जायँगे, वियो
करके जो हमको मारने आये हो तो लेजाओ, हे मुनीश्वर
मेरे चित्तमें रामजी फुर रहा है, तिसको मैं तुम्हारे सा

कैसे देऊं, मैं उसको देखत देखत प्रसन्न होता हूं जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको देखकर क्षीर समुद्र प्रसन्न होता है अरु चंद्रमाको देखकर चकोर प्रसन्न होता है अरु मेघ बूंदको देखकर पपीहा प्रसन्न होता है तैसे रामजीको देखकर मैं प्रसन्न होता हूँ, तब रामजीके वियोगकर मेरा जीवना कैसा होयगा ? हे मुनीश्वर ! मेरेको रामजी जैसे प्रिय हैं ऐसी स्त्री भी नहीं, अरु धन भी ऐसा प्रिय नहीं, अरु राज्य भी ऐसा प्रिय नहीं और पदार्थ भी मुझको कोई रामके समान प्रिय नहीं है ऐसा रामजी प्यारा है.

हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचन सुनके बडे शोकको प्राप्त हुआ हूं मेरे बडे अभाग्य आये हैं, जो तुम्हारा आवना इस निमित्त हुआ है. तुम्हारे वचन सुनकर जैसे कमलके ऊपर पत्थरकी वर्षा होय ऐसी व्यथा मेरेको होती है अरु पत्थरकी वर्षाते जैसे कमल नष्ट हो जाते हैं तैसे तुम्हारे वचनते मेरी नष्टता हो जायगी. जैसे बडा मेघ चढ आवे तामें बडा पवन चलै तब मेघकी गंभीरताका अभाव होय जाय तैसे तुम्हारे वचनते मेरी बडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है। जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढमें सूख जाती है तैसे तुम्हारे वचन सुन मेरे हृदयकी प्रसन्नता जर जाती है हे। मुनीश्वर ! रामजीको देनेमें म समर्थ नहीं हूं जो तुम कहो तो एक अक्षौहिणी सेना

मेरी है सो बडे शूरवीरकी है जिसको शस्त्रविद्या, अ
विद्या मंत्रविद्या सब आवती हैं. और सब युद्धमें चतुर
तिनके साथ मैं तुम्हारे संग चलता हूं वहां जायके
उनको मारूंगा और हस्ती, घोडा, रथ, प्यादे ऐसी चतु
रंगिनी सेनाको साथ ले जाओ अरु जो तुम्हारे यज्ञके
खंडनहारे हैं तिनको नाश करो, अरु एकके साथ मैं युद्ध
न करसकूँगा, जो कदाचित् यज्ञ खंडनहारा कुबेरक
भाई अरु विश्रवाका पुत्र रावण होवे तो उसके साथ
युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं.

हे मुनीश्वर ! आगे मेरेमें बडा पराक्रम था, वैस
त्रिलोकमें किसीको नहीं था, जो मेरे निकट मारनेक
आता तौ वाको मैं मार देता. अब मेरी वृद्धावस्था हु
है अरु देह जर्जरी भावको प्राप्त हुआ है, इस कारण
रावणके साथ युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं हूँ.

हे मुनीश्वर ! मेरे बडे अभाग्य हैं जो तुम्हारा आन
इस निमित्त हुआ है. अब मेरा वैसा परक्रम नहीं,
रावणसों काँपता हूँ केवल मैंहीं नहीं काँपता; इन्द्रादि
देवता सब रावणसे कांपते हैं अरु राक्षस सब उसके
वश वर्त्तते हैं; अब किसीकी शक्ति नहीं है, जो रावणके
साथ युद्ध करै। इस कालमें वह बडा शूरवीर है.

हे मुनीश्वर ! जब मेरी सामर्थ्यता भी नहीं रही त
राजकुमार रामजी कैसे समर्थ होवेंगे? अब जिस रामजीक

लेने तुम आये हो रोगी हो रहा है, उसको चिंता ऐसी आय लगी है जिससे वह महा दुर्बल होगया है. अरु अन्तःपुरमें एकांतमें बैठा रहता है, खाना, पीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा है सो सब उसको विरस होगई है. अरु मैं नहीं जानता कि, उसको क्या दुःख प्राप्त हुआ है. जैसे कमल सूखके पीत वर्ण हो जाता है तैसा उसका मुख होगया है उसको युद्ध करनेकी सामर्थ्यता नहीं अरु अपने स्थानते बाहरकी पृथ्वी भी नहीं देखी है. सो युद्ध कैसे करैंगे ?

हे मुनीश्वर ! वह युद्ध करनेको समर्थ नहीं है अरु हमारे प्राण वही है, जो उसका वियोग होवेगा तो हमारा जीवना नहीं होवेगा, जैसे जल विना मच्छली जीवति नहीं है तैसे हम रामजी विना कैसे जीवैंगे ? अब जो राक्षसोंके युद्ध निमित्त कहो तो हम तुम्हारे साथ चलैं, अरु रामजी युद्ध करनेको योग्य नहीं.

इति योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथकथनवर्णनं
नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६ ।

अथ रामसमाजवर्णन ।

वाल्मीकि उवाच-हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तब महादीन जैसे मोहसहित अधीर्य-वान् वचन सुनकर क्रोधसों विश्वामित्र कहते भये.

विश्वामित्रोवाच—हे राजन्! तू अपने धर्मको सुमिर
कर यह प्रतिज्ञा तैंने करी है, "जो तेरा अर्थ होवेगा
पूर्ण करूंगा और पूर्ण हुआ जानना" ऐसा तुमने कहा
अब तू अपने धर्मको त्यागता है और जो तू सिंह हुआ
मृगोंकी नाईं भागता है तो भाग, परंतु आगे रघुवंश
ऐसा कोई नहीं हुआ. जैसे चंद्रमाके मंडलमें शीतल
होती है, अग्नि निकसता नहीं है तैसे तुम्हारे कुलवि
ऐसा कदाचित् नहीं हुआ, और जो तू करता है तो
हम उठ जायंगे. काहेते कि शून्य गृहतो सूनेई जा
है. परंतु यह तुमको योग्य न था. अरु तुम बसते र
राज्य करते रहो, अरु जो कछु होवेगा सो हम सम
लेवेंगे, अरु जो अपने धर्मको तू त्यागता है तो त्याग

वाल्मीकि उवाच—हे भारद्वाज! इस प्रकार जब अत्य
क्रोधवान् होकर विश्वामित्र बोला, तब इसके क्रोध करने
पचास कोटि पृथ्वी कांपने लगी; अरु इंद्रादिक देवता
भयको प्राप्त हुए कि, ये क्या हुआ तब वसिष्ठजी बोले.

वसिष्ठोवाच—हे राजन्! इक्ष्वाकुके कुलमें सब प
मार्थी हुए हैं. और तू अपने धर्मको क्यों त्यागता है
विद्यमान तैंने कहा है—"जो तुम्हारा अर्थ होवेगा सो
पूर्ण करूंगा." अब तू क्यों भाजता है? रामजीको इस
साथ दे. अरु यही तेरे पुत्रकी रक्षा करैंगे जैसे सर्प
अमृतकी रक्षा गरुड करता है तैसे तेरे पुत्रकी रक्षा

करैगा, अरु यह कैसा पुरुष है सो श्रवण कर. इसके समान बल किसीका नहीं, साक्षात् बलकी मूर्त्ति है अरु धर्मात्मा है, साक्षात् धर्मकी मूर्त्ति है अरु ऐसा तपस्वी कोऊ नहीं है. अरु तपकी खानि है. अरु इसके समान कोऊ बुद्धिमान् नहीं है. अरु इसके समान कोई शूरमा नहीं है, अरु अस्त्र शस्त्र विद्यामें भी इसके तुल्य कोऊ नहीं है. काहेते कि, जो दक्षप्रजापतिकी दो पुत्री थीं; एक जय, अरु दूसरी सुभगा, सो ये ऋषिको दीनी है, अरु जय थी, तिसमें दैत्योंके मारने निमित्त पांचसौ पुत्रोंको प्रगट किये थे, अरु सुभगाके भी पांचसौ पुत्र भये थे सो सब दैत्योंके नाश निमित्त उत्पन्न किये थे. सो स्त्रियां इसके विद्यमान मूर्ति धरके स्थित हुई हैं, ताते इसको जीतनेको कोऊ समर्थ नहीं है, जिसका साथी विश्वामित्र होवे सो त्रिलोकीमें काहुसों नहीं डरै, ताते इसके साथ तू अपना पुत्र दे अरु संशय मत कर. किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके होते तेरे पुत्रको कछु कोऊ कहि-सके. इसकी दृष्टिके देखनेते दुःखका अभाव हो जाता है. जैसे सूर्यके उदयते अन्धकारका अभाव होजाता है तैसे.

हे राजन् ! इसके साथ तेरे पुत्रको खेद कहां होवे तू इक्ष्वाकुके कुलका है, अरु दशरथ तेरा नाम है. सो तेरे जैसे धर्म्मात्मा जब अपने धर्ममें स्थित न रहें तो और जीवते धर्मकी पालना कैसे होयगी ? जो कछु श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करते हैं तिनके अनुसार और जीव करते हैं. जो

तुम सारखे अपने वचनकी पालना न करैंगे तब और
कहा बनैगी, अरु तुम्हारे कुलमें ऐसा कबहूं नहीं हु
ताते अपने धर्मको त्यागना योग्य नहीं; तू अपने पुत्र
दे; अरु जो तू उनके भयंकर शोकमान होवे तो भी
मति कहै और मूर्तिधारी काल आयकर स्थित होवे
भी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रको कुछ होवे नहीं;
शोक मत कर अपने पुत्रको इसके साथ दे, अरु जो
देगा तौ दो प्रकारका तेरा धन नष्ट होवेगा एक धन
है कि जो कूप, बावडी, ताल कराये होयँगे तिनका
पुण्य है सो नष्ट हो जावेगा. अरु तप, व्रत, यज्ञ, दा
स्नानादिकोंका जो पुण्य है अरु किया है तिस सबका फ
नष्ट हो जावेगा, और तेरा गृह निरर्थक होय जावेगा. ता
मोह अरु शोकको त्याग अरु अपने धर्मका सुमिरण क
रामजी इसके साथ दे. तेरे सब कार्य सफल होवेंगे।
राजन्! जो इस प्रकार तुमको करना था तो प्रथम ही वि
रकर कहना था काहेसे कि विचार बिना काम करने
परिणाम दुःख होता है. ताते इसके साथ अपने पुत्रको दे

वाल्मीकि उवाच–हे भारद्वाज! जब इस प्रकार व
ष्ठजीने कहा, तब राजा दशरथ धैर्यवान् होकर भृत्यों
जो श्रेष्ठ भृत्य था वाको बुलायकर कहत भया–हे म
बाहु! रामजीको ले आओ, तब इसके साथ जो चा
अंतर बाहर आवने जावने हारा था, अरु छलते रहित

सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजीके निकट गया, और एक मुहूर्त्त पाछे पीछा आया, अब कहत भया हे देव! रामजी तो बडी चिन्तामें बैठे हैं मैंने रामजीसे वारंवार कहा कि अब चलिये, तब वह कहते हैं कि चलते हैं. ऐसे काहि काहि चुप हो रहते हैं.

हे भारद्वाज! इस प्रकार जब राजाने श्रवण किया तब कहा—रामजीके मंत्री अरु टहलुए सब बुलावो. सेवक सबको बुलाये निकट लाये, तब राजा आदरसों कोमल सुंदर वचन युक्तिसे कहत भया, हे रामजीके प्यारे रामजीकी कहा दशा है और ऐसी दशा क्योंकर हुई है? सो सब क्रम करिके कहो.

मंत्री उवाच—हे देव! हम कहाकहैं, जेते हम कछु दृष्टि आवते हैं सो सब आकार अरु प्राण देखने मात्रके हैं अरु हम सब मृतक हैं. काहेते कि, हमारा स्वामी रामजी बडी चिंताको प्राप्त हुआ है, हे राजन्! जिस दिनसे रघुनाथजी तीर्थ कर आये हैं तिस दिनसे चिंताको प्राप्त भये हैं. जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं और पान करनेका पदार्थ और पहरनेका पदार्थ अरु देखनेका पदार्थ कछु ले जाते हैं, सो सुखदाई पदार्थ रस सहित तिसे देखके किसी प्रकार प्रसन्न होते हमने नहीं देखा है ऐसी चिंताके विषे वह लीन हैं कि, देखता भी नहीं अरु जो देखता है तो क्रोध करता है, अरु सुखदाई पदा-

थंका निरादर करता है, अरु अंतःपुरमें इनकी माता नानाप्रकारके हीरे अरु मणिके भूषण देती हैं तौ उनको भी डारदेता है, नहीं तो किसी निर्धनको देदेता है किसी पदार्थपै प्रसन्न होते नहीं हैं. सुन्दर स्त्रियां खडी विद्यमान होती हैं, नानाप्रकारके भूषणहू सहित महामोह करनेहारी निकट होइकर लीला करती हैं, कटाक्षहू सहित प्रसन्न करने निमित्त तौ भी विषवत् जानते हैं, उनकी ओर देखता भी नहीं. जैसे पपैया जलको देखता भी नहीं. जब अंतःपुर विषे निकसता है तब उनको देखकर क्रोधवान् होता है.

हे राजन् ! और कछु उसको भला नहीं लगता किन्तु बडी चिंता विषे मग्न है और तृप्त भोजन भी नहीं करता क्षुधावन्त रहता है. और न कछु पहरने, खाने पीनेकी इच्छा रखता है. न राज्यकी इच्छा है, न किसी इंद्रियनहूके सुखकी इच्छा है, महा उन्मत्तकी न्याईं बैठा रहता है अरु जब कोई सुखदाई पदार्थ फूलादिक लेजाते हैं तब क्रोध करता है। हम नहीं जानते कि, क्या चिन्ता उसको भई है, एक कोठरीमें पद्मासन कर अरु हाथपर मुख धरके बैठा रहता है अरु जो कोऊ बडा मंत्री आयकर पूंछता है तब उससे कहता है कि, तुम जिसको सम्पदा मानते हो सोई आपदा है, जिसको आपदा जानते हो सो आपदा नहीं है। अरु नाना प्रकारके संसारके पदार्थ

जो रमणीयकर जानते हो सो सब झूठे हैं याहीमें सब डूबे हैं, ये सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं; तिनको सत्य जान मूर्ख जो हरिण सो दौरते हैं; अरु दुःख पाते हैं.

हे राजन् ! कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं, और कछु उनके उरमें सुखदायी नहीं भासता है. अरु जो हम हांसीकी वार्त्ता करते हैं तो वह हँसता नहीं है. जिस पदार्थको प्रीतिसंयुक्त लेते थे तिस पदार्थको अब डारी देते हैं अरु दिन दिनपै दुर्बल हुए जाते हैं अरु जब अंतःपुरमें स्त्रियोंके पास बैठता है; अरु वह नाना प्रकारकी चेष्टा रामजीको प्रसन्न करनेके निमित्त देखावती हैं उनको भी देखके प्रसन्न नहीं होता अरु जैसे मेघकी बूंदते पर्वत चलायमान नहीं होते हैं तैसे आप चलायमान न होते हैं अरु जो बोलता है तो ऐसे कहता है, न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है, न जगत् सत्य है, न मित्र सत्य है, मिथ्या पदार्थके निमित्त मूर्ख प्रयत्न करते हैं. जिनको सत्य जानते हैं अरु सुखदायक मानते हैं, सो बंधनका कारण है; और कहा कहिये जो कोई उनके पास राजा अथवा पंडित जावे तिनको देखकर कहता है यह पशु हैं; आशारूपी फांसीसे बांधे हुये हैं.

हे राजन् ! जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनको देखकर उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता अरु देखके क्रोधवान् होता है जैसे पपैया मारवाडमें आवे, अरु मेघकी बून्दहू

देखता नहीं है अरु खेदवान् होता है, तैसे रामजी विष
हूते खेदवान् होता है. हे राजन्! इन करके हर्षवान् न
होता, ताते हम जानते हैं कि, इनको परमपद पाने
इच्छा है, परंतु कदाचित् मुखते सुना नहीं है; अरु त्याग
अभिमानभी कदाचित् सुना नहीं है; कबहूं गाता है
अरु बोलता है तब ऐसे कहता है–हाय हाय! मैं अना
मारागया हूं. अरे मूर्ख! तुम संसार समुद्रमें क्यों डूब
हो? यह संसार परम अनर्थका कारण है. इसमें सु
कदाचित हू नहीं है. इससे छुटनेका उपाय करो.

हे राजन्! जो ऐसा भी कभी हम सुनते हैं. अ
किसीके साथ बोलता नहीं है. न हंसता है. न मंत्री
साथ, न अपने अंतःपुरनकी स्त्रियोंके साथ, न माता
साथ बोलता है, किसी परम चिंतामें मग्न है कि
पदार्थ पर आश्चर्यवान् नहीं होता, जो कोऊ कहै वि
आकाशमें बाग लगा है, तिसमें फूल फूले हैं, तिनको
ले आया हूँ, तिसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होत
सब भ्रममात्र देखता है. न किसी पदार्थसे उसको ह
होता है, न किसी पदार्थसे उसको शोक होता है, कि
बडी चिन्तामें मग्न है सो किसीको चिन्ता निवारनेमें ह
समर्थ नहीं देखते हैं, वह तो चिन्ताके समुद्रमें मग्न है.
राजन्! यह चिन्ता हमको लगरही है, कि, रामजीको
खानेकी इच्छा है, न पहिरनेकी इच्छा है, न बोलने

न देखनेकी इच्छा रही है, न किसी कर्मकी इच्छा रही है ताते मृतक न हो जावे ऐसी हमें चिन्ता है अरु जो कोऊ कहता है कि, तू चक्रवर्ती राजा है, तेरो बडा आयुर्बल होइ, अरु बडे सुखको पाओ. तब तिसके वचन सुन कठोर बोलता है.

हे राजन्! केवल रामजीहीको ऐसी चिंता नहीं, लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको भी ऐसी चिंता लगरही है. रामको देखकर जो कोऊ उनकी चिंता दूर करनेहारा होवे तो करै नहीं तौ बडी चिंता मध्य डूबे रहैंगे. किसी पदार्थकी इच्छा उनको नहीं रहती है.

हे राजन्! अब कहा कहते हो? तेरा पुत्र अब अतीत है रहा है. एक वस्त्र उपरना ओढकर बैठा है, ताते सोई उपाय करो, जिससे उसकी चिन्ता निवृत्त होवे.

विश्वामित्रोवाच–हे साधु! जो रामजी ऐसे हैं तो हमारे पास विद्यमान लाओ, हम उसका दुःख निवृत्त करैंगे. हे राजा दशरथ! तू बडा धन्य है. कि जिसका पुत्र विवेक अरु वैराग्यको प्राप्त भया. हे राजन्! हम तेरे पुत्रको परमपदकी प्राप्ति करैंगे. अभी सब दुःख उनके मिट जायँगे. हम वसिष्ठादि जो बैठे हैं सो एक युक्ति कर उपदेश करैंगे. तिस करके उनको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी. तब वह दशा तेरे पुत्रकी होवेगी जो लोष्ठ पत्थर अरु सुवर्णको समान जानेगें, अरु जो कछु तुम्हारे क्षत्रि-

यकी प्रवृत्तिका आचरण है सो करेंगे अरु हृदयमें प्रेमते
उदासी होवेंगे, ताते हे राजन् ! उस करके तुम्हारा कुल
कृतकृत्य होवेगा, ताते रामजीको शीघ्र बोलावहु.

वाल्मीकि उवाच—हे भारद्वाज ! ऐसे मुनींद्रके वचन
सुनकर राजा दशरथ मंत्री अरु नौकरोंसे कहत भया
कि रामजी अरु लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको लेआओ. जैसे
हरिणीको हरिण ले आता है तैसे ले आओ, जब राजा
दशरथने ऐसा कहा, तब मंत्री अरु भृत्य रामजीके पास
जायके कहा, तब रामजी आये सो आवत आवत राजा
दशरथ अरु वशिष्ठजी, अरु विश्वामित्रको देखे कि
तीनोंके ऊपर चमर होयरहे हैं, अरु बडे मंडलेश्वर बैठे
हैं तिननेहु रामजीको देखे, जो शरीरते कृश होय रहे हैं,
जैसे—महादेवजी स्वामिकार्तिकको आवत देखे, तैसे राम-
जीको आवत राजा दशरथ देखते हैं तहां रामजी आय-
कर राजा दशरथजीके चरणोंपै मस्तक लगाय नमस्कार
किया फिर तैसेई वशिष्ठजीको अरु विश्वामित्रजीको नम-
स्कार किया. बहुरि सभामें जो ब्राह्मण बडे बडे बैठे थे,
तिनकोहूं नमस्कार किये. अरु जो बडे बडे मंडलेश्वर
बैठे थे, तिनने उठकर रामजीको प्रणाम किया फिर
राजा दशरथने रामजीको गोदमें बैठाया अरु देखकर
मस्तक चूमा. अरु बहुत प्रेम पुलकित हो रामजीसे
कहत भया—हे पुत्र ! केवल विरक्तता कर परमपदकी

प्राप्ति नहीं होती है अरु वशिष्ठजी गुरु हैं तिनके उपदेशकी युक्ति कर परमपदकी प्राप्ति होयगी.

वशिष्ठोवाच-हे रामजी! तुम धन्य हो! अरु बडे शूरमा हो, जो विषयरूपी शत्रु तुमने जीते हैं जो विषय अजीत है अरु दुष्ट है ताको तुमने जीता ताते तुम धन्य हो धन्य हो!!.

विश्वामित्रोवाच-हे कमलनयन राम! अपने अंतरकी चपलता है तिसको त्याग करके जो कछु तुम्हारा आशय होय सो प्रकट कर कहो. हे रामजी ! यह जो तुमको मोह प्राप्त हुआ है सो कैसे अरु किस कारण हुआ; अरु केताक है ? सो कहो. अरु जो अब कछु तुमको वांछित होय सो कहो, हम तुमको तिसी पदमें प्राप्त करेंगे जिसमें दुःख कदाचित् होवे नहीं. और जैसे आकाशको चूहा काटि नहीं सकता है तैसे तुमको पीडा कदाचित् न होवेगी. हे रामजी! तुम्हारे संपूर्ण दुख नाश कर देयँगे. तुम संशय मत करो. जो कछु तुम्हारा वृत्तांत होय सो हमसे कहो.

वाल्मीकि उवाच-हे भारद्वाज! जब ऐसे विश्वामित्रने कहा सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भये, अरु शोकको त्याग दिया. जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है तैसे विश्वामित्रके वचन सुन रामजी प्रसन्न हुये अरु अपने हृदयमें निश्चय किया अब मुझको उस पदकी प्राप्ति होवेगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाजवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७।

अथ रामवैराग्यवर्णन।

वाल्मीकि उवाच—हे भारद्वाज ! ऐसे मुनीश्वरके व
नको श्रीरामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोलेः—

श्रीरामोवाच—हे भगवन् ! जो वृत्तांत है सो तुम
विद्यमान क्रम करके कहता हों; इस राजा दशरथके घ
जो मैं उत्पन्न भया हों, बहुरि क्रम करके बडा हुआ ह
उपवीत पाया हों अरु चारों वेद पढकर ब्रह्मचर्य्यादि श्र
पाया हों, ता पाछे एक दिन पढके मैं घरमें आया त
मेरे हृदयमें बात आय रही कि तीर्थाटन करों, अरु दे
द्वारमें जायके देवनके दर्शन करों। तब मैं पिताकी आज्ञ
लेकर तीर्थको गया अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थमें स्ना
किया अरु शालिग्राम अरु केदार आदि ठाकुरके विधि
संयुक्त दर्शन किये अरु यात्रा करके यहां आया फि
उत्साह हुआ. तब मेरेमें विचार आया; कि प्रातःका
उठके स्नान संध्यादि कर्म करना बहुरि भोजन करना ऐ
इस प्रकारसों केतक दिन व्यतीत भये, तब मेरे हृदय
विचार उत्पन्न हुआ सो विचार मेरे हृदयको खैंचले गय
जैसे नदीके तटपर तृण लता होते हैं तिसको नदीक
प्रवाह खैंच ले जाता है तैसे मेरे हृदयमें जो कछु जगतक
आस्थारूप तृण लता थी सो विचाररूपी प्रवाह ले गय
तब मैं जानता भया कि राज्य करके क्या है ? अरु भोग

क्या है अरु जगत् क्या है सो भ्रममात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं। यह स्थावर जंगमरूपी जेता कछु जगत् है सो सब मिथ्या है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं सो मनसों करके हैं सो मनभी भ्रममात्र है, अनहोता मन दुःखदायी हुआ है; मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है अरु सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् है. जैसे मृगतृष्णाको देखकर मृग दौरते हैं अरु हैं नहीं सो मृग दौरत दौरत थकके पडजाता है तौहू जल तिसको प्राप्त नहीं होता तैसे मूर्ख जीव पदार्थको सुखदायी जानकर भोगनेका यत्न करता है. अरु शांतिको नहीं पाता है तैसे.

हे मुनीश्वर! इंद्रियनके भोग सर्पवत् हैं, जिनका मारा हुआ, जन्म मरणको पाता है, जन्मते जन्मांतरको पाता है, भोग अरु जगत् सब भ्रममात्र हैं, तिन विषे जो अवस्था करते हैं सो महामूर्ख हैं, ऐसा मैं विचार करके जानता हों जो सब आगमापाई है. अर्थ यह जो आवतेहू हैं अरु जाते हू हैं. ताते जिस पदार्थका नाश न होय सो पदार्थ पावने योग्य है इसी कारणसे मैंने भोगका त्याग कियाहै.

हे मुनीश्वर! जैसे कछु संपदारूप पदार्थ भासते हैं सो सब आपदा हैं, इनमें रंचकहू सुख नहीं है, जब इनका वियोग होता है तब कंटककी नाईं मनमें चुभता है. जब इंद्रियको भोग प्राप्त होता है तब रोग दोषकर जलता है

अरु जब नहीं प्राप्त होता है तब तृष्णाकर जलता है.तां
भोग दुःखरूप है, जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं
होता तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचकभी सुखरू
छिद्र नहीं होता है.

हे मुनीश्वर ! विषयकी तृष्णामें बहुत कालसों जल
रहा हों,जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रंचक अग्नि धरा होय त
धुवाँ होय थोरा २ जलता रहता है, तैसे भोगरूपी अ
करके मन जलता रहता है,यह विषयमें सुख कछु हू न
अरु दुःख बहुत हैं. इनकी इच्छा करनी सोई मूर्खता है
जैसे खाईके ऊपर तृण अरु पात होता है तिसपर ख
आच्छादित होय जाती है; तिसको देखके हरिण कू
पडता है,अरु दुःख पावता है तैसे मूर्ख भोगको सुखरू
जानके भोगनेकी इच्छा करता है जब भोगता
तब जन्मते जन्मान्तररूप खाईमें जाय परता है अ
दुःख पावता है.

हे मुनीश्वर ! भोगरूपी चोर है सो अज्ञानरूपी रात्रि
लूटने लगता है सो आत्मरूपी धन है तिसको ले जा
है तिसके वियोगते महादीन रहता है. अरु जिस भोग
निमित्त यह यत्न करता है सो दुःखरूप है, शांति
प्राप्त नहीं होता. अरु जिस शरीरके अभिमान करके य
यत्न करता है सो शरीर क्षणभंग होता है अरु असा
है, जिसको सदा भोगकी इच्छा रहती है सो मूर्ख अ

जड है, इसको बोलना चालना भी ऐसा है जैसे सूखे बाँसके छिद्रमें पवन जाता है; अरु पवनके वेगकर शब्द होता है; तैसे वह मनुष्यकी वासना है. जैसे थका हुआ मनुष्य मारवाडके मार्गकी इच्छा नहीं करता तैसे दुःख जानकर मैं भोगकी इच्छा नहीं करता हूँ.

अरु यह जो लक्ष्मी है सो परम अनर्थकारी है. जब लग इसकी प्राप्ति नहीं होती तबलग तिसके पावनेका यत्न होता है. अरु अनर्थ करके प्राप्ति होती है. अरु जब प्राप्त हुई तब सब गुणका नाश कर देती है. शीलता, संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दया-दिक गुणका नाश करती है जब ऐसा गुणका नाश हुआ तब सुख कहांते होय, परम आपदा प्राप्त होती है परम दुःखका कारण जानकर मैंने इसका त्याग किया है. हे मुनीश्वर ! इसमें गुण तबलग है जबलग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई. जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब गुण नाश हो जाता है. जैसे वसंतऋतुकी मंजरी हरियावल तबलग रहती है जबलग ज्येष्ठ आषाढ नहीं आया, जब ज्येष्ठ आषाढ आया तब मंजरी जर जाती है तैसे जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब शुभ गुण जर जाते हैं अरु मधुर वचन तबलग बोलता है जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होती है; जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब कोमलताका अभाव होय कठोर होजाता है. जैसे-जल पतला तबलग रहता है

जबलग शीतलताका संयोग नहीं होय. जब शीतलताका संयोग होता है तब बर्फ होकर कठोर दुःखदायक हो जाता है. तैसे यह जीव लक्ष्मी पाकर जड हो जाता है।

हे मुनीश्वर ! जो कछु संपदा है सो आपदाका मूल है; काहेते कि जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब वो सुखको भोगता है; अरु जब तिसका अभाव होता है तब तृष्णा करके जलता है. जन्मते जन्मांतरको पावता है। लक्ष्मीकी इच्छा है सोई मूर्खता है, यह तो क्षणभंगुर है, याते भोग उपजता है, अरु नाश भी होता है. जैसे जलते तरंग उपजते हैं अरु मिट आते हैं अरु बिजुली स्थिर नहीं होती है, तैसे भोगहूं स्थिर नहीं रहते। अरु पुरुषमें शुभगुण तबलग हैं जबलग तृष्णा नहीं किया. जब तृष्णा भई तब शुभ गुणका अभाव हो तृष्णाका स्पर्श हो जाता है. जैसे दूधमें मधुरता तबलग है जबलग उसको सर्पने स्पर्श नहीं किया; जब सर्पने स्पर्श किया तब दूध है सो विषरूप हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामवैराग्यवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥

अष्टमः सर्गः ८।

अथ लक्ष्मीतिरस्कारवर्णन ।

श्रीरामोवाच—हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी देखने मात्रको ही सुंदर है अरु जब इसकी प्राप्ति हुई तब सद्गुणका नाश कर देती है. जैसे विषकी लता देखनेमात्रको सुन्दर है अरु स्पर्श कीयेते मार डालती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए आत्मपदते मृतक होता है. अरु महादीन होय जाता है. जैसे किसीके घरमें चिन्तामणि दबी रही, ताको खोदकर लेवे नहीं, तबलग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञान कर ज्ञान विना महादीन जैसा हो रहता है. आत्मानंदको पाय नहीं सकता. आत्मानंदके पानेका जो मार्ग है तिसकी नाश करनहारी लक्ष्मी है. इसकी प्राप्तिते जीव महा अंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर ! जब दीपक प्रज्वलित होता है तब उसका बडा प्रकाश दृष्टि आवता है जब दीपक बुझ जाता है तब प्रकाशका अभाव होय जाता है. अरु काजरकी समक्षता रहजाती है, जो वारंवार वासना उपजती थी सो रहती है; तैसे जब इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब बडे भोग उनको भुगवाती है; अरु तृष्णारूप काजर उससे उपजता रहता है. जब लक्ष्मीका अभाव होता है तब वासना तृष्णाकी समक्षता छाँड जाती है तिस

वासना तृष्णा करके अनेक जन्मको पाता है. शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होता.

हे मुनीश्वर ! जब जिसको लक्ष्मीकी प्राप्ति होती तब शांतिके उपजावनहारे गुणका नाश करती है. जबलग पवन नहीं चलता तबलग मेघ रहता है, जब पवन चला कि, मेघका अभाव होजाता है. तैसे लक्ष्मीकी प्रा हुए गुणका अभाव होता है अरु गर्वकी उत्पत्ति होती

हे मुनीश्वर ! जो शूरमा होके अपने मुखते अप बडाई न कहै सो दुर्लभ है. अरु समर्थ होय किसी अवज्ञा न करै, सबमें समबुद्धि राखै सो दुर्लभ है. लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण संयुक्त होय सो भी दुर्लभ

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है तिसको बढानेका स्थान लक्ष्मीरूपी दूध है, सो पीवत पवनरूपी भोग अहार करत कदाचित् अघात नहीं. अरु महामोह उन्मत्त हस्ती है. तिसको फिरनेका स्थान पर्वत अटवीरूपी लक्ष्मी है. अरु गुणरूप जो सूर्यमुखी क है तिसकी लक्ष्मी रात्रि है; अरु भोगरूपी चंद्रमु कमल है, तिनका लक्ष्मी चन्द्रमा है अरु वैराग्य जो कमलिनी है तिसके नाश करनेहारी लक्ष्मी है. अरु ज्ञानरूपी जो चन्द्रमा है तिनका आच्छा करनेहारी लक्ष्मी राहु है, अरु मोहरूपी जो उल है तिसकी यह रात्रि है. अरु दुःखरूपी जो बिजु

तिसको लक्ष्मी आकाश है. अरु तृष्णारूपी जो लता है तिसको बढावनहारी लक्ष्मी मेघ है, अरु तृष्णारूप जो तरंग है तिसकी लक्ष्मी समुद्र है. अरु भोगरूपी जो पिशाच है तिसका लक्ष्मी स्थान है अरु तृष्णारूपी भँवरको लक्ष्मी कमलिनी है. जन्मके दुःखरूप जलको यह लक्ष्मी ताल है.

हे मुनीश्वर! देखनेमात्रको यह सुन्दर लगती है, अरु दुःखका कारण है. जैसे खड्ग की धार देखने मात्रको सुंदर होती है, अरु परश कियेते नाश करती है. तैसी यह लक्ष्मी है. अरु विचाररूपी मेघका नाश करनेमें लक्ष्मी वायु है.

हे मुनीश्वर! यह मैंने विचारकर देखा है, इसमें सुख कछूहू नहीं अरु संतोषरूपी मेघका नाश करनहारा यह शरत्काल है. अरु इस मनुष्यमें शुभ गुण तबलग दृष्टि आवै हैं जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं भई. जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब गुण नाश पाते हैं.

हे मुनीश्वर! लक्ष्मी ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है. यह भोग मिथ्यारूप है. जैसे बेजुरी प्रगट होय छिपजाती है तैसे यह लक्ष्मीहू प्रगट होय छिप जाती है. जैसे जल है सो हिम है. तैसे लक्ष्मी-जीकी ज्योति है सो मूर्ख जडके आश्रयते है. इसको छलरूप जानकर मैंने त्याग किया है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीतिरस्कार-वर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९ ।

अथ संसारसुखनिषेधवर्णन ।

श्रीरामोवाच—हे मुनीश्वर ! जो वाको देखकर प्रस होता है सो जैसे पत्रके ऊपर जलकी बूँद नहीं रहती तैसे लक्ष्मी क्षणभङ्ग है. जैसे जलका तरङ्ग होयके न पाता है, तैसे लक्ष्मी होयके नाश पाती है.

हे मुनीश्वर ! पवनको रोकना कठिन है सोभी क रोके रहे अरु आकाशका चूरन करना अति कठि सो भी कोऊ चूरन करडारै. अरु बिजलीको रोकना कठिन है सो भी कोऊ रोकलेवे. परन्तु लक्ष्मी पायके स्थिर होवे सो नहीं. जैसे शशाके सींगसों कोऊ मार सकता अरु आरसीके ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता जैसे तरङ्गकी गांठ नहीं परत है तैसे लक्ष्मीहू स्थिर रहती है. लक्ष्मी बिजुलीकी चमक जैसी है, तैसी हो है अरु मिट भी जाती है अरु लक्ष्मीको पायके आ अमर हुआ चाहे सो महामूर्ख जानना. अरु लक्ष्मीको प कर जो भोगकी वांछा करत हैं सो महा आपदाके पात्र तिनको जीनेते मरना श्रेष्ठ है, जीनेकी आशा मूर्ख क हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं. जैसे स्त्री जो ग इच्छा करती है सो अपने नाशके निमित्त करती

अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है, जिनकी परम पदमें स्थि है अरु तिसकर तृप्ति पाये हैं तिनका जीना सु

निमित्त है, तिनके जीनेते औरका कार्यभी सिद्ध होजाता है तिनका जीना चिंतामणिकी नाईं श्रेष्ठ है अरु जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है और आत्मपदते विमुख हैं तिनका जीना किसी सुखके निमित्त नहीं है वह मनुष्य नहीं गर्दभ है. अरु जैसे वृक्ष पक्षी पशुका जीवना है तैसे तिसका भी जीवना है.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढा है. अरु पाने योग्य पद नहीं पाया. तब शास्त्र उसको भाररूप है, जैसे औरका भार होता है तैसे पढनेकाभी भार है. अरु पढके विचार चर्चा करता है और तिसके सारको नहीं ग्रहण करता तो विचार चर्चाहू भार है.

हे मुनीश्वर! मन जो है सो आकाशरूप है, सो मनमें जो शांति न आई तो मनहू उसको भार है. अरु जो मनुष्य शरीरको पाया है उसका अभिमान नहीं त्यागता है तो यह शरीरभी उसको भार है. यह शरीरका जीवना तबहीं श्रेष्ठ है, जब आत्मपदको पावे अन्यथा उसका जीना व्यर्थ है. और आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होती है. जैसे जल पृथ्वीके खोदते निकसता है तैसे अभ्यास कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है अरु जो आत्मपदते विमुख होय आशाकी फांसीमें फँसे हैं सो संसारमें भटकते रहते हैं.

हे मुनीश्वर! संसारके तरङ्ग अनेक कालसों उत्पन्न होय नष्ट होय जाते हैं, तैसे यह लक्ष्मीहू क्षणभङ्ग है. इसे

पायके जो अभिमान करते हैं सो मूर्ख हैं जैसे वि
चूहोंको पकडनेके लिये परी रहती है. तैसे लक्ष्मी अ
नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहती है. जैसे अं
लीमें जल नहीं ठहरता तैसे लक्ष्मी चली जाती है,
क्षणभङ्ग लक्ष्मी अरु शरीरको पायकर जो भोग
तृष्णा करते हैं सो महा मूर्ख हैं सो मृत्युके मुखमें
हुए जीनेकी आशा करते हैं. जैसे सर्पके मुखमें मे
पर्डा है. सो मच्छरको खानेकी इच्छा करता है. याते
महामूर्ख है. तैसे यह पुरुष मृत्युके मुखमें पडा
भोगकी वांछा करता है, सो भी महामूर्ख है.

अरु युवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नाईं चली ज
है; बहुरि वृद्धावस्था प्राप्त होती है तामें महादुःख प्र
होते हैं, अरु शरीर जर्जर होय जाता है. फिर मरता
इक क्षणहू मृत्यु इनको बिसारता नहीं है, सदाई दे
रहता है. जैसे महाकामी पुरुषको सुंदर स्त्री मिलती
तब उसको देखनेका त्याग नहीं करता, तैसे मृत्यु म
ष्यको देखे विना नहीं रहता है.

हे मुनीश्वर ! मूर्ख पुरुषका जीना दुःखके निमि
जैसे वृद्ध मनुष्यका जीवना दुःखका कारण है. तैसे अ
नीका जीवना दुःखका कारण है. उसको बहुत जीव
मरना श्रेष्ठ है, जो पुरुषने मनुष्य शरीर पायकर आ
पद पानेका यत्न नहीं किया तिनते आपही अपना
किया है. सो आत्महत्यारा है.

हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुंदर भासती है. अरु आखिर नाशको पाती है जैसे वृक्षको अंतरते घुण खाय जाता है अरु बाहरते बहुत सुन्दर दीखता है; तैसे यह पुरुष बाहरते सुन्दर दृष्टि आता है अरु अंतरते इसको तृष्णा खाय जाती है. जो पदार्थको सत्य अरु सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है सो सुखी नहीं होता है. जैसे नदीमें सर्पको पकरके पार उतरा चाहै सो पार नहीं उतरता है, वह मूर्खता करके डूबेइगा; तैसे जो संसारके पदार्थको सुखरूप जानकर आश्रय करता है सो सुख नहीं पाता संसार समुद्रमेंही डूब जाता है.

हे मुनीश्वर! यह संसार इंद्रधनुषकी नाईं है. जैसे इंद्र-धनुष बहुत रंगका दृष्टिमें आता है अरु तिसते अर्थ-सिद्धि कछु नहीं होती है; तैसे यह संसार भ्रममात्र है, इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है. इस प्रकार जगत्को मैंने अस्तरूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करी है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेध-वर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १० ।

अथ अहंकारदुराशावर्णन।

श्रीरामोवाच—हे मुनीश्वर! यह जो अहंकार उदय हुआ सो अज्ञानते महादुष्ट है. अरु यही परम शत्रु है. उसने मेरेको भार प्राप्त किया है. अरु मिथ्या है जेते कछु दुःख

हैं तिन सबकी खानि अहंकार है, जबलग अहंकार है त
लग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित् नहीं होता
हे मुनीश्वर ! जो कछु मैंने अहंकारसों भजन कि
अरु पुण्य किया है. अरु जो लिया दिया है और क
किया है, सो सब व्यर्थ है, इससे परमार्थकी सिद्धि क
नहीं है. जैसे राखमें आहुती धरी व्यर्थ होजाती है त
जानत हौं. अरु जेते कछु दुःख हैं तिनका बीज अ
कार है. इसका नाश होवे तब कल्याण होवे ताते त
इसका उपाय मुझको कहो, जिसकर अहंकार निवृत्त हो
हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है तिसका त्याग करने
दुःख होजाता है. अरु जो वस्तु नाशवान् अरु भ्र
करके दीखती है तिसके त्याग करनेते आनंद है। अ
शांतिरूप जो चन्द्रमा है तिसको आच्छादन करनेव
अहंकाररूपी राहु है. जब राहु चन्द्रमाको ग्रहण कर
है, तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढपजाता है. त
जब अहंकार उपजता है तब समता ढप जाती है. ज
अहंकाररूपी मेघ गर्जके बरसता है तब तृष्णारूपी कट
मंजरी बढ जाती है. सो कदाचित् घटते नहीं जब अ
कारका नाश होवे तब तृष्णाका अभाव होवे. जैसे ज
लग मेघ है तबलग बिजुरी है जब विवेकरूपी पवन च
तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होयके बिजुरी न
पाती है. जैसे जबलग तेल अरु बाती है तबलग दीपक

प्रकाश है जब तेल बातीका नाश होता है तब दीपका प्रकाश भी नाश पाता है, तैसे जब अहंकारका नाश होवे. तब तृष्णाका भी नाश होता है.

हे मुनीश्वर ! परमदुःखका कारण अहंकार है, जब अहंकारका नाश होवे, तब दुःखका भी नाश होजाय.

हे मुनीश्वर ! यह जो मैं राम हों सो नहीं. अरु इच्छा. भी कछु नहीं, काहेते जो मैं नहीं तो इच्छा किसको होवे अरु इच्छा होइ तो यही होइ जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवे जैसे मुनींद्रको अहंकारका उत्थान नहीं हुआ, तैसा मैं होऊँ ऐसी मुझको इच्छा है.

हे मुनीश्वर ! जैसे कमलको बर्फ नाश करताहै तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करता है. जैसे पारधी जालसों पक्षीको बंधन करता है तिसपर पक्षी दीन होजाते हैं तैसे अहंकाररूपी पारधीने तृष्णारूपी जाल डारके जीवको बंधन किया है तिसकर महादीन होगया है. जैसे पक्षी अन्नके कणको सुखरूप जानकर चुगनेको आता है. फिर चुगते फिरते जालमें बँध जाता है; तिस बंधनकर दीन होजाता है तैसे यह पुरुष विषयभोगकी इच्छा कियेते तृष्णारूपी जालमें बंध होय महादीन होजाता है. ताते हे मुनीश्वर ! मुझको सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे, जब अहंकारका नाश होवेगा तब मैं परमसुखी होऊंगा. जैसे विंध्याचल (पर्वत) के आश्रयते उन्मत्त हस्ती पडे गर्जते हैं तैसे अहंकाररूपी जो विंध्या-

चल (पर्वत) है, तिसके आश्रयते मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके संकल्प विकल्परूपी शब्द करता है तातें सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे सो अहंकार अकल्याणका मूल है. जैसे मेघका नाश करनहारा शरत्काल है, तैसे वैराग्यका नाश करनहारा अहंकार है. मोहादिक विकार रूप जो सर्प है तिनके रहनेको अहंकाररूपी बिल है, अरु अहंकार का पुरुषकी नाईं है. जैसे कामी पुरुष कामको भुगतता अरु फूलकी माला गरेमें डारके प्रसन्न होता है. तै तृष्णारूपी तागा है अरु मनुष्यरूपी फूलके मनके सो तृष्णारूपी तागेके साथ पिरोये हैं सो अहंकाररू कामी पुरुष गरेमें डारताहै अरु प्रसन्न होताहै.

हे मुनीश्वर ! आत्मारूपी सूर्य्य है तिसका आवर करनहारा मेघरूपी अहंकार है; जब ज्ञानरूपी सूर्य उ यका काल आवे तब अहंकाररूपी बादरका नाश जाताहै, अरु तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होवे.

हे मुनीश्वर ! यह निश्चय कर मैंने देखा है कि ज अहंकार है तहां सब आपदा आय प्राप्त होती हैं. जै समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती हैं तैसे अहंका सब आपदाकी प्राप्ति है. तातें सोई उपाय कहो जि कर अहंकारका नाश होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकारदुराशावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्ग ११.

अथ चित्तदौरात्म्यवर्णन ।

श्रीरामोवाच–हे मुनीश्वर ! यह जो मेरा चित्त है सो काम, क्रोध, लोभ मोह; तृष्णादिक दुःख कर जर्जरीभाव होगया है अरु महापुरुषके जो गुण, वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष तिनकी ओर नहीं जाता, सर्वदा विषयकी गिरदमें उडता है जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता नहीं तैसे यह चित्त सर्वदा भटकता फिरता है अरु इसको लाभ कछु प्राप्त नहीं होता जैसे श्वान द्वार द्वारपै भटकता फिरता है, तैसे यह चित्त पदार्थके पावने निमित्त भटकता फिरता है और प्राप्त कछु नहीं होता, अरु जो कछु प्राप्त होता है तिसकरि तृप्त नहीं होता,अंतर तृष्णा रही आवत है, जैसे पिटारेमें जल भरिये, तासों वह पूर्ण नहीं होता, क्योंकि छिद्रते जल निकस जाताहै;अरु पिटारा शून्यका शून्य रहता है तैसे चित्त भोग पदार्थ प्राप्त होता है, तासों संतुष्ट नहीं होता है, सदा तृष्णाही रहती है.

हे मुनीश्वर ! यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है, इसमें तृष्णारूपी तरंग उठतेही रहते हैं, सो कदाचित् स्थिर नहीं होते, जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण वेगकर तरंग होताहै सो तटके वृक्षको लागता है अरु जलमें बहे जाते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्रमें बहि जाते हैं विषय बासनारूपी तरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था, सो चलायमान

होगया है सो इस चित्तसों मैं महादीन हुआ हूँ. जैसे जालमें परा पक्षी दीन होजाता है तैसे चित्तसे धीवरकी बासनारूपी जालमें बँधा हुआ मैं दीन होगया हूं, जैसे मृगके समूहते भूली मृगी अकेली खेदवान् होती है, तैसे आत्मपदते भूला हुआ चित्तमें खेदवान् हुआहूं.

हे मुनीश्वर ! यह चित्त सदा क्षोभवान् रहता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता. जैसे क्षीर समुद्र मंदराचल करके क्षोभवान् हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्प विकल्प कर खेद पावता है. जैसें पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेमें फिरताहै तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नहीं होता.

हे मुनीश्वर ! इस चित्तने मेरेको दूरते दूर डारा है; जैसे भारी पवनसों सूखा तृण दूरते दूर जाय पडता है तैसे चित्तरूपी पवनने मुझको आत्मानंदते दूर डारा है, जैसे सूखे तृणको अग्नि जरावत है, तैसे मोको चित्त जारता है. जैसे अग्निसे धूम निकलता है तैसे चित्तरूपी अग्निते तृष्णारूपी धूम निकलता है तिसकर मैं परम दुःख पावत हों, यह चित्त हंस नहीं बनता है. जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेको भिन्न भिन्न करता है तिसकी नाईं मैं अनात्मामें अज्ञान करके एकसा होगया हूँ, तिसको भिन्न नहीं कर सकता हूँ जब आत्मपद पानेका यत्न करता हूँ तब अज्ञान प्राप्त करन नहीं देता. जैसे नदीका प्रवाह समुद्रमें जाता है तिसको पहाड सूधे नहीं चलने

देता है. अरु समुद्रकी ओर जाने नहीं देता है तैसे मुझको चित्त आत्माकी ओरते रोकता है, सो परम शत्रु है. हे मुनीश्वर ! ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवे.

यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है; जैसे मृतक शरीरको श्वान अरु श्वानिनी भोजन करते हैं, तैसे आत्माके ज्ञानविन मैं मृतक समान हों. जैसे बालक अपनी परछाहींको बैताल मानकर भयको पाता है, सो जब विचार करके समर्थ होता है, तब बैतालका भय पाता नहीं, तैसे चित्तरूपी बैतालने मेरा स्पर्श किया है तिस करके मैं भयको पाता हूँ. ताते तुम सोई उपाय कहो; जिससे चित्तरूपी बैताल नष्ट होय जावे.

हे मुनीश्वर ! अज्ञान करके मिथ्या बैताल चित्तमें दृढ होरहा है, तिसके नाश करनेको मैं समर्थ नहीं हो सकता हों अग्निमें बैठना सो भी मैं सुगम जानता हों और चलके बडे पर्वतके ऊपर जाना सो भी मैं सुगम मानता हों अरू बडे वज्रका चूरन करना यह भी मैं सुगम मानता हों, परन्तु चित्तका जीतना महाकठिन है ऐसा मैं जानता हों, चित्त सदा हीं चलायमान स्वभाव-वाला है. जैसे थंभेके साथ बांधाहुआ बानर कदाचित् स्थिर होय नहीं बैठता. तैसे चित्त वासनाके मारे स्थिर कदाचित् नहीं होता है. हे मुनीश्वर ! बडा समुद्रका पान

करजाना सुगम है अरु अग्निका भक्षण करना भी सुगम है और सुमेरुका उल्लंघन करना सो भी सुगम है; परन्तु चित्तको जीतना महा कठिन है, जो सदा चलरूप है. जैसे समुद्र अपने द्रवस्वभावको कदाचित् नहीं त्याग करता; अरु महाद्रवीभूत रहता है, तिसकर नानाप्रकारके तरंग होते हैं तैसे चित्तभी चञ्चलस्वभावको कभी नहीं त्यागता है. नानाप्रकारकी वासना उपजती रहती हैं. अरु बालककी न्याईं चंचल है; सदा विषयकी ओर धावता है; कहूं पदार्थकी प्राप्ति होती है; परन्तु अंतरते सदा चञ्चल रहता है. जैसे सूर्यके उदय हुएते दिन होता है, अरु अस्त हुएते नाश पाता है. तैसे चित्तके उदय हुए त्रिलोककी उत्पत्ति है अरु चित्तके लीन हुएते लीन हो जाती है.

हे मुनीश्वर! किसी समुद्रमें जल गंभीर है तिसमें बडे सर्प रहते हैं, सो जब कोऊ समुद्रमें प्रवेश करै तब वह सर्प उनको काटता है, तिनको बिष चढ जाता है, तिस करके बडा दुःख पाता है, सो दृष्टांत सुनिये—चित्तरूपी समुद्र है अरु वासनारूपी जल है; तिसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है तब तृष्णारूपी विष पसरता है, तिसकर मरते हैं.

हे मुनीश्वर! जो भोगको सुखरूप जानकर चित्त दौडता है, सो भोग दुःखरूप है.जैसे तृणसों खाई आच्छा-

दित होय जाती है, तिसको देखकर मूर्ख मृग खानेको दौरता है; तब खाईमें गिर पडता है अरु दुःख पाता है, तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर जब भोगनेको लगता है, तब तृष्णारूपी खाईमें गिर पडता है अरु जन्मांतर दुःखको भोगता है.

हे मुनीश्वर ! यह चित्त कबहूं बडा गंभीर हो बैठता है और जब भोगको देखता है तब तिनकी ओर चीलहकी नाईं लगि गिर पडता है जैसे गीधडपक्षी आकाशमें चढा फिरता है, सो जब पृथ्वीपर मांसको देखता है तब तहांतें आय पृथ्वीपर बैठता है अरु मांसको लेता है, तैसे यह चित्त कभी निराला उडता है, जब विषय देखता है तब आसक्ति पाय विषयमें गिरजाता है, अरु यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोता रहता है, अरु आत्मपदमें जागता नहीं इस चित्तके जालमें मैं पकराया हों सो कैसा जाल है तामें वासनारूपी सूत्र है अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रन्थि है, अरु भोगरूपी तिसमें चून है. इसको देखके मैं फँसा हों. कबहूं पातालमें, कबहूँ आकाशमें, वासनारूपी जेवरीकर घटीयंत्रकी नाईं बंधा हों, ताते हे मुनीश्वर ! तुम सोइ उपाय कहो जिस कर चित्तरूपी शत्रुको जीतों अब मुझको किसी भोगकी इच्छा नहा, अरु जगत्की लक्ष्मी मुझको बिरस भासती है, जैसे चन्द्रमा बादरकी इच्छा नहीं करता, अरु चातु-

मांसमें आच्छादित होय जाता है, ताते मैं भोगकी नहीं इच्छा करता और जगत्की लक्ष्मीको मैं नहीं चाहता अरु मेरा चित्त है सो परम शत्रु है.

हे मुनीश्वर ! महापुरुष जो जीतनेका यत्न करते हैं सो जब चित्तको जीतैं तब परमपदको पावें, ताते मुझको सोई उपाय कहो जिसंकर मनको जीतों, सब दुःख इसके आश्रयते रहते हैं, जैसे पर्वतपर वन है सो पर्वतके आश्रयते रहता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्यवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२ ।

अथ तृष्णागारुडीवर्णन ।

श्रीरामावोच–हे ब्रह्मन् ! चैतन्यरूपी आकाशमें जो तृष्णारूपी रात्रि आई है तामें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिक उलूक विचरते हैं, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होवे तब तृष्णारूपी रात्रिका अभाव होइजावे. जब रात्रि नष्ट भई, तब मोहादिक उलूकभी नष्ट होजाते हैं. जब सूर्यका उदय होता है तब बर्फ उष्ण होय पिघल जाता है तैसे संतोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता सुखाती है. बहुरि तृष्णा कैसी है जैसे शून्यवनमें पिशाचनी अपने परिवार सहित फिरती रहती है, अरु प्रसन्न होती है सो वन अ

पिशाच कैसा है. आत्मपदते शून्य जो चित्त सो भयानक शून्य वन है तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी है अरु मोहादिक उसका परिवार है. उनको साथ लेकर फिरती है.

हे मुनीश्वर ! चित्तरूपी पर्वत है; तिसके आश्रयते तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलता है, अरु नानाप्रकारके संकल्परूपी तरंगको पसारते हैं जैसे मेघको देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसे तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघको देखके प्रसन्न होता है ताते परम दुःखका मूल तृष्णा है. जब मैं किसी संतोषादि गुणका आश्रय करता हों तब तृष्णा तिसको नाश करदेती है. जैसे सुंदर सारंगीको चूहा तोर डारता है तैसे संतोषादि गुणको तृष्णा नाश करती है.

हे मुनीश्वर ! सबते उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करता हों तब तृष्णा विराजने नहीं देती. जैसे जालमें फँसा हुआ पक्षी आकाशमें उडनेका यत्न करता है परंतु उड नहीं सकता है, तैसे मैं अनात्मपदमेंते आत्मपदको प्राप्त नहीं हो सकता. स्त्री पुत्र अरु कुटुम्बने जाल बिछाया है. तामें फँसा हों सो निकस नहीं सकता. सो आशारूपी फाँसीमें बँधा हुआ कबहूं ऊर्ध्वको जाता हों कबहूं अधःपात होता हों, सो घटीयन्त्रकी नाईं मेरी गति है. जैसे इन्द्रका धनुष मेघमें मलीन होता है सो बडा अरु बहुत रङ्गसों भरा है, परन्तु मध्यते शून्य है तैसे तृष्णा मलीन अन्तःकरणमें होती है सो बडी है

अरु गुणरूपी रङ्गते रङ्गी है देखनेमात्रको सुन्दर है परन्तु इससे कार्य्यसिद्धि कछु नहीं होता.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है. तिससे दुःखरूपी बुंद निकसते हैं अरु तृष्णारूपी काली नागनी है. उसका स्पर्श तो कोमल है परंतु विषयकरके पूर्ण है, तिसके डसेते मृतक होजाता है; अरु तृष्णारूपी बादर है सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करता है जब ज्ञानरूपी पवन निकसै तब तृष्णारूपी बादरका नाश होवे अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवै, अरु अज्ञानरूपी कमलका संकोच करनहारी तृष्णारूपी निशा है, अरु तृष्णारूपी महा भयानक काली रात्रि है. जिसकर बडे धीरजवान भी भयभीत हैं; अरु नयनवालेको भी अंध कर डारती है, जब यह आवती है; तब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रको अंध कर डारती है, अर्थ यह जो सत्य असत्यको विचारने नहीं देती.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी डाकनी है, सो संतोषादिक पुत्रोंको मार डारती है, अरु तृष्णारूपी कंदरा है तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं, अरु तृष्णारूपी समुद्र है तिसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है तातें सोई उपाय मुझको कहो,जिसकर तृष्णारूपी दुःखते छूटौं.

हे मुनीश्वर ! अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु इंद्रके वज्रकर भी ऐसा दुःख नहीं होता, जैसे दुःख तृष्णा

कर होता है. सो तृष्णाके प्रहारसों घायल बडे दुःखको पाता है, अरु तृष्णारूपी दीपकमें परा जरता है, तिसमें संतोषादिक पतंगिये जर जाते हैं, जैसे जलमें मछली रहती हैं. सो जलमें कंकरी, रेती आदि वैसेको देख,मांस जानकर वह मुखमें लेती है, तातें उसका अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता तैसे तृष्णा भी जो कछु पदार्थ देखती है तिसके पास उडती है अरु तृप्ति किसी कर नहीं होती, अरु तृष्णारूपी एक पंखनी है सो सब कहूं उडजाती है. अरु स्थिर कबहूँ नहीं होती तैसे तृष्णाभी कबहूं किसी पदार्थको कबहूं किसीको ग्रहण करती है, परंतु स्थिर कबहूं नहीं होती, अरु तृष्णारूपी वानर है सो कबहूं किसी वृक्षपर, कबहूं किसीके ऊपर जाता है, स्थिर कबहूं नहीं होता है. जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता तिसके निमित्त यत्न करता है. तैसे तृष्णाहू नाना प्रकारके पदार्थको ग्रहण करती है. अरु भोग कर तृप्त कदाचित् नहीं होती. जैसे घृतकी आहुतिकर अग्नि तृप्ति नहीं पावे तैसे जो पदार्थ प्राप्ति योग्य नहीं है तिसकी और भी तृष्णा दौरती है, शांतिको नहीं पाती है.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है तिसमें जो बहाया पुरुष, ताको कहांका कहां लेजाती है, कबहूं तो पहारकी बाजूमें लेजाय. कबहूं दिशामें लेजाय परंतु इनको ले फिरती है, तैसे तृष्णारूपी नदी है, सो मुझको

ले फिरती है अरु तृष्णारूपी नदी है, इसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं हैं, अरु तृष्णारूपी नटनी है, अरु जगत्रूपी अखाडा तिसने लगाया है, तिसको सिर ऊंचा कर देखती है. अरु मूर्ख बडे प्रसन्न होते हैं; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा आता है. तैसे मूर्ख तृष्णाको देखकर प्रसन्न होते हैं, तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है; जो पुरुष इसका त्याग करता है. तब वाके पीछे लगी फिरती है, कबहूं इसका त्याग नहीं करती, अरु तृष्णारूपी डोर है; तिसके साथ जीवरूपी पशु बांधे हुए हैं, तिस कर भ्रमते फिरते हैं अरु तृष्णा दुष्टनी है. जब शुभ गुणको देखे तब तिनको मार डारती है, तिसके संयोगते मैं दीन होजाता हूँ. जैसे पपैया मेघको देखकर प्रसन्न होता है अरु बूंद ग्रहण करने लगता है; और मेघको जब पवन ले जाता है तब पपैया दीन होजाता है तैसे तृष्णा शुभ गुणका नाश करती है तब मैं दीन हो जाता हों.

हे मुनीश्वर! तृष्णाने मुझको दूरते दूर डारा है जैसे सूखे तृणको पवन दूरते दूर डारता है तैसे तृष्णारूपी पवनने मुझको दूरते दूर डारा है, आत्मपदते दूर परा हों; हे मुनीश्वर! जैसे भौंरा कमलके ऊपर जाता है, कबहूं नीचे बैठता है, कबहूँ आस पास फिरता है; अरु स्थिर नहीं होता तैसे तृष्णारूपी भौंरा संसार रूपी कमलके

नीचे ऊपर फिरता है, कदाचित् ठहरता नहीं है जैसे मोतीका बांस होता है; तिसते अनेक मोती निकसते हैं, तैसे तृष्णारूपी बांसते जगत्रूपी अनेक मोती निकसते हैं, तिसपर लोभीका मन पूर्ण नहीं होता है तैसे तृष्णाते मन पूर्ण नहीं होता दुःखरूपी रत्नका तृष्णारूपी डब्बा है तिसमें अनेक दुःख रहते हैं ताते सोई उपाय कहो. जिसकर तृष्णा निवृत्त होवे.

यह तृष्णा वैराग्यसों निवृत्ति पाती है, अरु किसी उपायकर निवृत्ति नहीं होती है। जैसे अंधकारका नाश प्रकाशकर होता है और किसी उपायकर नहीं होता तैसे तृष्णाका नाश और उपायसों नहीं है, अरु तृष्णारूपी जल हैं सो गुणरूपी पृथ्वीको खोद डारता है, अरु तृष्णारूपी लता है, सो गुणरूपी रसको पीती है अरु तृष्णारूपी धूर है सो अंतःकरणरूपी जलमें उछलके मलीन करती है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी नदी है सो वर्षाकालमें बढती है, फिर घट जाती है तैसे जब इष्ट भोगरूपी जल प्राप्त होताहै तब हर्ष कर बढती हैं, जब भोगरूपी जल घट जाता है तब सूखके क्षीण होजाती है। हे मुनीश्वर ! इस तृष्णाने मुझको दीन किया है, जैसे सूखे तृणको पवन उडाता है तैसे मुझको उडाती है ताते सोई उपाय

तुम कहो जिसकर तृष्णाका नाश होवे अरु आत्मप-
दकी प्राप्ति होवे, अरु दुःख नष्ट होवे, अरु आनंद होवे।

इति श्रीयोवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडीवर्णनं
नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३ ।

अथ देहनैराश्यवर्णन ।

श्रीरामोवाच—हे मुनीश्वर ! यह जो अमंगलरूप शरी
जगत्में उत्पत्ति पाया है सो बडा अभाग्यरूप है सद
विकारवान् मांस मज्जा कर पूर्ण है, सदा अपवित्र है इ
करके मैं कछु अर्थसिद्धि होना नहीं देखता. ताते ति
विकाररूप शरीरकी इच्छा मैं नहीं रखता.

यह शरीर न अज्ञ है, न तज्ज्ञ है अर्थ यह जो न ज
है न चैतन्य है जैसे अग्निके संयोगकर लोहा अग्निव
होता है सो जलाता भी है परन्तु आप नहीं जलता तै
यह देह न जड है न चैतन्य है। जड इस कारणते न
कि, इसते कार्य भी होता है, अरु चैतन्य इस कारण
नहीं कि इसको आपते ज्ञान कछु नहीं होता तात
मध्यम भावमें है। काहेते ? जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप
रहा है सो लोह अग्निकी नाईं जानता हों अरु आप
अपवित्र रूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा करि पूर्ण
अरु विकारवान्, ऐसी जो देह है सो दुःखका स्थान है

अरु इष्टके पायेते हर्षवान् होती है अरु अनिष्टके पायेते शोकवान् होती है, ताते ऐसे शरीरकी मुझको इच्छा नहीं. यह अज्ञान कर उपजता है.

हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहंपना फुरता है सो दुःखका कारण है, यह संसारमें स्थित होकर नाना प्रकारके शब्द करता है अरु तूष्णीं कबहूं नहीं धारता है, अरु अहंकाररूपी बिलाडा देहमें रहा हुआ अहं अहं करता है, चुप कदाचित् नहीं रहता है. हे मुनीश्वर ! जो किसीके निमित्त शब्द होवे सो सुन्दर है; अन्यथा शब्द व्यर्थ है. जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर होता है तैसे अहंकारते रहित जो पद है; सो शोभनीक है; और सब व्यर्थ है. अरु शरीररूपी नौका भोगरूपी रेतीमें परी है इसका पार होना कठिन है. जब वैराग्यरूपी जल बढै अरु प्रवाह होवे अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल होवे तब संसारके पाररूपी किनारेपै पहुँचें अरु शरीररूपी बेडा हैं अरु संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जलमें परा है अरु तृष्णा बडा प्रवाह है. अरु भोगरूपी तिसमें मगर हैं, सो शरीररूपी बेडाको पार लगने नहीं देता. जब शरीररूपी बेडाके साथ वैराग्यरूपी वायु लगै अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल लगै तब शरीररूपी बेडा पारको पावे। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने ऐसे बेडेको उपायकर आपको संसार समुद्रते पार

किया है सो सुखी भया है; अरु जिसने नहीं किया सो परम आपदाको प्राप्त होता है, सो इस बेडेकर उलटे डूबेंगे जैसे बेडेमें छिद्र होवै, और वामें जल प्रवेश कर आवे तब वह डूब जाता है, अरु तिसमें जो मच्छ है सो खाय जाता है सो इहां शरीररूपी बेडेका तृष्णारूपी छिद्र है, तिस करके इहां संसारसमुद्रमें डूब जाता है अरु भोगरूपी मगर इसको खाता है. अरु यह आश्चर्य है कि बेडा अपने निकट नहीं भासता है, अरु मनुष्य सो मूर्खता करके आपको बेडा मानता है, अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःख पाता है. अरु शरीररूपी वृक्ष है, तामें भुजारूपी शाखा है अरु अंगुरी इसके पत्र हैं. अरु जंघा इसके स्तंभ हैं, अरु वासना इसकी जड है अरु सुख दुःख इसके फूल हैं अरु तृष्णारूपी घुन है सो शरीररूपी वृक्षको खाता रहता है। जब इसको श्वेत फूल लगे तब नाशका समय पाता है कारण जो मृत्युके निकटवर्ती होता है. बहुरि शरीररूपी इसके टास हैं, अरु गिटे इसका गुंछा है अरु दाँत फूल जंघा स्तंभ है, अरु कर्म जलकर बढ जाता है जैसे वृक्षते जल निकसता है, सो चिकटा है तैसे जल शरीरके द्वारा निकसता रहता है अरु तृष्णाकी विषते पूर्ण सर्पिनी रहती है. अरु जो कामनाके लिये इस वृक्षका आश्रय लेता है, तब तृष्णारूपी सर्पिनी तिसको डसती है. तिस विषसों वह मरि

जाता है हे मुनीश्वर ! ऐसा जो अमंगल रूपी शरीर वृक्ष है तिसकी इच्छा मुझको नहीं है यह परम दुःखका कारण है. जबलग यह पुरुष अपने परिवारमें बँधा हुआ है तब लग मुक्ति नहीं होती; जब परिवारका त्याग करैं तब मुक्ति होवे. देह इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इसका परिवार है इनमें जो अहंभाव है, वाका त्याग करै तब मुक्ति होवे अन्यथा मुक्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो पवित्रही स्थानमें रहते हैं, अपवित्रमें नहीं रहते. सो अपवित्र स्थान यह देह है, इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है अरु अस्थिरूपी इस घरमें लकडे हैं, रुधिर, मूत्र, विष्ठाका इसमें कीच लगाया है, और मांसकी कहगी लकरी है अरु अहंकार-रूपी इसमें श्वपच रहता है अरु तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्री है अरु काम क्रोध, मोह लोभ इसके बेटे हैं आन्त अरु विष्ठादिक करि पूर्ण भरा हुआ है ऐसा जो अपवित्र स्थान अमङ्गलरूप जो शरीर तिसका मैं अङ्गी-कार नहीं करता यह शरीर रहो चाहे मत रहो इसके साथ मेरा अब कछु प्रयोजन नहीं.

हे मुनीश्वर ! एक बडा घर है तिसमें बडे पशु रहते हैं; सो धूरको उडावते हैं, सो गृहमें कोऊ जाता है तब सींगसो मारने लगते हैं अरु धूरभी उसके ऊपर गिरती है, सो शरीररूपी बडा गृह है तिसमें इंद्रियरूपी पशु हैं,

जब इस गृहमें पैठता है; तब बडी आपदाको प्राप्त होता है, तात्पर्य यह—जो इसमें अहम्भाव करता है तब इंद्रियरूप पशु सो विषयरूप सींगसों मारते हैं अरु तृष्णारूपी धूर इसको मलीन करती है । हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरको मैं अंगीकार नहीं करता. जिसमें सदा कलह पडेही रहते हैं जिसमें ज्ञानरूपी संपदा प्रवेश नहीं होती ऐसा जो शरीररूपी गृह है, तिसमें तृष्णारूपी चण्डी स्त्री रहती है. सो इंद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है. सो सदा कल्पना करती रहती है, तिसकर शमदमादिरूप सम्पदाका प्रवेश नहीं होता. तिस घरमें एक शय्या है जब उसके ऊपर विश्राम करता है तब कछुक सुख पाता है, परंतु तृष्णाका जो परिवार है सो विश्राम करने नहीं देता सो सुषुप्तिरूपी शय्या है; जब उसमें विश्राम करता है, तब काम क्रोधादिक ऊधम करते हैं. अरु ये चंडी स्त्रीका जो परिवार काम, क्रोध, लोभ, मोह इच्छा है सो उठाय देते हैं, विश्राम करने नहीं देते. हे मुनीश्वर! ऐसा दुःखका मूल जो शरीररूपी गृह है तिसकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है, यह परम दुःख देनेहारा है. इसकी इच्छा मुझको नहीं है.

हे मुनीश्वर! शरीर रूपी वृक्ष है तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय स्थित भई है सो जैसे कौवानी नीच पदार्थके पास उडती है, तैसे तृष्णारूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थके पास उडती है बहुरि तृष्णा बंदरीकी नाईं

शरीररूपी वृक्षको हिलाती है वृक्षको स्थिर होने नहीं देती अरु जैसे उन्मत्त हस्ती कीचमें फँस जाता है अरु निकस नहीं सकता अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानरूपी मद करि उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फंसा है, सो निकस नहीं सकता है; पराया दुःख पावता है ऐसे दुःख पावनेहारा शरीर है तिसको मैं अंगीकार नहीं करता.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिर करि पूर्ण है, सो अपवित्र है. जैसे हस्तीके कान सदाही हिलते हैं तैसे इसको मृत्यु परा हिलाता. कछु कालका विलम्ब है. परन्तु मृत्यु इसका ग्रास करलेवेगा. ताते मैं इस शरीरको अंगीकार नहीं करता हों.

यह शरीर कृतघ्न है, भोग भुगतता है. बडे ऐश्वर्यको प्राप्त करता है परन्तु मृत्यु इसकी सखापन नहीं करता है. जब जीव इसको छोडकर परलोकको जाता है तब अकेलाही जाता है, और शरीरको छोड देता है. जीव इसके सुख निमित्त अनेक यत्न करता है, परन्तु सङ्गमें सदा नहीं रहता. ऐसा जो कृतघ्न शरीर है इसका मैंने मनसों त्याग किया है, जो यह दुःख देनेहारा है.

हे मुनीश्वर ! और आश्चर्य देखो, जो वाईका भोग करता है, तिसके साथ चलता नहीं, जैसे धूर कर मार्ग भासनेते रह जाता है, तैसे यह जीव जब चलने लगता है तब शरीरके साथ क्षोभवान् होता अरु वासनारूप धूर संयुक्त चलता है, परन्तु दीखता नहीं कि, कहाँ गया

जब परलोकको जाता है, तब बडा कष्ट होता है
काहेते कि, शरीरके साथ स्पर्श किया है.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर क्षणभंगुर है. जैसे जलकी
बून्द पत्रके ऊपर गिरती है, सो क्षणमात्र रहती है तैसे
शरीर भी क्षणभङ्ग है, ऐसे शरीरमें आस्था करनी सो
मूर्खता है, अरु ऐसे शरीरके ऊपर उपकार करना भी
दुःखके निमित्त है, सुख कछु नहीं है. और जो धनाढ्य
शरीरसों बडे भोग भुगतते हैं अरु निर्धन थोडे भोग भुग
तते हैं, परन्तु जरावस्था अरु मृत्यु दोनोंको होते हैं इसमें
विशेषता कछु नहीं शरीरका उपकार करना और भोग
भुगतना सो तृष्णा करके उलटा दुःखका कारण है जैसे
कोऊ नागिनी घरमें रखके उसको दूध प्यावे, सोई आखिर
उसको काटके मारैगी, तैसे जीवने तृष्णारूपी नागिनिके
साथ सखाइ करी है. सो मारैगी, क्योंकि, नाशवन्त है
इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो मूर्खता
है जैसे पवनका वेग आता है, अरु जाता है, तैसे यह
शरीर नाशवन्त है, इससों प्रीति करनी सो दुःखका कारण
है, सब जीव इसकी आस्थामें बाँधे हुए हैं, इसका त्याग
कोई बिरलेनेही किया है. जैसे कोई बिरला मृग होता है सो
मरुथलके जलकी आस्था त्यागता है और सब परे भ्रमते हैं

हे मुनीश्वर ! बिजुलीका अरु दीपकका प्रकाश भी
आता जाता दीखता है; परन्तु इस शरीरका आदिअन्त

नहीं दीखता है कि, कहांते आता है, अरु कहां जाता है. जैसे समुद्रमें बुदबुदे उपजते हैं अरु मिटजाते हैं, तिसकी आस्था करनेते कछु लाभ नहीं, तैसे यह शरीरकी आस्था करनी योग्य नहीं. यह अत्यन्त नाश रूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता है. जैसे बिजुरी स्थिर नहीं होती तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता, इसकी मैं आस्था नहीं करता इसका अभिमान मैंने त्यागा है, जैसे कोई सूखे तृणको त्याग देता है तैसे मैंने अहं ममता त्यागी है.

हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरको पुष्ट करना, सो दुःखके निमित्त है; यह शरीर किसी अर्थ आवने योग्य नहीं जलावने योग्य है. जैसे लकडी जलाये विना और काममें नहीं आती है, तैसे यह शरीरभी जड अरु गूंगा जलावनेके अर्थ है.

हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने काष्ठरूपी शरीरको ज्ञानाग्निकर जलाया है तिनका परम अर्थ सिद्ध भया है अरु जिनने नहीं जलाया सो परम दुःख पाया है.

हे मुनीश्वर ! न मैं शरीर हों, न मेरा शरीर है, न इसका मैं हों, न यह मेरा है, अब मुझको कामना कोई नहीं है, मैं निराशी पुरुष हों. अरु शरीरके साथ मुझको प्रयोजन कछु नहीं है, ताते तुम सोई उपाय कहो जिस कर मैं परमपदकी प्राप्ति पाऊँ.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने शरीरका अभिमान त्याग
है सो परमानंद रूप है और जिसको देहका अभिमा
है, सो परम दुःखी है. जेते कछु दुःख हैं सो शरीर
संयोग करि होते हैं. मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दं
भ्रांति, मोह, शोक आदि सर्व विकार देहके संयोग क
होते हैं, जिसको देहमें अभिमान है तिसको धिक्कार है
और सब आपदा भी तिसको प्राप्त होती हैं जैसे समुद्र
नदी आयकर प्रवेश करती है. तैसे देहाभिमानमें सर्व
आपदा आय प्रवेश करती हैं. जिसको देहका अभि
मान नहीं सो पुरुषोंमें उत्तम है, अरु वंदना करने योग
है, ऐसेको मेरा नमस्कार है, अरु सर्व संपदा भ
तिसको प्राप्त होती है. जैसे मानससरोवरमें सब हं
आय रहते हैं तैसे जहां देहाभिमान नहीं रहा तहां स
संपदा आय रहती हैं.

हे मुनीश्वर ! जैसी अपनी छायामें बालक वेता
कल्पता है अरु तिसकर भय पाता है. जब इसक
विचारकी प्राप्ति होती है तब वैतालका अभाव ह
जाता है तैसे अज्ञानकर मुझको अहंकाररूपी पिशाच
शरीरमें दृढ आस्था बताई है. ताते सोई उपाय कह
जिस कर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवे अ
आस्थारूपी फांसी टूटे.

हे मुनीश्वर ! प्रथम जो मुझको अज्ञानकर संयो
था सो अहंकाररूपी पिशाचका था. तिसते अनंत

शरीरमें आस्था उपजी है. जैसे बीजते प्रथम अंकुर होता है; फिर अंकुरते वृक्ष होता है. तैसे अहंकारसे शरीरकी आस्था होती है. हे मुनीश्वर ! इस अहंकाररूपी पिशाचने सब जीवनको दीन किये हैं जैसे बालकको छायामें वैताल भासता है अरु दीनताको प्राप्त होता है. तैसे अहंकाररूपी पिशाचने मुझको दीन किया है सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारते सिद्ध है, अरु विचार कियेते अभावको प्राप्त होता है जैसे प्रकाशकर अंधकारका नाश हो जाता है, तैसे विचार कियेते अहंकार नाश हो जाता है.

हे मुनीश्वर ! जो शरीरमें आस्था रक्खी है सो शरीर जलके प्रवाहकी नाईं स्थिर नहीं होता, ऐसा चल है जैसे बिजुरीकी चमक स्थिर नहीं होती, अरु गंधर्वनगरकी आस्था व्यर्थ है, तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थ है. हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं अरु जगत्के पदार्थ निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं. जैसे स्वप्न मिथ्या है तैसे यह जगत् मिथ्या है. तिसको सत्य जानकर जो इसका यत्न करता है सो अपने बंधनके निमित्त करता है. जैसे घुरान गुफा बनाती है, सो अपने बंधनके निमित्त है. अरु पतंग दीपककी इच्छा करता है सो अपने नाशके निमित्त है तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमान कर भोगकी इच्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त है.

हे मुनीश्वर! मैं तो इस शरीरको अंगीकार नहीं करत
इस शरीरका अभिमान परम दुःख देने हारा है. जिसव
देह अभिमान नहीं रहा तिसको भोगकीइच्छा भी
रहैगी ताते मैं निराश हों, अरु परमपदकी इच्छा
जिसके पायेते बहुरि संसार समुद्रकी प्राप्ति न होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्य-
वर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४ ।

अथ बालावस्थावर्णन ।

श्रीरामोवाच—हे मुनीश्वर! इस संसारसमुद्रमें
जन्म पाया है, तामें बालक अवस्था इसको प्राप्त भई
सो भी परम दुःखका मूल है, तिसमें परम दीन हो जा
है, अरु जेते अवगुण इसमें आय प्रवेश करते हैं
कहता हों अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीन
अरु दुःख, संताप एते विकार इसको आय प्राप्त होते
यह बाल्यावस्था महा विकारवान् है, अरु बालक प
र्थकी ओर धावता है, एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरी
चाहता है स्थिर नहीं रहता है, फिर औरमें लग जा
है. जैसे वानर ठहरके नहीं बैठता, अरु जो कोऊ
क्रोध करता है, तब अंतरते परा जलता है, अरु
बडी इच्छा करता है तिसकी प्राप्ति नहीं होती;
तृष्णामें रहता है अरु क्षणमें भय भीत होजाता

शांतिको प्राप्त नहीं होता फिर महादीन हो जाता है जैसे कदलीवनका हस्ती सांकरसों बांधाहुआ दीन हो जाता है तैसे यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्थाकर दीन होजाता है. जो कुछ इच्छा करता है सो विचार विना करता है, तिस कर दुःख पाता है. अरु मूढ गुंग अवस्था है तिसकर कछु सिद्धि नहीं होती; कोऊ पदार्थकी प्राप्ति होती है. तिसमें क्षणमात्र सुखी रहता है. बहुरि तपने लगता है. जैसे तपती पृथ्वीपर जल डारिये तब एक क्षण शीतल होती है, फिर उसी प्रकारसों तपती है तैसे वह भी तपता रहता है. जैसे रात्रिके अंतमें सूर्य उदय होता है तिसकर उलूकादि कष्टवान् होते हैं तैसे इस जीवके स्वरूपको अज्ञान कर बालावस्थामें कष्ट होताहै.

हे मुनीश्वर ! जो बालक अवस्थाकी संगति करता है सो भी मूर्ख है। काहेते कि, यह विवेक रहित अवस्था है अरु सदा अपवित्र है और सदा पदार्थकी ओर धावता है ऐसी मूढ अरु दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं जिस पदार्थको देखता है तिसकी ओर धावता है और क्षण क्षण अपमानको पाता है, जैसे कूकर क्षण क्षणमें द्वारकी ओर धावता है, अरु अपमान पाता है तैसे बालक अपमानको प्राप्त होता है, अरु बाकलको सदा माता अरु पिताका भय रहता है, बांधवोंका सदा भय रहता है, अरु आपते बडे बालकका भी भय रहता है, अरु

पशु पक्षीहुका भय रहता है. हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखरूप
अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं. जैसे स्त्रीके नयन चंचल
हैं, अरु नदीका प्रवाह चंचल है, इसते भी मन अरु
बालक चञ्चल है, ऐसे जानता हूँ, अरु सब बालकते
कनिष्ठ है, बालक सबते चंचल है. जैसा मन चंचल है,
तैसा बालक भी चंचल है मनका रूप बालक है.

हे मुनीश्वर ! जैसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमें नहीं
ठहरता तैसे बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता.
इस पदार्थ कर मेरा नाश होवैगा, ऐसा विचार भी
तिसको नहीं, अरु इसकर मेरा कल्याण होवेगा सो
विचार भी नहीं ऐसेई परा चेष्टा करता है, अरु सदा दीन
रहता है अरु सुख दुःख इच्छा द्वेष करके तपायमान
रहता है. जैसे ज्येष्ठ आषाढमें पृथ्वी तपायमान होती है
तैसे बालक तप्ताई रहता है, शांतिको कदाचित् नहीं
पाता अरु जब विद्या पढने लगता है तब गुरुसों बडा
भयभीत होता है; जैसे कोई जमको देखके भय पावै
और गरुडको देखके जैसे सर्प भय पावै तैसे भयभीत
होजाता है. जब शरीरको कोई कष्ट आय प्राप्त होता है
तब बडे दुःखको प्राप्त होता है परन्तु दुःखके निवारणको
समर्थ नहीं होता; अरु सहनको भी समर्थ नहीं अन्तरसे
परा जलता है अरु दुःखते कछु बोल सकता नहीं; जैसे
वृक्ष कुछ नहीं बोल सकता, अरु जैसे अवर तिर्यक् योनि

दुःख पावते हैं अरु कहि नहीं सकते हैं अरु दुखका निवारण नहीं कर सकते, न सहार कर सकते, अन्तरते परे जलते हैं तैसे बालक गूँगा मूढहुआ दुःख पाता है.

हे मुनीश्वर ! ऐसी जो बालककी अवस्था तिनकी जो स्तुति करता है सो मूर्ख है. यह तो परमदुःखरूप अवस्था है, इसमें विवेक विचार कछु नहीं एक खानेको पाता है, अरु रुदन करता है ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती है जैसे बिजुरी अरु जलके बुदबुदे स्थिर नहीं रहते तैसे बालकहू स्थिर कदाचित् नहीं होता.

हे मुनीश्वर ! यह महामूर्ख अवस्था है, कबहूँ कहता है, हे पिता ! मुझको बर्फका टुकडा भूनि दे, कबहूँ कहता है मुझको चन्द्रमा उतार दे; ये सब मूर्खताका वचन हैं; ताते ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता जैसे दुःखका अनुभव बालकको होता है, सो हमारे स्वप्नमें भी नहीं आया। तात्पर्य यह कि, बालावस्थामें बडा दुःख है. यह बालावस्था अवगुणका भूषण है, सो अवगुण कर सोभती है, ऐसी नीच अवस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता इसकी स्तुति करनी सो मूर्खता है इसमें गुण कोई भी नहीं है.

इति योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बालावस्थानवर्णनं
नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५।

अथ युवागारुडीवर्णन।

श्रीराम उवाच- हे मुनीश्वर! दुःखरूप बालावस्थाके अनंतर जो युवा अवस्था आती है सो नीचेते ऊँची चढती है, सो भी उत्तम गिनवेके निमित्त नहीं है अधिक दुःख दायक है, जब युवा अवस्था आती है तब कामरूपी पिशाच आय लगता है. सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्थारूपी गडेलेमें आय स्थित होता है, चित्त फिराता है अरु इच्छामें पसारता है. जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आता है अरु पँखरीनको पसारता है, तैसे युवावस्थारूपी सूर्य उदय होता है तब नाना प्रकारकी इच्छा फुरती हैं अरु कामरूपी पिशाच इसको स्त्रीमें डार देता है तहां परा दुःख पाता है, जैसे कोईको अग्निके कुण्डमें डार दिया होय अरु वह दुःख पावे तैसे कामके वश हुआ दुःखको पाता है.

हे मुनीश्वर! कछु विकार है, सो सब युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए हैं जैसे धनवान्को देखके निर्धन सब धनकी आशा करते हैं. तैसे युवा अवस्थाको देखकर सब दोष आय इकट्ठे होते हैं. अरु जो भोगको सुखरूप जानकर भोगकी इच्छा करता है सो परम दुःखका कारण है, जैसे मद्यका घट भरा हुआ देखने मात्रको सुंदर लगता है, परंतु जब उसका पान करै तब उन्म-

हो जाय तिस उन्मत्तता कर दीन होजाता है अरु निराद-रको पाता है तैसे यह भोग देखने मात्रको सुंदर भासता है परंतु जब इनको भुगतता है तब तृष्णाकर उन्मत्त हो जाता है अरु पराधीन हो जाता है.

हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सब जो चोर हैं, सो युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं अरु आत्मज्ञानरूपी धनको चोर ले जाते हैं; तिस कर दीन होता है, यह पुरुष आत्मानंदके वियोग कर दीन हुआ है. हे मुनीश्वर! ऐसी जो दुःख देनहारी युवा-वस्था तिसको मैं अंगीकार नहीं करता, अरु शांति जो है सो चित्त स्थिर करनेके लिये है सो चित्त युवा अव-स्थामें विषयकी ओर धावता है जैसे बाण लक्षकी ओर जाता है. तब उसको विषयका संयोग होता है सो विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती अरु तृष्णाके मारे जन्मते जन्मांतररूप दुःखको पाता है, हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखदायक युवा अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु हैं सो सब युवा अवस्थामें आयकर प्राप्त होते हैं. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं-कार, चपलता इत्यादिक जो दुःख हैं, सो सब युवा अव-स्थामें स्थिर होते हैं जैसे प्रलयकालमें सब रोग आय-स्थिर होते हैं. तैसे युवा अवस्थामें सब उपद्रव आय मिलते हैं और क्षणभंग हैं. जैसे बिजुरीका चमका होयके

मिटजाता है तैसे, जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं अरु मिट-
जाते हैं तैसे युवाअवस्था होयके मिट जाती है. जैसे
स्वप्नमें कोई स्त्री विकारकर छल जाती है. तैसे अज्ञा-
नकर युवा अवस्था छल जाती है.

हे मुनीश्वर ! युवा अवस्था जीवकी परम शत्रु है. जो
पुरुष इस शत्रुके शस्त्रते बचे हैं वे धन्य हैं। इसके शस्त्र
काम, क्रोध हैं जो इनते छूटा है सो वज्रके प्रहार कर
भी छेदा न जावे, जो इनकर बाँधा हुआ है सो पशु है.

हे मुनीश्वर ! युवावस्था देखनेमें तो सुन्दर है, परन्तु
अन्तरते तृष्णा करके जर्जरित है जैसे वृक्ष देखनेमें तो
सुन्दर होय, अंतरते घुन लगा हुआ है. तैसे युवावस्था
जो भोगके निमित्त यत्न करती है, सो भोग आपातरम-
णीय है कारण यह कि, जबलग इंद्रिय अरु विषयका
संयोग है तबलग अविचारित भला लगता है, अरु जब
वियोग हुआ तब दुःख होता है ताते भोग करके मूर्ख
प्रसन्न होते हैं अरु उन्मत्त होते हैं तिसको शांति नहीं
होती अरु अंतरसे सदा तृष्णा रहती है स्त्रीमें चित्तकी
आसक्ति रहती है. जब इष्ट वनिताका वियोग होता है तब
तिसके स्मरण करके जलता है. जैसे वनका वृक्ष अग्नि
करके जलता है तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव
जलता है, जैसे उन्मत्त हस्ती साङ्कर करके बन्धन पाता
है, तब स्थिर होता है; कहूं जाय नहीं सकता तैसे काम-

रूपी हस्ती है, तिसको सांकररूप युवावस्था बंधन करती है, अरु युवावस्थारूपी नदी है तिसमें इच्छारूपी तरंग उठते हैं सो कदाचित् शांतिको नहीं पाते हैं,

हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था बडी दुष्ट है कोऊ बडा बुद्धिमान् होवे, अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवे, एते गुण करके प्रसन्न होवे, तिसको बुद्धिकी भी युवावस्था मलिन कर डारती है. जैसे निर्मल जलकी बडी नदी होवे अरु जब वर्षाकाल आवे तब मलिन होय जावे; तैसे युवावस्थामें बुद्धि मलिन होय जाती है.

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है तिसमें युवावस्था रूपी वल्ली प्रगट होती है; सो पुष्ट होता है तब चित्तरूपी भँवरा आय बैठता है;सो तृष्णारूपी तिसकी सुगन्ध करके उन्मत्त होता है; अरु सब विचार भूल जाता है. जैसे जब प्रबल पवन चलता है तब सूखे पत्रको उडाय लेजाता है अरु रहने नहीं देता तैसे युवावस्था आवत्ती है, तब वैराग्य संतोषादिक गुणका अभाव करती है अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है, युवावस्थाके उदयते सब दुःख प्रफुल्लित हो आते हैं ताते सब दुःखका मूल युवावस्था है जैसे सूर्यके उदयते सूर्य मुखी कमल खिल आते हैं, तैसे चित्तरूपी कमल संसार रूपी पंखुरी अरु सत्यतारूपी सुगंध कर खिल आता है. अरु तृष्णारूपी भौंरा तिसपर आय बैठता है, अब विषयकी सुगंध लेता है.

हे मुनीश्वर ! संसाररूपी रात्रि है, तिसमें युवावस्था रूपी तारागण प्रकाशते हैं. कारण यह जो शरीर युवावस्थाकर सुशोभित होता है अरु युवावस्था शरीरका जर्जरीभाव करके हो आती है. जैसे धानका छोटा वृक्ष हरा तबलग रहता है जबलग उसको फूल नहीं आया जब फूल आते हैं तब सूखनेको लगता है, अरु अन्नके कण परिपक्व होते हैं, तब अन्नके छोटे वृक्ष जर्जरभावको पाते हैं इसकी हरियावल नहीं रहसकती तैसे जबलग जवानी नहीं आई तबलग शरीर सुंदर कोमल रहता है जब जवानी आई तब शरीर क्रूर होजाता है, फेर परिपक्व होकर क्षीण होजाता है, अरु वृद्ध होता है ताते हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखकी मूलरूपी युवावस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं, जैसे समुद्र बडे जलकर पूर्ण है तरंगको पसारता है अरु उछलता है तौभी मर्यादाका त्याग नहीं करता; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकी है युवावस्था तो ऐसी है जो शास्त्रकी मर्यादा अरु लोककी मर्यादा मेटके चलती है, अरु तिनको अपना विचार नहीं रहता जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे युवावस्थामें शुभ अशुभ त्याग नहीं होता. जिसको विचार नहीं रहा तिसको शांति काहेते होवे, सदा व्याधि तापमें जरा रहता है, जैसे जल विना मच्छको शांति नहीं होती तैसे विचार बिना सदा पुरुष जलता रहता है.

जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आयके गर्जता है, तिसकर इसको यही संकल्प उठते हैं जो कोउ कामी पुरुष आवे तिसके साथमें यही चर्चा करों—हे मित्र! वह कैसी सुंदरी है? अरु कैसे उसके कटाक्ष हैं? सो किस प्रकार मोको प्राप्त होय. हे मुनीश्वर! इस इच्छाके साथ वह सदा जलता रहता है जैसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौरता है अरु जलकी अप्राप्ति कर जलता है तैसे कामी पुरुष विषयकी वासना करके जलता है. अरु शांति नहीं पाता है.

हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तम है. परन्तु जिनके अभाग्य है तिनको विषयते आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. जैसे चिंतामणि कोईको प्राप्त होवे तो तिसका निरादर करै और उसको जाने नहीं और डारि देवे तैसे जो पुरुष मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया सो बडे अभागी हैं अरु मूर्खता करके अपने जीवनको व्यर्थ खोय डारते हैं. अरु जो युवावस्थामें हैं परमदुःखका क्षेत्र अपने निमित्त बोते हैं, अरु जेते विकार युवावस्थामें हैं सो सब आयके इसको प्राप्त होते हैं मान, मोह, मद इत्यादि विकार करके पुरुषार्थका नाश करताहै; हे मुनीश्वर! ऐसे युवावस्था बडे विकारको प्राप्त करती है जैसे नदी वायुसों अनेक तरंग पसारती है तैसे युवावस्था चित्तके अनेक कामको उठावती है जैसे पक्षी पंख कर बहुत

उडता है जैसे सिंह भुजाके बलसों पशुके मारनेको दौ
है तैसे चित्त युवावस्था कर विक्षेपकी ओर धावता है.

हे मुनीश्वर ! समुद्रका तरना कठिन है, काहेते
तामें जल अथाह है अरु विस्तार भी बडा है
तिसमें मच्छ, कच्छ मगर बडे देहधारी रहते हैं, ए
दुस्तर समुद्रका तरना सो मैं सुगम मानता हों परंतु यु
वस्थाका तरना महा कठिन है; कारण यह कि युवा
स्थामें निर्दोष रहना कठिन है ऐसी संकटवाली जो यु
वस्था है तिसमें चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य
अरु वंदना करने योग्य हैं हे मुनीश्वर ! यह युवाव
चित्तको मलीन कर डारती है जैसे जलकी बावडी
तिसके निकट राख कांटे रहे होय सो पवन चलनेते
आय बावडीमें गिरे तैसे पवनरूपी युवावस्था दोष
धूरकांटेनको चित्तरूपी बावडीमें डारके मलीन
देती है, ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था तिस
इच्छा मुझको नहीं है.

युवावस्था मेरे पर यही कृपा करनी, जो तेरा द
नहीं होवे तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानता
जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोक नहीं सह सक
अरु सुखका निमित्त नहीं देखता तैसा तेरा आवना
सुखका निमित्त नहीं देखता ताते मुझपर दया करनी
अपना दर्शन न होवे.

हे मुनीश्वर ! युवावस्थाका तरना महा कठिन है. जो कोऊ यौवनवान् होवे सो नम्रता संयुक्त होवे और शास्त्रके गुण, वैराग्य, विचार संतोष, शान्ति इन कर संपन्न होवे सो दुर्लभ है जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य है तैसे युवावस्थामें वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना यह बडा आश्चर्य है ताते मुझको सोई उपाय कहो जिस कर युवावस्थाके दुःखकी मुक्ति होजाय अरु आत्म-पदकी प्राप्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुडी-
वर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६।

अथ स्त्रीदुराशावर्णन।

हे मुनीश्वर ! जिस काम विलासके निमित्त स्त्रीकी वांछा करता है; सो स्त्री अस्थि मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा-करि पूर्ण है इसीकी पूतरी बनी हुई है. जैसे जंत्रीकी बनी पूतरी होती है सो तागेसो कर अनेक चेष्टा करती है, तैसे यह अस्थि मांसादिककी पूतरीमें कछु और नहीं है. जो विचारकर नहीं देखता तिसको रमणीक दीखती है. जैसे पर्वतके शिखर दूरते सुन्दर अरु निकटते असार हैं पडे पत्थरई दीखते हैं, तैसे स्त्री वस्त्र अरु भूषणोंको करि सुन्दर भासती है. अरु जो अंगको भिन्न भिन्न विचार कर देखो तो सार कछु नहीं है जैसे नागनीके अंग बहुत

कोमल होते हैं परंतु उसका स्पर्श करो तो काटके मा
डारती है तैसे जो स्त्रीको स्पर्श करते हैं तिनको ना
कर डारती है जैसे विषकी बेलि देखने मात्रको सु
लगती है परंतु स्पर्श कियेते मार डारती है. जैसे हस्ती
जंजीरसे बाँधो तब जिस द्वारपै रहता है, तहांई स्थि
रहता है; तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है सो का
रूपी जंजीरसे बँधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थि
रहता है, वहांसे कहूं जाय नहीं सकता और जब हस्ती
महावत अंकुशका प्रहार करता है तब बंधनको तो
निकस जाता है तैसे यह चित्तरूपी मूर्ख हस्ती है
महावतरूपी गुरुका उपदेशरूपी अंकुशका बारबार प्र
करता है तब सो भी निर्बंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर ! कामी पुरुष जो स्त्रिकी वाञ्छा कर
है सो अपने नाशके निमित्त करताहै; जैसे कदली बन
हस्ती कागजकी हस्थिनी देखकर छल पायके बंध
आता है ताते परमदुःख पाता है; तैसे परमदुःखका
स्त्रीका संग है; हे मुनीश्वर ! जैसे वनके दाहकी अ
सबको जलावती है. तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसते अधि
है; काहेते जो उस अग्निके परश कियेते तप्त होते
और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरणमात्रमें जलाती है और
सुख रमणीय दीखता है सो आपातरमणीय है जब स्त्री
सुखका वियोग होता है तब मुर्देकी नाईं होजाता है. ति
कालमें भी (स्त्रीसंयोगकाल) शव (मुर्दा) जैसा हो जाता

हे मुनीश्वर ! यह तो अस्थि, मांस, रुधिरका पिंजरा है, सो अग्निमें भस्म होजायगा. अथवा पशु पक्षीको खानेका आहार होयगा. जिसको देखकर पुरुष प्रसन्न होता है तिसके प्राण आकाशमें लीन हो जाते हैं ताते इस स्त्रीकी इच्छा करना सो मूर्खता है, जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता है तैसे स्त्रीके शीश ऊपर श्याम केश हैं. जैसे अग्निके स्पर्श कियेते जलता है तैसे स्त्रीके स्पर्श कियेते पुरुष जलता है. ताते जलना दोनोंमें तुल्य है. हे मुनीश्वर ! इसको नाश करनहारी स्त्रीरूपी अग्नि है. जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख अज्ञानी हैं सो अपने नाशके निमित्त इच्छा करते हैं जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं. तैसे कामी-पुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करता है.

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी विषकी बेलि है; अरु हस्त पाँवके अग्र तिसके पत्र हैं अरु भुजा डारी हैं और अस्थिरूपी गुच्छे हैं नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं अरु कामी पुरुष रूपी भौंरे आय बैठते हैं; अरु कामरूपी धीवरने स्त्री रूपी जाल पसारी है तिसपर कामी पुरुष-रूपी पक्षी आय फँसते हैं कामरूपी धीवर तिसको फँसा-यकर परमकष्ट प्राप्त करता है. ऐसी दुःखकी देनहारी स्त्रीकी जो वांछा करते हैं सो महामूर्ख हैं.

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी सर्पनी है. जब तिसका फुंकार निकलता है तब तिसके निकट कमल फूल सब जल जाते हैं, ऐसी स्त्रीरूपी सर्पनी है, तिसका इच्छारूपी फुंकार जब निकसता है तब वैराग्यरूपी कमल जल जाते हैं, अरु जब सर्पनी डसती है तब विष चढता है और स्त्रीरूपी सर्पनी जब चितौनी करी तब अंतरते आपेई विष चढ जाता है.

हे मुनीश्वर ! जैसे व्याध छलकर मच्छीको फँसावता है, तैसे कामी पुरुष मच्छिवत् सुंदर स्त्रीरूपी जाल देखके फँसता है और स्नेहरूपी तागेसों कामी पुरुष बंधन पाय खैंचा चला जाता है; फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है. हे मुनीश्वर ! ऐसे दुःखके देनेहारी स्त्रीकी मुझको इच्छा नहीं अरु कामरूपी पारधी है तिसते रागरूपी इंद्रियसों जाल बिछाय कामी पुरुषरूपी मृगको आसक्त कर डारता है, अरु स्त्री तो स्नेहरूपी डोरी है तिसकर कामी पुरुषरूप बेलसों बंधा है. अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चन्द्रमा है तिसको देखकर कामी पुरुषरूपी कमलनी खिलि आती है; जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होते हैं और सूर्यमुखी नहीं होते, तैसे यह कामी पुरुष भोगहू कर प्रसन्न होते हैं अरु ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते हैं. जैसे नकुल सर्पको बिलमेंते निकासके मारता है, तैसे कामी पुरुषको स्त्री

आत्मानंदमेंते निकालके मार डारती है. जब स्त्रीके निकट जाता है तब उसको भस्म कर डारती है. जैसे सूखे तृण अरु घृतको अग्नि भस्म कर डारती है, तैसे कामी पुरुषको स्त्रीरूपी नागनी भस्म कर डारती है.

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी जो रात्रि है तिसका स्नेहरूपी अंधकार है, जिसके काम क्रोधादिक उलूक अरु पिशाच हैं. हे मुनीश्वर ! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहारते युवारूपी संग्रामते बचा है, सो पुरुष धन्य है। तिसको मेरा नमस्कार है. स्त्रीका संयोग परमदुःखका कारण है, ताते है ताते मुझको इसकी इच्छा नहीं हे मुनीश्वर ! जो रोग होता है तिसके अनुसार औषधि करता है तब रोग निवृत्ति होता है अरु कोऊ कुपथ्य दिये वाको प्रबलत्व होती है, रोग बढ जाता है; ताते मेरे रोगके अनुसार औषधि करो.

सो मेरा रोग सुनिये—जरा अरु मृत्यु मुझको बडा रोग है; तिसके नाशकी औषधि मुझको दीजिये और स्त्री आदिक जो भोग हैं; सो सब इस रोगके वृद्धिकर्ता हैं. जैसे अग्निमें घृत डारिये तब बढ जाती है; तैसे भोगसों जरा मृत्यु आदि रोग सो बढता है; ताते इस रोगकी निवृत्तिका औषध करो नहीं तो सबका त्याग कर वनमें जाय रहूँगा.

हे मुनीश्वर ! जिसको स्त्री है तिसको भोगकी इच्छा भी होती है और जिसको स्त्री नहीं तिसको स्त्रीकी इच्छा

भी नहीं जिसने स्त्रीका त्याग किया है तिसने संसार भी त्याग किया है, सोई सुखी है संसारका बीज स्त्री ताते मुझको स्त्रीकी इच्छा नहीं, मुझको सोई औष दीजिये जिसते जरा मृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशा-
वर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७ ।

अथ जरावस्थावर्णन ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर! बालक अवस्था तो जड है, अरु अशक्त है और जब युवावस्था आती तब बालावस्थाको ग्रहण कर लेती है. तिसके अं वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता अरु बुद्धि क्षीण हो जाती है बहुरि मृत्युको पाता है. मुनीश्वर! इस प्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थ है अर्थकी सिद्धि नहीं होती है. जैसे नदीके तटपर वृक्ष हैं सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत हो जाते हैं, तैसे वस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाता है, जैसे पवनसों उड जाता है तैसे वृद्धावस्थामें शरीर नाश पाता जेते कछु रोग हैं सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त हैं; अरु शरीर कृश हो जाता है, अरु स्त्री पुत्रादिक वृद्धका त्याग करते हैं, जैसे पक्के फलको वृक्ष त्याग दे

तैसे वृद्धको कुटुंब त्याग देता अरु देख देख हँसते हैं जैसे बावरेको देखते और हँसके बोलते हैं कि, इनकी बुद्धि सब जाती रही. जैसे कमल फूलनके ऊपर बरफ पडता है अरु कमल जर्जरीभूत होजाता है तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभावको प्राप्त होता है, अरु शरीर कुबरा होजाता है केश श्वेत होजाते हैं, शक्ति क्षीण होजाती है जैसे चिरकालका बडा वृक्ष होता है तिसमें घुन होता है तैसे शक्ति कुछ रहती नहीं.

हे मुनीश्वर! औरहू सब कृति क्षीण होआती है, परंतु एक आसक्ति मात्र रहती है, जैसे बडे वृक्षपै उलूक आय रहते हैं तैसे इसमें क्रोध शक्ति आय रहती है और शक्ति सब क्षीण होजाती है. हे मुनीश्वर! जरा अवस्था दुःखका घर है जब जरा अवस्था आती है, तब सब दुःख इकट्ठे होते हैं तिनकर महादीन होजाते हैं, अरु युवावस्थाका जो कामका बल रहता है सो जरामें क्षीण हो जाता है अरु इंद्रियोंकी आसक्ति घट जाती है, तिनते चपलताका अभाव होजाता है. जैसे पिताके निर्धन हुए पुत्र दीन होजाता है तैसे शरीर निर्बल हुए इंद्रियांहू निर्बल होजाती हैं और एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ जाती है.

हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रि आती है, तब खांसी-रूपी गीदडी आय शब्द करती है अरु आधि व्याधि-रूपी उलूक आय निवास करते हैं. हे मुनीश्वर! ऐसी जो

नीच वृद्धावस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं यह दे
जरा आयेते कुबरी होय जाती है, जैसे फल पकनेसों वृ
झुक जाता है तैसे जराके आयेते देह कुबरी होजाती है
जो युवावस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते थे अरु टहल कर
थे सो सब उसको त्याग देते हैं. जैसे—वृद्ध बैलको बैलवाल
त्याग देता है तैसे इसको बन्धु त्याग देते हैं औ
देखके हँसते है. अरु अपमान करते हैं. तिनको ऊंटकी ना
भासता है हे मुनीश्वर! ऐसी जो नीच अवस्था है तिसक
मुझको इच्छा नहीं. अब जो कछु कर्तव्य मुझको हो
कहो सो म करौं, इस शरीरकी तीनों अवस्थामें को
सुखदाई नहीं है; क्योंकि बालावस्था महामूढ है य
युवावस्था महा विकारवान् है अरु जरावस्था महादु
खका पात्र है बालावस्थाको युवावस्था ग्रहण कर ले
है और युवावस्थाको जरा अवस्था ग्रहण कर लेती
अरु जरावस्थाको मृत्यु ग्रहण कर लेती है. यह अवस्
सब अल्प कालकी है इनके आश्रय करके मेरेको क
सुख होना है ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिस
इस दुःखसे मुक्त होजाऊं.

हे मुनीश्वर! जब जरा अवस्था आती है तब मर
भी निकट आता है. जैसे संध्याके आय रात्रि तत्का
आय जाती है और जो संध्याके आये दिनकी इच्छ
करते हैं सो महामूर्ख हैं; तस जराके आये जीवने

आशा रखते सो महामूर्खता है; हे मुनीश्वर! जैसे बिल्ली चितौनी करती है जो चूहा आवे तो पकर लेउँ तैसें मृत्यु चितवत है कि, जरा अवस्था आवे तौ मैं इसको ग्रहण कर लेउँ अरु जरा अवस्था मानो कालकी सखी है रोगरूपी मशालेपर शरीररूपी मांसको सुखाती है तब काल जो इसका स्वामी है सो आयकर भोजन करलेता है अरु शरीररूपी घर है तिसका स्वामी काल है जब काल घरमें आवे तब तिसके आगे तीन पटरानी आती हैं, पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीडा, तीसरी खांसी सो शीघ्र श्वासको चलावती है, अरु श्वेत केश होते हैं सो चमरकी नाईं झूलते हैं ऐसी कालकी सहेली हैं सो प्रथमही आय प्रवेश करती हैं, अरु जरा रूपी कलँगी शरीरको बनावती है तब जो वाका स्वामी काल है, सो आय प्रवेश करता है.

हे मुनीश्वर! जो परम नीच अवस्था है सो जराही है, सो जब आती है तब शरीर जर्जरीभूत कर देती है; कँपनेको लगती है. अरु शरीरको निर्बल कर देती है अरु क्रूर कर देती है. जैसे कमलपर बरफकी वर्षा होवे अरु जर्जरीभूत होय जाय तैसे शरीरको जर्जरीभूत कर डारती है. जैसे बनमें बाघिन आयके शब्द करती है. अरु मृगका नाश करती है तैसे खांसी रूपी बाघिन आय मृग रूपी बलका नाश करती है.

हे मुनीश्वर ! जब जरा आती है तब मृत्यु प्रस
होता है. जैसे चन्द्रमाके उदयते कमलनी खिल जाती
तैसे मृत्यु प्रसन्न होता है. अरु यह जरा अवस्था ब
दुष्ट है. बडे बडे योद्धे हुए हैं तिनको भी दीन कर दि
हैं; यद्यपि बडे शूरमाने संग्राममें शत्रुको जीते हैं
उनकोहू जराने जीत लिये हैं; अरु बडे पर्वतोंके चूर्ण क
डारे हैं ताकोहू जरा पिशाचनीने महादीन करादिये हैं
जरारूपी जो राक्षसी है तिसने सबको दीन कर दिये
सो सबको जीतनेवारी है.

हे मुनीश्वर ! यह जरा शरीरको अग्निकी नाईं लग
है. जैसे अग्नि वृक्षको लगता है अरु धूम निकसता
तैसे शरीररूपी वृक्षमें जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारू
धुँवे निकसते हैं जैसे डब्बेमें बडे रत्न रहते
तैसे जरारूपी डब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहते
जरारूपी वसन्तऋतु है. तिस करके शरीररूपी
दुःखरूपी रस करके पूर्ण होता है जैसे हस्ती साँकर
बँधा हुआ दीन होजाता है तैसे जरारूपी साँकर क
बँधा पुरुष दीन होजाता है; अरु अंग सब शिथि
हो जाता है बल क्षीण होजाता है अरु इन्द्रियां
निर्बल होजाती हैं, अरु शरीर जर्जरीभावको प्र
होता है परंतु तृष्णा नहीं घटती है; नित्य ब
चली जाती है. जैसे रात्रि आती है तब सूर्यके

कमल सब मूँद जाते हैं; तब पिशाचनी आय विचरने लगती है अरु प्रसन्न होती है; तैसे जरारूपी रात्रिके आयेते सब शक्तिरूपी कमल मूँद जाते हैं अरु तृष्णारूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है.

हे मुनीश्वर ! जैसे गंगा तटपर वृक्ष रहते हैं, सो गंगा जलके वेगसों जर्जरीभूत होजाते हैं तैसे जो आयुरूपी प्रवाह चलता है तिसके वेगकर शरीर जर्जरीभूत हो जाता है जैसे मांसके टुकडेको देख आकाशसे उडती चील्ह नीचे आय ले जाती है; तैसे जरा अवस्थामें शरीररूपी मांसको काल ले जाता है. हे मुनीश्वर ! यह तो कालका ग्रास बना हुआ है. जैसे सुन्दर वृक्षको हस्ती खाय जाता है तैसे जरा अवस्थावाले शरीरको काल देखके भोजन कर जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्थावर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८ ।

अथ कालवृत्तान्तवर्णन ।

रामोवाच—हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गर्त है तिसमें अज्ञानी गिरा है सो संसाररूपी गर्त अल्प है अरु अज्ञान तो बडा होगया है. संकल्प विकल्पकी आधिक्यताते बडा है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो संसारको मिथ्या जानते हैं फिर संसाररूपी जालमें फँसते नहीं

हैं, अरु अज्ञानी पुरुष हैं सो संसारको सत्य जानकर संसारकी आस्थारूपी जालमें फँसता है अरु संसारके भोगकी वांछा करता है सो ऐसा है जैसे—दर्पणमें प्रतिबिंब देखकर बालक पकरनेकी इच्छा करता है; तैसे अज्ञानी संसारको सत्य जानकर जगत्के पदार्थकी वांछा करता है. यह मेरेको होवे, यह मेरेको नहीं होवे अरु यह जो सुख है सो नाशात्मक है. अभिप्राय यह: जो आवते हैं अरु जाते हैं, सो स्थिर नहीं रहते हैं इनका काल ग्रहण करता है, जैसे पक्के अनारको चूहा खाय जाता है, तैसे सब पदार्थको काल खाता है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं सो कालग्रसित हैं बडे बडे बली सुमेरु जैसे गंभीर बलवाले पुरुषोंको कालने ग्रास किये हैं, सर्पको नकुल भक्षण करता है तैसे बडे बलीका ग्रास काल कर जाता है. अरु जगत्रूपी एक गूलरका फल है तिसमें जो मच्छर है सो ब्रह्मादिक हैं सो फलका जो वृक्ष है तिनका जो वन है सो ब्रह्मरूप है तिस ब्रह्मरूप वनमें जेते कछु बन हैं सो सब इसका आहार है. सबका भक्षण काल कर जाता है.

हे मुनीश्वर! यह काल बडा बलिष्ठ है जो सुख देनेमें आता है सो सब इसने ग्रास कर लिया है तब औरकी कहा कहनी है और हमारे जो बडे ब्रह्मादिक तिनको भी काल ग्रास कर जाता है, जैसे मृगका ग्रास सिंह

लेता है और काल किसी करके जाना नहीं जाता. छिन, घरी, प्रहर, दिन, मास और वर्षादिक कर जानिये सो काल है और कालकी मूर्ति प्रगट नहीं है ऐसा अप्रगट रूप है अरु किसीकी स्थिति होने नहीं देता अरु एक बेलि कालने पसारी है तिसकी त्वचा रात्रि है अरु फूल तिसका दिन है और जीवरूपी भौंरे तिसपर आय बैठते हैं.

हे मुनीश्वर ! जगत्‌रूपी गूलरका फूल है तिसमें जीवरूपी मच्छर बहुत रहते हैं तिस फूलका भक्षण काल कर जाता है जैसे अनारका भक्षण तोता करता है तैसे काल भक्षण करता है अरु जगत्‌रूपी वृक्ष है अरु जीवरूपी तिसके पत्र हैं तिसका कालरूपी हस्ती भक्षण कर जाता है अरु शुभ अशुभरूपी भैंसानको कालरूपी सिंह छेद छेदके खाता है.

हे मुनीश्वर ! यह काल महाक्रूर है. सो किसीपर दया नहीं करता, सबका भोजन कर जाता है, जैसे मृग सब फूलनको खाय जाता है, तिससे कोऊ रहता नहीं है, परंतु एक कमल उससे बचे हैं सो कमल कैसा है ? शांति अरु मैत्री तिसके अंकुर हैं, अरु चेतनता मात्र प्रकाश है इस कारणते वह बचा है, सो कालरूपी मृग इसको पहुँच नहीं सकता. इससे प्राप्त हुआ कालभी लीन होजाता है और जेता कछु प्रपञ्च है सो सब कालके मुखमें है; ब्रह्मा-विष्णु, रुद्र, कुबेर आदिक सब मूर्ति कालकी धरी हुई

है, फिर तिनको भी अंतर्ध्यान कर देता है हे मुनीश्व
उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय सब कालते होते हैं, अने
बेर महाकल्पकाहू ग्रहण कर लेता है, अरु अनेक
करेगा. अरु कालको भोजन कियेते तृप्ति कदाचित् न
होती, अरु कदाचित् होनहारीहू नहीं. जैसे अग्नि घृत
आहुतीसों तृप्त नहीं होता तैसे जगत् अरु सब ब्रह्म
डका भोजन करते हू काल तृप्त नहीं होता अरु इस
ऐसा स्वभाव है जो इंद्रको दरिद्री कर देता है अ
दरिद्रीको इंद्र कर देता है और सुमेरुको राई बनाता
अरु राईका सुमेरु करता है, सबते बडे ऐश्वर्यवाले
नीच कर डारता है, सबते नीचको ऊंच कर डारता
अरु बून्दका समुद्र कर डारता है अरु समुद्रका बू
करता है ऐसी शक्ति कालमें है अरु जीवरूपी जो म
हैं तिनको शुभाशुभ कर्मरूप छुरेसों छेदता रहता
फिर कैसा है ? जो काल कूपका चक्र है; जीवरू
टंटको शुभ अशुभ कर्मरूपी रसरीसों बांधकर वि
फिरता है. फिर कैसा है ? जीव रूपी वृक्षको रात्रि अ
दिनरूपी कुल्हारा कर छेदता है.

हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगत् विलाश भासता है
सबको ग्रहण काल कर लेवेगा अरु जीवरूपी रत्न
काल डब्बा है सो अपने उदरमें डारता जाता है अ
खेल करता है अरु चन्द्र सूर्यरूपी गेंदको कबहूँ उ
उछालता है, कबहूं नीचे डारता है अरु जो महापु

है सो उत्पत्ति प्रलयमें जो पदार्थ है तिनमें स्नेह किसके साथ नहीं करते तिसका नाश करनेको काल समर्थ नहीं. जैसे मुण्डकी माला महादेवजी गरेमें धरते हैं, तैसे यह भी जीवकी माला गरेमें डारता है.

हे मुनीश्वर! जो बडे बडे बलिष्ठ हैं तिनका भी काल ग्रहण कर लेता है. जैसे—समुद्र बडा है तिसका वडवाग्नि पान करलेता और जैसे पवन भोजपत्रको उडाता है तैसा कालका बल है, किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थित रहै.

हे मुनीश्वर! शांति गुण प्राधान्य जो देवता हैं अरु रजोगुण प्राधान्य जो बडे राजा हैं अरु तमोगुण प्राधान्य जो दैत्य राक्षस हैं तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवे. जैसे—टोकनीमें अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेते फिर उछलते हैं सो अन्नके दाने कडछीकर कबहूं ऊर्ध्व और कबहूँ नीचे जाते हैं, तैसे जीवरूपी अनेक दाने जगत्‌रूपी टोकनीमें पडे हुये राग द्वेषरूपी अग्निपै चढे हैं अरु कर्मरूपी कडछीकर कबहूं ऊर्ध्व जाते हैं, कबहूं नीचे जाते हैं. हे मुनीश्वर! यह काल किसीको स्थिर होने नहीं देता महा कठोर है. दया किसीपर नहीं करता इसका भय मुझको रहता है ताते सोई उपाय मुझको कहो जिसकर मैं कालते निर्भय होजाऊं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तान्तवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९ ।

अथ कालविलासवर्णन ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! यह काल बडा बलि
है. जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं तब व
बडे पशु पक्षी देखते हैं फिर मारते हैं. तैसे यह संसा
रूपी वन है; तिसमें प्राणीमात्र पशु पक्षी हैं, जब का
रूपी राजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आते हैं तब
जीव भयको पाते हैं फिर तिसकोई मारता है.

हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है, सबका ग्र
कर लेता है. प्रलयमें सबका प्रलय कर डारता है. अ
इसकी जो चण्डिका शक्ति है तिसका बडा उदर है, अ
कालिका सबका ग्रास करती है, पाछे नृत्य कर
जैसे वनके मृगको सिंह अरु सिंहनी भोजन करती
और नृत्य करते हैं, तैसे जगत्‌रूपी वनमें जीवरू
मृगका भोजन करके काल अरु कालिका नृत्य करते
बहुरि इनते जगत्‌का प्रादुर्भाव होता है नाना प्रकार
पदार्थनको रचते हैं. पृथ्वी, बगीचें, बावडी आदि स
पदार्थ इनहींते उत्पन्न होते हैं अरु सुंदर जीवकी
उत्पत्ति इनते होती है और एक समयमें उनका नाश
कर देती है, सुन्दर समुद्र रचके फिर वामें अग्नि लगा
देती है अरु सुन्दर कमलको बनायके फिर वाके ऊ
बरफको बरसा करती है इत्यादि नाना पदार्थनको रचि

तिनका नाश करती है, जहां बडे स्थान बसते हैं तिनको उजाड कर डारती है. फिर उजाडमें बस्ती कर देती है; अरु नाश भी करती है, स्थिर रहने किसीको नहीं देती. जैसे बागमें वानर आयके वृक्षको ठहरने नहीं देता तैसे कालरूपी वानर किसी पदार्थको स्थिर रहने नहीं देता.

हे मुनीश्वर ! इस प्रकारसों सब पदार्थ कालसों कर जर्जरीभूत होते हैं, तिसका मैं आश्रय किस रीतिसे करों ? मुझको तो नाशरूप भासता है. ताते अब मुझको किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकोनाविंशातितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २० ।

अथ कालकालिकावर्णन ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! इस कालका महापराक्रम है, इसके तेजके सम्मुख रहनेको कोई समर्थ नहीं, क्षणमें ऊँचको नीच कर डारता है अरु नीचको ऊंच कर डारता है तिसका निवारण कोऊ कर नहीं सकता, सब इसीके भयसे परे काँपते हैं यह महाभैरव है. सब विश्वका ग्रास कर लेता है. अरु इसकी चंडिकारूप शक्ति है सो बलवान् है सो नदीरूप है तिसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है अरु महाकालरूप काली है, तिसका बडा

भयानक आकार है. अरु कालरूप जो रुद्र है तिसे
अभिन्नरूपी कालिका है, सो सबका पान कर लेती है
पाछे भैरव अरु भैरवी नृत्य करते हैं सो कालकालि
कैसी हैं ? बडा जिसका आकाशमें शीश है, अरु जिसके
पातालमें चरण हैं. दशोंदिशा जिसकी भुजा हैं, स
समुद्र जिसके हाथमें कंकण हैं, सम्पूर्ण पृथ्वीरूप तिसके
हाथमें पात्र हैं तिसके ऊपर जीव है, सो भोजन योग्य
हिमालय अरु सुमेरु पर्वत दोनों कानमें बडे रत्न हैं
चंद्रमा सूर्य जिसके लोचन हैं अरु सब तारागण वा
मस्तकमें बिन्दु हैं अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुशल आदि
शस्त्र हैं अरु जिसके हाथमें तंद्रा फाँसी है, तिस क
जीवको मारती है. ऐसी जो कालिका देवी है, सो सब
जीवका ग्रास करके महाभैरव जो रुद्र है तिसके आ
नृत्य करती है. अरु अट्ट अट्ट ऐसा शब्द करती है, अ
जीवका भोजन करके उनकी रुंडमाला गरेमें धारण कर
है; सो भैरवके आगे नृत्यकरती है. अरु भैरव कैसा है कि
जिसके सम्मुख रहनेकी शक्ति कोईमें नहीं है अरु ज
उजार है तहाँ क्षणमें वस्ती कर डारते अरु जहां वस्ती
होवे तहां क्षणमें उजार करते हैं, इसीसे तिनका नाम दे
कहते हैं. अरु तिसको कृतांत भी कहते हैं. काहेसे कि
बडे बडे जो पदार्थ हैं अरु तिसकाभी नाश करता है
अरु स्थिर किसीको रहने नहीं देता तिसते इसका नाम

कृतांत है; अरु नित्यरूपीहू यही है जो इस आदिको धरा है सोई कर्त्ता अरु कर्मरूप है काहेते कि, परिणाम जिसका अनित्य रूप है इसीते इसका कर्म नाम है; सो कैसे नाश करता है? जब अभावरूपी धनुष हाथमें धरता है तिस कर राग द्वेष रूपी बाण चलाता है तिस बाणसे जर्जरीभूत करके नाश करता है, अरु उत्पत्ति नाशमें उसको यत्न भी कछु करना नहीं पडता है, इसको तो खेल जैसा है. जैसे—बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है फिर उठायकर नाश भी कर देता है. तैसे कालको उपजावने अरु नाश करनेमें यत्न करना नहीं पडता है. हे मुनीश्वर! कालरूपी धीवर है, तिसने क्रियारूपी जाल पसारा है, तिस विषे जीवरूपी पक्षी पडे फँसते हैं सो फँसे हुए शांतिको नहीं प्राप्त होते हैं. हे मुनीश्वर! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करना; जिसकर सुखी होवे? स्थावर जंगम जगत् तो मन कालके मुखमें है यह सब नाशरूप मुझको दृष्टिमें आवै है तातें जो निर्भय पद होय सो मुझसों कहो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालकालिकावर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१ ।

अथ कालविलासवर्णन ।

श्रीरामोवाच—हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ भास हैं सो सब नाशरूप हैं, ताते किसकी इच्छा करों? औ कौनसो आश्रय करों ? इतनी इच्छा करनी सो मूर्खत है अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करताहै सो सब दुःखके निमित्त है अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नहीं काहेते जो बालक अवस्था होती है तब मूढता रहत है, विचार कछु नहीं रहता अरु जब युवा अवस्थ आती है तब मूर्खता करके विषयको सेवते हैं, अरु मा मोहादि विकारोंसे मोहेई जाते हैं, तामें भी विचार क नहीं होता अरु स्थिर भी नहीं रहते; फिर दीनका दी रहके विषयकी तृष्णा करता है शांतिको नहीं पाता ।

हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचंचल है अ मृत्यु निकट है वाको अन्यथा भाव नहीं होता है. मुनीश्वर ! जेते कछु भोग हैं सो रोग हैं अरु जिसक संपदा जानते हैं सो आपदा हैं अरु जिसको सत्य कह हैं सो असत्यरूप हैं. अरु जिस जिस स्त्री पुत्रादिक मित्र जानते हैं सो सब बंधन करते हैं अरु इंद्रिय जो सो महाशत्रुरूप हैं सो मृगतृष्णाके जलवत् हैं अरु य देह है सो विकाररूप है अरु मन महा चंचल है औ सदा अशांतरूप है अरु अहंकार जो है सो महानीच है

इसनेही दीनताको प्राप्त किया है इसकर जेते कछु पदार्थ इसको सुखदायक भासते हैं, सो सब दुःखके देनेहारे हैं तिसकर इसको कदाचित् शांति नहीं होती, ताते मुझको इतनी इच्छा नहीं. यद्यपि देखने मात्रको सुन्दर भासते हैं तो भी इनमें सुख कछु नहीं, सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं जैसे समुद्रमें नाना प्रकारके तरंग भासते हैं सो सब बडवाग्नि कर नाश होते हैं तैसे यह पदार्थभी नाशको पाते हैं. म अपनी आयुविषे कैसे आस्था करों.

हे मुनीश्वर ! बडे समुद्र जो दृष्टि आते हैं अरु सुमेरु आदि बडे पदार्थ हैं सो सब नाशको पाते हैं, तब हम-सारिखेकी कहा वार्त्ता है और बडे बडे दैत्य राक्षसहूं होयके नाश पाय गये हैं. तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है ? अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व हुये हैं सो सब नाशको पाते हैं. तिनकी नाम संज्ञाभी नहीं रहती तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ? पृथ्वी, जल अरु दाहक शक्ति धरनेहारे जो अग्नि अरु पवन जो हैं सो वीर्यसहित सब नाश हो जायँगे. कछु इनकी सत्ताभी न रहैगी, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ? अरु यम, कुबेर, वरुण, इंद्र बडे तेजवाले सो सब नाश पावेंगे तो हम सारिखेकी कहा कहानी है; और तारामंडल जो दृष्टि आते हैं सब गिरपडें जैसे सूखे पात वृक्षत वायुसों गिर जाते हैं तैसे तारे गिरते हैं तब हम सारिखेकी कहा वात्ता है ? हे मुनीश्वर ! ध्रुव

जो स्थिर भासता है सो भी अस्थिर होय जायगा, अ
चन्द्रमा अमृतमय मंडलका दृष्टिमें आता है और सू
अखंड मंडल है जिसका ऐसा जो प्रकाशसंयुक्त दृ
आता है सो सब नाश हो जावेंहीगे, तो हम सारिखें
कहा कर्त्ता है औरकी हू कहा वार्त्ता है ? यह जो बं
ईश्वर जगत्‌के अधिष्ठाता हैं तिनका भी अभाव हो जात
है. परमेष्ठी जो ब्रह्मा है, तिसका भी अभाव हो जाता है
हरि जो विष्णु सो भी हरे जायँगे महाभैरव रूप
इन्द्र सो भी शून्य हो जायंगे तो हम सारिखेकी क
वार्त्ता करनी ? अरु काल जो सबका भक्षण करनेहा
है सो भी टूक टूक होयके नाशको प्राप्त होवेगा अ
कालकी स्त्री जो नेता है, सोहू अनेकताको प्राप्त होवे
अरु सबका आधार जो आकाश है सो भी नाश होजा
यगा तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ? अरु जेता कु
जगत् अर्थ कर सिद्ध होता है सो सब नाश हो जावेग
कोऊहु स्थिर रहनेका नहीं तब हम किसकी आस्था क
अरु किसका आश्रय करैं यह जगत् सब भ्रममात्र है अज्ञ
नीकी इसमें आस्था होती है और हमारी नहीं है वि
जगत् भ्रम कैसे उत्पन्न भया है; अरु मैं इतना जानता
कि संसारमें इतने दुःखी होते हैं; सो अहंकारने किया

हे मुनीश्वर ! इसका जो परमशत्रु अहंकार है,
करके भटकता फिरता है. जैसे जेवरीमें बाँधा हुआ प

कबहूं ऊर्ध्व कबहूं नीचे जाता है स्थिर कबहूं नहीं रहता. तैसे जीवहू अहंकार करके कबहूं ऊर्ध्व कबहूं अधो जाता है. स्थिर कबहूं नहीं होता जैसे अश्वते आरूढ रथ तिनके ऊपर बैठके सूर्य आकाश मार्गमें भ्रमता है तैसे यह जीव भ्रमता है स्थिर कदाचित् नहीं होता. हे मुनीश्वर! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूपते भुलाहुआ भटकता है अरु अज्ञान करके संसारमें आस्था करता है अरु भोगहूको सुखरूप जानकर तिसमें तृष्णा करता है और जिसको सुखरूप जानता है सो रोग समान और विषकर पूर्ण सर्प जैसे है सो जीवका नाश करनेहारे हैं और जिसको सत्य जानता है, सो असत्य है. सब कालके मुखमें ग्रसे हुए हैं.

हे मुनीश्वर! विचार बिना अपना नाश आपही करता है; काहेते कि, इसका कल्याण करनेहारा बोध है. जो सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याण होवे और जेते पदार्थ हैं सो स्थिर कोई नहीं। इनको सत्य जानना दुःखके निमित्त है, हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है तब आनन्द अरु धैर्यको नाश कर देती है, जैसे वायु मेघका नाश कर डारता है तैसे तृष्णा नाश कर डारती है. ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर जगत्का भ्रम मिट जावे अरु अविनाशी पदकी प्राप्ति होवै.इस भ्रमरूप जगत्की आस्था मैं नहीं देखता, ताते इच्छा चाहै तैसी करो, परन्तु सुख दुःख इसीको होने हैं सो होइँगे मिट-

नेके नहीं, भावे पहाडकी कंदरामें बैठो भावे कोटे बैठो, परंतु जो होनेका है सो मिथ्या नहीं होवे है, इ निमित्त यत्न करना मूर्खता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२ ।

अथ सर्वपदार्थाभाववर्णन ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकार सुन्दर पदार्थ भासते हैं सो सब नाशरूप हैं, इनकी आस्थ मूर्ख करते हैं. यह तो मनकी कल्पना करके रचे हुए तिसमें किसकी आस्था करों?

हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीवना व्यर्थ है. का कुमार जो जीवनेते उनका अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता ज अवस्था होती है तब मूढ बुद्धि होती है तिसमें विच कछु नहीं होता. जब युवावस्था आती है तब काम क्रोध दिक विकार उत्पन्न होते हैं तिसकर सदा ढांपे रहते जैसे जालमें पक्षी बँध जाता है अरु आकाश मार्ग देख नहीं सकता है तैसे काम क्रोधादिक करि ढपा हु विचार मार्गको देख नहीं सकता। जब वृद्धावस्था आ है तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है अरु महादीन हो है बहुरि शरीरको भी त्याग देता है. जैसे कमलके ऊ बरफ पडता है तब तिसका भौंरा त्याग करता है तै

जब शरीररूपी कमलको जराका स्पर्श होता है तब जीवरूपी भौंरा त्याग कर देता है,

हे मुनीश्वर! यह शरीर तबलग सुन्दर है जबलग वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती. जैसे चन्द्रमाका प्रकाश राहु दैत्यने आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है तब प्रकाश नहीं रहता है तैसे जरा अवस्थाके आये युवा अवस्थाकी सुन्दरता जाती रहती है. हे मुनीश्वर! जराके आयेते शरीर कृश हो जाता है अरु तृष्णा बढ जाती जैसे वर्षाकालमें नदी बढ जाती है तैसे जरा अवस्थामें तृष्णा बढ जाती है, अरु जो पदार्थकी तृष्णा करता है सो पदार्थ भी दुःख रूप हैं; तृष्णा करके आपही दुःख पाता है.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी समुद्र है तिसमें चित्तरूपी बेडा परा है; राग द्वेषरूपी मच्छ कबहूं उर्ध्व जाते हैं कबहूं नीचे आते हैं स्थिर नहीं रहते. हे मुनीश्वर! कामरूपी वृक्ष है, सो वृक्षमें तृष्णारूपी लता लगती है तिसमें विषयरूपी फूल है जब जीवरूपी भौंरा तिसके ऊपर बैठता है तब विषयरूपी बेलिसों मृतक हो जाता है. हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बडी नदी है, तिसमें राग द्वेषादिक बडे मच्छ रहते हैं, तिस नदीमें परे हुए जीव दुःख पाते हैं, अरु जो संसारकी इच्छा करता है, सो नाशरूप है.

हे मुनीश्वर ! उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो रणरूपी समुद्र है तिसको तर जाते हैं, तिसको भी मैं शूर नहीं मानता परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र, तिसमें मनोवृत्तीरूपी तरंग उठते हैं, ऐसे समुद्रको जो तरजाता है तिसको शूर मानता हौं जिसके परिणाममें दुःख होवे, तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरम्भ करते हैं और जिसके परिणाममें सुख है तिसका आरंभ नहीं करता है और कामके अर्थकी धारना करता है, ऐसे आरंभ कियेते शरीरकी शांति और सुखकी प्राप्ति नहीं होती ऐसेइ कामना करके सदा जलते रहते हैं अनात्मा पदार्थकी तृष्णा करते हैं, सो शांतिको कैसे प्राप्त होवे ।

हे मुनीश्वर ! यह तृष्णारूपी नदी है तिसमें बडा प्रवाह है, तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोष दोनों वृक्ष खडे हैं, सो तृष्णा नदीके प्रवाहते उन दोनोंका नाश होता है. हे मुनीश्वर ! तृष्णा बडी चंचल है, किसीको स्थिर होने नहीं देती. अरु मोहरूपी एक वृक्ष है, तिसके चहूंफेर स्त्रीरूपी बेलि है सो विषकरके पूर्ण है, तिसपर चित्तरूपी भौंरा आय बैठता है तब स्पर्शमात्रते नाश पाता है, जैसे मोरका पूछ हिलता रहता है तैसे अज्ञानीका चित्त चंचल चलता है, सो मनुष्य पशु समान है जैसे पशु दिनको जंगलमें जाय आहार करते चलते फिरते हैं अरु रात्रिको आय घरमें खूंटासों बंधन पाते हैं तैसे मूर्ख मनुष्यहू दिनको घर छोडके व्यवहारमें फिरते

हैं अरु रात्रिको आय अपने घरमें स्थिर होते हैं, तातें परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं होती जीवन वृथा गवाँते.

बालक अवस्थामें शून्य रहते हैं; अरु युवा अवस्थामें काम करि उन्मत्त होते हैं सो काम करके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कन्दरामें जाय स्थित होते हैं; सोभी क्षणभंगुर है. बहुरि वृद्धावस्था होती है. तिसकर शरीर कृश होजाता है, जैसे बर्फते कमल जर्जरीभावको प्राप्त होता है तैसे जरा करके शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है अरु सब अंग क्षीण होजाता है अरु एक तृष्णा बढजाती है.

हे मुनीश्वर! यह पुरुष महापशु है, सो आकाशके फूल लेनेकी इच्छा करता है, जैसे बडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूल लेनेकी इच्छा करता है सो फिर बडे कंदरा अरु वृक्षमें गिर पडता है तैसे यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आय रहा है अरु आकाशके फूलरूपी जगत्के पदार्थकी इच्छा करता है सो नीचेको गिर पडनेको है सो राग द्वेषरूपी कंटक वृक्षमें जाय पडेगा हे मुनीश्वर! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं सो सब आकाशके फूलकी नाईं नाशवान् है. इनमें आस्था करनी सो मूर्खता है यह तो शब्दमात्र जैसा है तिसते अर्थसिद्धि कछु नहीं होती अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको विषयभोगकी इच्छा नहीं रहती, काहेते जो आत्माके

प्रकाश कर इनको मिथ्या जानते हैं. हे मुनीश्वर ! ऐसे
ज्ञानवान् पुरुष सो दुर्विज्ञेय हैं हमको तो स्वप्नमेंभी नहीं
भासतेहैं और यह विरक्तात्मा दुर्लभ है जिनको भोगकी
इच्छा नहीं है सर्वदा ब्रह्मकी स्थितिकर भासते हैं ऐसे
पुरुषको संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती. काहेते जो य
पदार्थ सब नाशरूप हैं। हे मुनीश्वर ! पर्वतको जिस ओर
देखिये तहां पत्थरकर पूर्ण दृष्टि आता है अरु पृथ्वी
पूर्ण मृत्तिका करि दृष्टि आती है अरु वृक्ष काष्ठकर
पूर्ण दृष्टि आता है, समुद्र जलकर पूर्ण दृष्टि आताहै तैसे
शरीर अस्थि मांसकर पूर्ण भासता है ये सब पदा
पांच तत्त्वकरि पूर्ण हैं और नाशरूप हैं. ऐसा रूप ज्ञानी
जानके किसीकी इच्छा नहीं करता. हे मुनीश्वर ! य
जगत् सब नाशरूप है, देखते देखते नाशको पाता
तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊँ ? जब युग
सहस्र चौकरी होती हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता
तिस दिनके क्षय हुयेते सब जगत्का प्रलय होता
बहुरि ब्रह्माहू कालकर नाश हो जाता है अरु ब्रह्मा
जितने होगये हैं तिनकी संख्या नहीं होती; असंख्य ब्र
नाश होगये हैं तो हम सरीखेकी कहा वार्त्ता करनी है
हम किसी भोगकी वासना नहीं करते. क्योंकि जो स
चलरूप है, कछु स्थिर रहनेका नहीं. सब नाशरूप
इनकी आस्था मूर्ख करते हैं तिसके साथ हमको क
प्रयोजन नहीं जैसे मृग मरुस्थलको देख जल पान क

नेको दौडता है अरु शांतिको नहीं पाता तैसे मूर्ख जीव जगत्‌के पदार्थको सत्य मानकर तृष्णा करते हैं, परन्तु शांतिको नहीं पाते. काहेते कि सब असार रूप है अरु जो स्त्री पुत्र कलत्र भासते हैं सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं; जब शरीर नष्ट होजायगा तब जानिबेमें भी न आवेंगे कि, कहां गये अरु कहांते आये थे ? जैसे तेल अरु बत्तीकर दीपक प्रकाशता है तब बडा प्रकाशवान् दृष्टि आताहै; पीछे जब बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि कहां गया तैसे बत्तीरूप बांधव हैं और तिसविषे स्नेहरूपी तेल है. तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है जब शरीररूपी दीपकका प्रकाश बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि कहां गया. हे मुनीश्वर ! यह बंधुका मिलाप है. सो जैसे तीर्थ-यात्राका संग चला जाता होवे सो सब एक क्षणमें वृक्षकी छाया नीचे बैठते हैं फिर न्यारे न्यारे हो जाते हैं तैसा बांधवका मिलाप है जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है तैसे इनमें भी स्नेह करना मूर्खता हैं.

हे मुनीश्वर ! अहं ममताकी जेवरीके साथ बांधे हुए घटीयंत्रकी नाईं सब भ्रमते फिरते हैं तिनको शांति कदाचित् नहीं होती यह देखने मात्रको चेतन दृष्ट आवता है परंतु पशु और बंदर इनते श्रेष्ठ हैं. जिनकी संमति देह इंद्रियनके साथ बांधी हुई है अरु आगमा-पायी हैं इसमें आस्था रखनी सो महामूर्खता है, उनको

आत्मपदकी प्राप्ति कठिन है. जैसे पवन कर वृक्षके पात टूटके उडजाते हैं फिर उनको वृक्षके साथ लगना कठिन है, तैसे जो देहादिके साथ बांधे हुए है तिसको आत्मपद मिलना कठिन है.

हे मुनीश्वर ! जब आत्मपदके विमुख होता है तब जगत्के भ्रमको देखता है अरु जब आत्मपदकी ओर आता है तब संसार इसको बडा विरस लगता है और ऐसा पदार्थ जगत्में कोई नहीं कि स्थिर रहैगा. जो कछु पदार्थ हैं सो नाशको प्राप्त होते हैं; तातें मैं किसकी आस्था करूं और किसका आश्रय करों ? सब नाशवन्त भासते हैं, वह पदार्थ मुझको कहो जिसका नाश न होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाव-
वर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३ ।

अथ जगद्विपर्ययवर्णन ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! जेता कछु स्थावर जंगम जगत दीखता है सो सब नाशरूप है कछु भी स्थिर रहनेका नहीं जो खाई थी सो जलकर पूर्ण होगई हैं अरु जो बडे जलकर समुद्र दीखते थे सो खाईरूप हो गये अरु जो सुन्दर बडे बगीचे थे सो आकाशकी नाईं शून्य हो गये, अरु जो शून्य स्थान थे सो सुन्दर वृक्ष हुए वनकर दृष्ट आते हैं, जहां बस्ती थी तहां उजार होगई है अरु उजार थी तहां बस्ती होगई है अरु जहां

गढेले थे तहां पर्वत होगये हैं अरु जहां बडे पर्वत थे तहां समान पृथ्वी हो गई है. हे मुनीश्वर! इस प्रकार पदार्थ देखते २ विपर्यय हो जाते हैं स्थिर नहीं रहते, बहुरि मैं किसका आश्रय करों अरु किस पावनेका यत्न करों? यह पदार्थ तो नाशरूप हैं अरु जो बडे बडे ऐश्वर्यकर संपन्न थे अरु जो बडे कर्त्तव्य करते थे और बडे वीर्यवान् बडे तेजवान् हुए थे सो भी मरण मात्र होगये हैं, तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है? सब नाश होते हैं तब हमको भी घडी पलमें चले जाना है, रहना किसीको नहीं.

हे मुनीश्वर! यह पदार्थ चञ्चलरूप है; सो एकरस कदाचित्हू नहीं रहता, एक क्षणमें कछु हो जाता है, दूसरे क्षणमें दरिद्री हो जाते हैं, तीसरे क्षणमें संपदा-वान् होजाते हैं एक क्षणमें जीवते दृष्टि आते हैं दूसरे क्षणमें मर जाते हैं एक क्षण मुवे भी जी उठते हैं. इस संसारकी स्थिरता कबहूं नहीं ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते. एक क्षणमें समुद्रके प्रवाहके ठिकाने मरुस्थल होजाते हैं दूसरे क्षण मरुस्थलमें जलके प्रवाह होजाते हैं. हे मुनीश्वर! इस जगत्का आभास स्थिर नहीं रहता; जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता तैसे जगत्का पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता जैसे नट स्वांगको धारता है सो कबहूं कैसा, कबहूं कैसा सो एक स्वांगमें नहीं रहता तैसे जगत्के पदार्थ अरु लक्ष्मी एकरस नहीं रहते; कबहूं पुरुष स्त्री

होजाता है पशु मनुष्य हो जाता है और स्थावर
जंगम अरु जंगमका स्थावरहो जाता मनुष्य देवता
जाता है और देवता मनुष्य हो जाता है. इस प्रकार घ
यंत्रकी नाईं जगत्की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती, कब
ऊर्ध्वको जाती है, कबहूँ अधोको जाती है, स्थिर कब
नहीं रहती सदा भटकती रहतीहै.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ दृष्टिमें आते हैं सो स
नष्ट हो जानेके हैं. कैसेहूँ स्थिर रहनेको नहीं, ये स
नदियां हैं सो सब बडवाग्निमें लय होय जायँगी; तैसे
कछु पदार्थ हैं सो सब अभावरूपी बडवाग्निको प्रा
होवेंगे. अरु बडे बलिष्ठहूं मेरे दीखते लीन होगये हैं अ
जो बडे सुंदर स्थान सो शून्य हो गये हैं अरु जो सुं
ताल अरु बगीचे मनुष्य करि संपूर्ण ऐसे स्थान
शून्य होगये हैं अरु जो मरुस्थलकी भूमिका सो सुंद
ताको प्राप्त भई है अरु घट पट हो गये हैं; बरके
हो जाते हैं सांपके बर हो जाते हैं. इस प्रकार हे वि
जो जगत् दृष्टिमें आता है सो कबहूँ सम्पदा, क
आपदा दृष्टिमें आवती है अरु महा चपल दृष्टि आवते
हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिर रूप पदार्थ हैं. तिस
विचार विना मैं कैसे आश्रय करों, अरु किसकी इच्
करों? सब नाशरूप हैं और जो यह सूर्य प्रकाश
दृष्टिमें आताहै सोभी अंधकाररूप होजायगा; अरु अ
तकर पूर्ण जो चंद्रमा दृष्टिमें आताहै सोभी शून्य

जायगा अरु सुमेरु आदिक जो पर्वत दृष्टि आते हैं सो सब नाश होइँगे और सब लोक नाश होजांयगे ताते हे मुनीश्वर! और किसीकी क्या कहनी है? ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जो जगत्के ईश्वर हैं सो भी शून्य हो जायँगे तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता कहनी है? जेता कछु जगत् दृष्टि आता है सो स्त्री पुत्रबांधव ऐश्वर्य वीर्य तेज करिकै नाना प्रकारक जीव जो भासते हैं सो सब नाश रूप हैं; बहुरि मैं किस पदार्थका आश्रय करों और किसकी इच्छा करों.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी हैं तिनको तौ सब पदार्थ विरस हो गये हैं, किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते; काहेते कि सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं और अपनी आयुष्यको बिजुरीके चमत्कारवत् देखते हैं, जैसे बिजुरीका चमत्कार होता है तैसी शरीरकी आयुष्य है. जिसको अपनी आयुष्यकी अप्रतीति होतीहै सो किसीकी इच्छा करते नहीं. जैसे किसीको बलिदान अर्थ पालते हैं तब वह खाने पीने भुगतनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसको अपना मरना सम्मुख भासता है तिसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती, यह सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं तो हम किसका आश्रय कर सुखी होवैं? जैसे कोऊ पुरुष समुद्रमें मच्छके आश्रय करके कहे कि, मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाऊँगा अरु सुखी होऊँगा, सो मूर्खता करके डूबही मरेगा, तैसे जिस

पुरुषने इस पदार्थका आश्रय लिया है अरु अपने सुख निमित्त जानता है सो नाशका प्राप्त होवेगा.

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगत्को विचारता है तिस यह जगत् रमणीय भासता है अरु रमणीय जानके ना प्रकारके कर्म करता है अरु जो नाना प्रकारके संक करके जगत्में भटकते हैं कबहूं ऊपर कबहूं नीचे आ हैं अरु स्थिर नहीं रहते तैसे यह जीव भटकते फि हैं. स्थिर कबहूँ नहीं रहते अरु जिस पदार्थकी इ करते हैं सो सब कालका ग्रास रूप होयगे हैं जैसे व अग्नि लगती है तब सब इंधनादिकको जारती है, जेते कछु पदार्थ हैं सो सब इंधन रूपी जगत् वन तिसको कालरूप अग्नि लगी है तिसने सबको ग्र लिया है,बहुरि जो इस पदार्थकी इच्छा करते हैं, सो मह मूर्ख हैं अरु जिसको आत्मविचारकी प्राप्ति है तिस यह जगत् भ्रम रूप भासता है अरु जिसको आत्मवि रकी प्राप्ति नहीं है तिसको यह जगत् रमणीय भास है अरु जगत्को देखते नाश होजाते हैं स्वप्नपुरी नाईं संसारकी मैं कैसे इच्छा करों ? यह तो दुःखके निमि है, जैसे मिठाईमें विष मिलाया है तिसका भोजन कर वाले मृत्युको प्राप्त होते हैं तैसे विषय भुगतनेवाले नाश प्राप्त होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४ ।

अथ सर्वान्तप्रतिपादनवर्णन ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! इस संसारमें भोगरूपी आग्नि लगी है तिसकर सब जलते हैं. जैसे तालमें हाथीके पांवसों कचरकर कमलका चूर्ण हो जाता है तैसे भोगसों मनुष्य दीन हो जाते हैं. तैसे काम क्रोध दुराचारसों शुभ गुण नष्ट हो जाते हैं जैसे कंटकारीके पत्तेमें अरु फलमें कांटे हो जाते हैं तैसे विषयकी वासनारूपी कंटक आय लगते हैं.

हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप है किसी पदार्थका स्थिर रहना नहीं है. वासनारूपी जाल अरु इंद्रियांरूपी गांठी हैं तिसमें पुरुष कालसों आय फँसा है सो बडे दुःखको प्राप्त होवेगा. हे मुनीश्वर ! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती पिरोये हुए हैं अरु मनरूपी नट आय पिरोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गरेमें डारता है जब वासनारूपी तागा टूट परा तब यह भ्रम भी निवृत्त होगया.

हे मुनीश्वर ! इसको भोगकी इच्छा है सो बंधनका कारण है भोगकी इच्छाकर भटकता है, शांतिको प्राप्त नहीं होता है, ताते मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं है न राज्यकी इच्छा है, न घरकी, न वनकी इच्छा है न मरनेका दुःख मानता हों, न जीनेका सुख मानता हों किसी पदार्थका सुख नहीं. सुख जो होना सो आत्मज्ञानकर होना है अन्यथा किसी पदार्थकर होता नहीं. जैसे सूर्यके उदय

हुए विना अंधकारका नाश नहीं होता तैसे आत्म
विना संसारके दुःखका नाश नहीं होता; ताते सोई उप
मुझको कहो जिस कर मोहका नाश होवे और मैं सुखी हो
हे मुनीश्वर ! भोगको भुगतनेहारा जो अहंकार
सो मैंने त्याग दिया है; फिर भोगकी इच्छा कैसी हो
हे मुनीश्वर ! इस विषयरूप सर्पने जिसको स्पर्श कि
है तिसका नाश होजाता है अरु सर्प जिसको काट
है सो एक बेर इसको मारडालता है अरु विषयरू
सर्प जिनको काटते हैं सो अनेक जन्मपर्यंत मर
चले जाते हैं ताते परमदुःखका कारण विषय भोग
याते विषयरूपी परम विष है. अरु वज्र करके शरीर
चूर्ण होना सो भी मैं सहूँगा परन्तु विषयका भुगत
मेरेसों कैसेहूं सहा नहीं जाता, यह मुझको दुःखदाय
दृष्टिमें आता है, ताते सोई उपाय मुझको कहो, जिस
मेरे हृदयसे अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश होवे
जो न कहोगे तो मैं अपनी छातीपर धीरजरूपी शि
धरके बैठा रहोंगा परन्तु भोगकी इच्छा न करोंगा.
हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं सो सब नाश
हैं, जैसे विजुरीका चमत्कार होय छिप जाता है
अंजलीमें जल नहीं ठहरता तैसे विषय भोग
आयुष्य नाश हो जाते हैं, ठहरते नहीं. जैसे कंढी
मच्छी दुखःपावती है तैसे भोगकी तृष्णा कर
दुःख पावते हैं ताते मुझको किसी पदार्थकी इच्छा

जैसे किसीने मरीचिकाके जलको सत्य जान जलपानकी इच्छा करी और दौड्या सो जल पावत नहीं. ताते मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वातमप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५ ।

अथ वैराग्यप्रयोजनवर्णन ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गढेलेमें अरु मोहरूपी कीचमें मूर्खका मन गिर जाता है, तिसकर बड़ा दुःख पाता है शांतवान् कबहूँ नहीं होता। जब जरा अवस्था आती है तब सर्व शरीर जर्जरीभूत होकर कांपने लगते हैं, जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनकर हिलते हैं तैसे जरा अवस्था कर अंग हिलते हैं अरु तृष्णाकी वृद्धि हो जाती है; जैसे नीमका वृक्ष ज्यों २ वृद्ध होता है त्यों त्यों कटुता बढता है, तैसे तृष्णा बढती है.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने देह इंद्रियादिकनका आश्रय अपने सुख निमित्त लिया है सो मूर्ख संसाररूपी अन्धकूपमें गिरता है निकस नहीं सकता अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता हैं.

हे मुनीश्वर ! जगत्के पदार्थमें मेरी बुद्धि मलीन होगई है. जैसे वर्षाकालमें नदी मलीन होती है अथवा जैसे मार्गशीर्ष मासमें मंजरी सूखि जाती है, तैसे जगत्की शोभा देखते देखते बिरस होजाती है जैसे जगत्का पदार्थ

मूर्खको रमणीय भासता है जैसे पानीका गढेला तृण करि आच्छादित होता है अरु मृगके बालक ति तृणको रमणीय जानकर खाने जाते हैं फिर गिर जा हैं तैसे यह मूर्ख भोगको रमणीय जानि भुगतके गिर प हैं फिर महादुःख पाते हैं. जैसे मृग मृगतृष्णा रूप संसारवे पदार्थनके ऊपर मनरूपी मृग उडनहारा कैसे सुखी होवे

हे मुनीश्वर ! जगत्के पदार्थनसों मेरी बुद्धि चंचल ह गई है. ताते सोई उपाय कहो, जिसकर पर्वतकी ना मेरी बुद्धि निश्चल होवे. सो पद कैसा है कि, परमानंद यतमें रहते हैं अरु निर्भय निराकार पद जिसके पाये संसार कछु भी नहीं रहता है बहुरि पावना कछु न रहता है तैसे सम्पूर्ण जगत्की नानाप्रकारकी रचना स दब जाती है तिस पद पानेका उपाय मुझको कहो. मुनीश्वर ! ऐसे पदते मेरी बुद्धि शून्य है ताते मैं शांति मान नहीं होता. यह संसार अरु संसारके कर्म मोहरू हैं; इसमें पडे हुए शांतिको प्राप्त नहीं होते अ जनकादिक संसारमें रहे हुए कमलकी नाई निर्लें रहते हैं तैसे शांतिमान संसारमें निर्लेप रहते हैं. सो जै कोऊ कीचसों पूर्ण होय अरु कहे कि मुझको कीचक परश नहीं हुआ, तैसे राजाके विक्षेपरूपी कीचमें परे हु शांतिमान कैसे निर्लेप रहे है. तिसकी समुझ कहो सो कृपा कर कहो. अरु तुम जैसे जो संत जन हैं विषयको भुगतते दृष्टि आवते हैं अरु जगत्की चेष्टा स

करते हैं; सो कैसे रहते हैं सो युक्ति कहो; जैसे तुम जल कमलवत् रहते हो सो कहो. यह बुद्धि तो मोहकारि मोही जाती है. जैसे तालमें हस्ती प्रवेश करता है और पानी मलीन हो जाता है तैसे मोह कारि बुद्धि मलिन होय जाती है, ताते सोई उपाय कहो, जिसकर बुद्धि निर्मल होवे. यह संतोषमें बुद्धि स्थिर कबहूं नहीं रहती जैसे मूलसों कुल्हारे काटा वृक्ष स्थिर नहीं होता तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती. हे मुनीश्वर! संसाररूपी विषूचिका मुझको लगी है, ताते सो उपाय कहो, जिसकर दृश्यका नाश होवे, इसने मुझको बडा दुःख दिया है अरु आत्मज्ञान कब प्रकाश होय जिसके उदय हुए मोहरूपी अहंकारका नाश होवे है. हे मुनीश्वर! जैसे बादरसों चंद्रमा आच्छादित होय जाता है तैसे बुद्धिकी मलीनता कर मैं आच्छादित हुआ हूँ ताते सोई उपाय कहो जिसकर आवरण दूर होवे अरु जो आत्मानंद है सो नित्य है; जिसके पायेते बहुरि पावना कछु नहीं रहता,इसते संपूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं अरु अन्तर शीतल होजाता है, ऐसा जो पद है तिसकी प्राप्तिका उपाय मुझसे कहो. हे मुनीश्वर! आत्मज्ञानरूपी चंद्रमाकी मुझका इच्छा है जिसके प्रकाशकर बुद्धिरूपी कमलिनी खिल आती है, अरु जिसकी अमृतरूपी किरणकर तृप्त वृत्ति होती है सो कहो. हे मुनीश्वर! अब

मुझको गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं, अरु वनविषे जाने
भी नहीं, मुझको तो इसी पदकी इच्छा है,जिसके पाये
भीतर शांति हो जाय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६।

अथ अनन्यत्यागदर्शन।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! जो जीवनेकी आस्था
करते हैं सो मूर्ख हैं जैसे पत्र पर जलकी बूंद ठहरती
नहीं तैसे आयुष्य भी क्षणभंगुर है। जैसे वर्षाकालमें दद्
बोलते हैं तब उनका कंठ चञ्चल सदा फरकता रहता
तैसे आयुर्दा छिनछिनमें चंचल हो जाती है जैसे शि
जीके कपालमें चंद्रमाकी रेखा कछुसी है तैसा य
शरीर है. हे मुनीश्वर! जिसको इसमें आस्था है
महामूर्ख है; यह तो कालका ग्रास है जैसे बिल्ली चूहे
पकर लेती है, तैसे सबको काल पकर लेता है, जै
बिल्ली चूहेको संभाल करने नहीं देती तैसे सबको का
अचानक ग्रहण कर लेता है, अरु किसीको भासता न

हे मुनीश्वर! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गर्जता
तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होयके नृत्य करता है, ज
अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःखरूपी मंजरी ब
लगती है अरु लोभरूपी बिजुरी छिनछिनमें होय होय न

हो जाती है अरु तृष्णारूपी जालमें फँसे हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पाते हैं; शांतिकी प्राप्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! यह जगत्रूपी बडा रोग लगा है तिसके निवारण करनेका कौनसा पदार्थ है, जो पाने योग्य है जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवे, सोई उपाय कहो. यह जगत् मूर्खको रमणीय दीखता है. ऐसे पदार्थ पृथ्वी-पर, अरु आकाशमें अरु देवलोकमें अरु पातालमें कोऊ नहीं जो ज्ञानवान्को रमणीय दीखैं. ज्ञानवान्को सब भ्रमरूप भासते हैं अरु अज्ञानी जगत्में आस्था करता है. हे मुनीश्वर ! चन्द्रमामें जो कलंक है तिसकर शोभा सुन्दर नहीं लगती, जब कलंक दूर होय जाय तब सुन्दर लगे तैसे मेरे चित्तरूपी चंद्रमामें कामरूपी कलंक लगा है. तिसकर उज्ज्वल नहीं भासता ताते सोई उपाय कहो जिसकर कलंक दूर होजाय.

हे मुनीश्वर ! यह चित्त बहुत चंचल है; स्थिर कदा-चित् नहीं होता, जैसे अग्निमें डार दिया पारा उडजाता है तैसे चित्तभी स्थिर नहीं होता; विषयकी तरफ सदा धावता है. ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्त स्थिर होवे. और संसाररूपी वनमें भोगरूपी सर्प रहते हैं. सो जीवका दंश करते हैं तिनसों बचनेका उपाय कहो अरु जेती कछु क्रिया है सो राग द्वेषके साथ मिली हुई है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर राग द्वेषका प्रवेश न होय, तैसे यह संसारमें परे हैं तिसको तृष्णारूपी जलका

परश न होय, ऐसा उपाय कहो. जिसकर इसको राग द्वेषका परश न होय, अरु मनमें जो मननरूपी सत्ता है सो युक्तिसों दूर होती है अन्यथा दूर नहीं होती सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेको युक्ति कहो और आगे जिसको जिस प्रकार तुम्हारे अंतरमें शीतलता हुई है सो कहो, हे मुनीश्वर! जैसे तुम जानते हो सो कहो अरु जो तुम्हारे विद्यमान यह युक्ति नहीं पाई, तब मैं तों कछु नहीं जानता. तों मैं सब त्यागकर निरअहंकार होय रहोंगा जबलग वह युक्ति मुझको न प्राप्त होवेगी तबलग मैं भोजन नहीं करूँगा; अरु जलपानभी नहीं करूँगा अरु स्नानादिक क्रियाभी नहीं करूंगा. सम्पदाका कार्य भी नहीं करूंगा और आपदाका कार्य भी नहीं करूंगा निर अहंकार होऊंगा, और ये न मेरी देह है और न मैं देहही सब त्याग करके बैठि रहोंगा. जैसे कागजके ऊपर मूर्ति चित्रित होती है तैसे होय रहोंगा. श्वास आते जाते आपही क्षीण होय जायँगे जैसे तेल विना दीपक बुझता है; तैसे अर्थ विना देह होय जायगा तब महाशांतिको प्राप्त होऊंगा.

वाल्मीकि उवाच–हे भरद्वाज ! ऐसे कहि करि रामजी चुप होय रहे. जैसे मेघको देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है.

इति योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७।

अथ देवसमाजवर्णन ।

वाल्मीकि उवाच—हे पुत्र ! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके रामचंद्ररूपी चन्द्रमा बोले, तब सबही मौन होगये; अरु सबके रोम खडे हो आये, मानो रोमहूँ खडे होकर रामजीके वचन सुनते हैं; अरु जेते कछु सभामें बैठे थे सो सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न होगये. वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और जेते दृष्टि आदिक जो मन्त्री थे और राजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वर थे और जेते नौकर चाकर थे और माता कौशल्या आदिक सब मौन होगये अर्थ यह तो अचल होगये अरु पिंजरेमें पक्षी जो थे सो भी मौन होगये. अरु बगीचेमें पशु आदि थे सो भी मौन होगये. अरु चारा तृण खात रहिगये. अरु जो पक्षी आलयमें बैठे थे सो भी सुनकर मौन होगये, अरु आकाशके पक्षी जो निकट थे सो भी स्थिर होगये, अरु आकाशमें देव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर किन्नर थे सो भी आय सुनने लगे, अरु फूलोंकी वर्षा करने लगे सब धन्य धन्य शब्द करनेलगे और फूलोंकी वर्षा भई सो मानो बर्फकी वर्षा होता है; अरु क्षीरसमुद्रके तरंग उछलते आवते होयँ, अरु मोतिकी मालाकी वृष्टि आवत होय और जैसे माखनके पिंड उडते होयँ. इस प्रकार आधी घडी पर्यंत फूलनकी वर्षा भई, अरु बडी सुगंध आय पसरी;

अरु फूलोंपर भौंरे फिरने लगे और बडा विलास तिस कालमें होरहा अरु नमोनमः शब्दकरने लगे.

देव उवाच–हे कमलनयन रघुवंशी आकाशमें चन्द्रमारूप आप रामजी धन्य हो तुमने बडे श्रेष्ठ स्थान देखे हैं अरु बहुत प्रकारके वचन सुने हैं; याते जैसे आप वचन कहे है ऐसे वचन कबहूं नहीं सुने; इस वचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था सो सब निवृत्त भया है. अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण होगई है. हे रामजी ! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे वचन बृहस्पतिहू कहनेको समर्थ नहीं तुम्हारे वचन परमानन्दके करनहारे हैं ताते धन्य हो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देवसमाजवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८ ।

अथ मुनिसमाजवर्णनं ।

वाल्मीकि उवाच–हे भारद्वाज ! ऐसे वचन देवता कहके विचार करत भये रघुवंशका कुल पूजने योग्य है तिसमें रामजी बडे उदार वचन मुनीश्वरके विद्यमान कहे हैं, अब जो मुनीश्वरका उत्तर होगया सो भी श्रवण किया चाहिये. जैसे फूलके ऊपर भौंरा स्थिर होते हैं तैसे व्यास, नारद पुलह; पुलस्त्य आदि सब साधु सभामें आय स्थिर भये, तब वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठके खडे हुये; अरु तिनकी पूजा करने लगे प्रथम

पूजा राजा दशरथने करी फिर नाना प्रकारसों सबने उनकी पूजा करी और यथायोग्य आसनके ऊपर बैठे सो कैसे हैं ? जो नारद बहुत सुन्दर मूर्त्तिवारे हाथमें बीणा लेयके बैठे अरु श्याम मूर्त्ति व्यास बैठे और नाना प्रकारके रङ्गसो रञ्जित वस्त्र पहिरे हुए मानो तारामें महा श्याम घटा आई है. ऐसे अरु दुर्वासा वामदेव पुलह पुलस्त्य अरु बृहस्पतिके पिता अंगिरा अरु भृगु और मैं भी तहां था और ब्रह्मर्षि राजर्षि देवर्षि देवता मुनीश्वर सब आयके सभामें स्थिर हुए. किसीके बडी जटा है, कोई मुकुट पहरे किसीने रुद्राक्षकी माला पहिरी है किसीने मोतीकी माला पहिरी है, किसीके कण्ठमें रत्नकी माला है और हाथमें कमण्डलु मृगछाला किसीके महा-सुन्दर वस्त्र ऐसे बडे तपस्वी आयके बैठे तामें कोई राजसी स्वभावके कोई सात्त्विक स्वभावके ऐसे बडे २ आये अरु सब विद्वान् वेद पढनहारे प्राप्त हुए और किसीका सूर्यवत् किसीका चन्द्रवत् किसीका तारावत् ऐसे बडे प्रकाशवाले पुरुषार्थ पर यत्न करनेहारा सो यथायोग्य आसनपर स्थिर भये और मोहिनी मूर्ति रामजी अरु दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे तिनकी सब पूजा करत भये कहते हैं कि, हे रामजी ! तुम धन्य हो ! और नारद सबके विद्यमान कहत भये कि, हे रामजी ! तुमने विवेक अरु वैराग्यके वचन कहे सो सबको प्यारे लगे. सबके कल्याण करनेहारे हैं और परम बोधके

कारण हैं हे रामजी ! तुम बडे बुद्धिमान् उदारात्मा दृष्टि
आवते हो अरु महावाक्यका अर्थ तुमते प्रकट होता है
ऐसा उज्ज्वल पात्र साधुमें और अनन्त तपस्वियोंमें कोई
एक होते हैं अरु जेते कछु मनुष्य हैं सो सब पशु जैसे
दृष्टिमें आवते हैं क्योंकि, जिसको संसार समुद्रके पार
होनेकी इच्छा है और जो पुरुषार्थ पर यत्न करते हैं
सोई मनुष्य हैं हे. साधो ! वृक्ष तो बहुत होते हैं परन्तु
चंदनका वृक्ष कोई होता है तैसे शरीरधारी बहुत हैं
परंतु ऐसा कोई होता है और सब अस्थि मांसके पुतले
साथ मिले हुये भटकते फिरते हैं सो जैसी यंत्रकी पुतली
होती है तैसे अज्ञानी जीव हैं और हस्ती तौ बहुत हैं
परंतु जिसके मस्तकमें मोती निकसता है सो विरला है
तैसे मनुष्य तो बहुत हैं, परंतु पुरुषार्थ यत्न करनेहारे
कोई होते हैं. ऐसे पात्रको थोरा अर्थ कहाभी बहुत हो
जाता है जैसे तेलकी बूंद थोरी जलमें डारी विस्तारको
पाती है, तैसे थोरे वचनसों आपके हियेमें बहुत होते हैं
आपकी बुद्धि बहुत विशेष है अरु दीपक जैसी प्रकाश
वारी है अरु बोधक परमपात्र है और कहने मात्र
आपको शीघ्र ज्ञान होवेगा अरु हमारे विद्यमान आपको
ज्ञान होवेगा. ऐसा निश्चय करि जानना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णनं नाम
अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

श्रीः।

परमात्मने नमः।

श्री योगवासिष्ठ।

मुमुक्षुप्रकरणप्रारंभ २.

प्रथमः सर्गः।

अथ शुकनिर्वाणवर्णन।

वाल्मीकि उवाच-हे साधो! यह जो वचन हैं सो परमानंदरूप हैं, अरु कल्याणके कर्ता हैं. इसमें श्रवणकी प्रीति तब उपजती है जब अनेक जन्मके बडे पुण्य आय इकट्ठे होते हैं; जैसे कल्पवृक्षके फलको बडे पुण्यसों पाते हैं तैसे जिसके बडे पुण्य कर्म इकट्ठे आय होते हैं तिसकी प्रीति इन वचनोंके श्रवणमें होती है, अन्यथा प्राप्ति नहीं होती ये वचन परम बोधके कारण हैं. हे भारद्वाज! इस प्रकार जब नारदजीने कहा तब विश्वामित्रजी बोले-

विश्वामित्र उवाच-हे ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ रामजी! जेता कछु जानने योग्य था सो तुमने जाना है, इसते जानना और नहीं रहा. अरु तिसमें विश्राम पावने निमित्त कछुक मार्जन करना है, जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलीनता दूर करी होय तब मुख स्पष्ट भासता है, तैसे कछु उपदेशका तुझको अपेक्षा है. हे रामजी! तेरे जैसे भगवान् व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया है सोभी बडा बुद्धि-

मान् था; तिसने जो जानने योग्य था सो जाना है. अ
विश्रामके निमित्त तिसको भी अपेक्षा थी सो विश्रामको
पाय शांतिमान् भया है,

श्रीराम उवाच-हे भगवन् ! शुकजी कैसा बुद्धिमा
अरु ज्ञानवान् थे, अरु कैसी विश्रामकी अपेक्षा थी. फि
कैसे विश्रामको पावत भये सो कृपा करिके कहो.

विश्वामित्र उवाच-हे रामजी । अंजनके पर्वतकी ना
जिनका आकार है; ऐसे जो भगवान् व्यासजी ये स्वर्ण
सिंहासन पर राजा दशरथके पास बैठे हैं अरु सूर्यके
नाईं प्रकाशमान् जिनकी कांति है तिनके पुत्र शुक
सो सब शास्त्रके वेत्ता थे सत्यको सत्य जानते थे अ
त्यको असत्य जानतेथे, सो शांतिरूप और परमानंद
आत्मामें विश्राम न पावते भये तब उनको विकल्प अ
कि, जिसको मैं जाना है सो न होवेगा काहेते कि
मुझको आनंद नहीं भासता है सो संशयको धरके ए
कालमें व्यासजी सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठे थे, तिन
निकट आयकर कहत भये. हे भगवन् ! यह संसार
भ्रमात्मक कहांसे भया है; वाकी निवृत्ति कैसे होय
और आगे कोईको इसकी निवृत्ति भई है सो कहो.

हे रामजी ! इस प्रकार जब शुकजीने कहा; तब विद्व
वेदशिरोमणि जो वेदव्यासजी हैं सो तत्काल उपदे
करते भये. तब शुकजीने कहा-हे भगवन् ! जो क

तुम कहो हो;सो तो मैं आगेसों जानता हों;इसकर मुझको शांति प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी ! जब इस प्रकार शुकजीने कहा तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी हैं सो विचार करतभये कि, मेरे वचन कर इसको शांति प्राप्त न होवेगी. क्योंकि; अब पिता पुत्रका संबंध भासता है, ऐसे विचार करके व्यासजी कहते भये–हे पुत्र ! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं तू राजा जनकके निकट जा, वे सर्वतत्त्वज्ञ हैं अरु शान्तात्मा हैं; उनसों तेरा मोह निवृत्त होवेगा.

हे रामजी ! जब इस प्रकार व्यासजीने कहा तब शुक-देवजी वहांसे चले; तब जो मिथिला नगरी राजा जन-ककी थी तिसमें आयकर राजा जनकके द्वारपै स्थिर भये. तब ज्येष्टीने जायकर राजा जनकको कहा कि व्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडे हैं, तब राजाने जाना कि, इसको जिज्ञासा है; तब कहा खडा रहो, तब खडेई रहे. इसी प्रकार ज्येष्टीने जाय कहा;तब सात दिन खडे रहत बीत गये, तब राजाने फिर पूछा शुकजी खडे हैं कि चलते रहेहैं ? तब ज्येष्टीने कहा खडे हैं. तब राजाने कहा आगे ले आओ, तब आगे ले आये; उस दरवज्जेपै भी सात दिन खडे रहे. बहुरि राजाने पूँछा कि शुकजी हैं ? तब ज्येष्टीने कहा कि, खडे हैं; तब राजाने कहा अंतःपुरमें ले आओ, उसको नाना प्रकारके भोग भुग-

ताओ. तब अंतःपुरमें ले गये, वहां स्त्रियनके पास
दिन खडे रहे, तब राजाने ज्येष्ठीसे पूँछा कि तिसकी
कैसा है और आगे कहा दशा थी ? तब ज्येष्ठीने कहा
आगे निरादर करके न शोकवान् हुवा था, अरु
भोगकर न प्रसन्न हुआ है; इष्ट अनिष्टमें समान है.
मंद पवन करके मेरु चलायमान नहीं होवे तैसे यह
भोगका निरादरकर चलायमान नहीं भये जैसे पपै
मेघके जल विना नदी ताल आदिक जलकी इच्छा
होती, तैसे उसको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं.
राजाने कहा इहाँ ले आओ तब सो ले आये. जब शुक
आये तब राजा जनकने उठके खडे हो प्रणाम कि
फिर दोऊ बैठ गये, तब राजाने कहा कि हे मुनीश्व
तुम किस निमित्त आये हो, तुमको कहा वांछा है?
कहो, किसकी प्राप्ति मैं करदेउं.

श्रीशुक उवाच-हे गुरु ! यह संसारका आडंबर
उत्पन्न हुआ है. फिर कैसे शांत होवेगा ? सो तुम क
विश्वामित्र उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार शुक
जीने कहा तब राजा जनकने यथाशास्त्र उपदेश
कछु व्यासजीने कहा था सोई कहा । बहुरि शुक
कहा-हे भगवन् ! जो कछु तुम कहो हो सोई
पिताजी कहता था अरु सोई शास्त्र कहता है
विचारसों मैं भी ऐसा जानता हों कि, यह संसार

चित्तमें उत्पन्न होता अरु चित्तका निर्वेद हुए भ्रमकी निवृत्ति होती है फिर विश्राम मुझको नहीं प्राप्त होता है.

जनक उवाच—हे मुनीश्वर ! जो कछु मैंने कहा है अरु जो तुम जानते हो इससे और उपाय कछु है? ऐसा जानना नहीं, अरु कहना भी नहीं, यह संसार चित्तके संवेदनकर हुआ है. जब चित्त फुरनेते रहित होता है तब भ्रम निवृत्त होजाता है; अरु आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध है अरु परमानंद स्वरूप है केवल चैतन्य है तिसका अभ्यास करैगा तब तू विश्रामको पावेगा. अरु तू मुक्ति-स्वरूप है. काहेते कि, तेरा यत्न आत्माकी ओर है दृश्यकी ओर नहीं. ताते तू बडा उदारात्मा है.

हे मुनीश्वर ! तू मोको व्यासते अधिक जान मेरे पास आया है. और तू मेरेते भी अधिक है, काहेते कि, हमारी चेष्टा बाहरते दृष्ट आवती है और तुम्हारी चेष्टा बाहरतें कछु भी नहीं अरु अंतरते हमारी कछु भी नहीं.

विश्वामित्र उवाच—हे रामजी ! जब इस प्रकार राजा जनकने कहा; तब शुकजी निःसंग निष्प्रयत्न निर्भय होकर चले, सुमेरु पर्वतकी कंदारमें जाय निर्विकल्प समाधि दश सहस्र वर्ष ताईं करी. बहुरि निर्वाण हो गये जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है तैसे निर्वाण होगये, जैसे समुद्रमें बूंद लीन होजाता है जैसे सूर्यका

प्रकाश संध्याकालमें सूर्यके पास लीन हो जाता है
कलनारूप कलंकको त्यागकर ब्रह्मपदको प्राप्त भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शुकनिर्वाणवर्णनं
नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २ ।

अथ विश्वामित्रोपदेशवर्णन ।

विश्वामित्र उवाच—हे राजा दशरथ ! जैसे शुक
शुद्ध बुद्धिवारे थे तैसे रामजी भी हैं. जैसे शांति
निमित्त उसका कछुक मार्जन कर्त्तव्य था तैसे रामजी
विश्रामके निमित्त कछुक मार्जन चाहिये, काहेते
आवरण करनेहारे भोग हैं सो इच्छा तिनते निवृत्ति भ
अरु जो कछु जानने योग्य था सो जाना है अब हम
कछुक युक्ति करनी है. तिस करके उसको विश्राम हो
जैसे शुकजीने थोडेसे मार्जनकरके शांतिकी प्राप्ति
थी तैसे इनको भी होवेगी.

हे राजन् ! अब रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श
करती. जैसे ज्ञानवान्को आध्यात्मिक आदि दुःख स
नहीं करते तैसे रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श
करती. भोगकी इच्छा सबको दीन करती है. इसक
नाम बन्धन है. अब भोगकी वासनाका क्षय करना इस
ही नाम मोक्ष है, ज्यों ज्यों भोगकी इच्छा करता है
त्यों लघु होजाता है अरु ज्यों ज्यों भोगकी वासना

होती है त्यों त्यों गरिष्ठ होता है, जबलग इसको आत्मानंद प्रकाश नहीं होता तबलग विषयकी वासना दूर नहीं होती, जब आत्मा नंद प्राप्त होता है तब विषय वासना कोई नहीं रहती. जैसे मरुस्थलमें लताकी उत्पत्ति नहीं होती तैसे ज्ञानवान्‌को विषयवासनाकी उत्पत्ति नहीं होती.

हे साधो ! ज्ञानवान् जो विषयभोगका त्याग करता है सो किसी फलकी इच्छा करके नहीं करता; स्वभावतेही ज्ञानवान्‌को विषयवासना उठ जाती है. जैसे सूर्यके उदय हुए अन्धकारका अभाव होजाता है तैसे रामजीको अब किसी भोग पदार्थकी इच्छा रही नहीं अब विदित वेद हुआ है; अब आप विश्रामकी इच्छा चाहता है; ताते जो कहो सोई करो जिसकर विश्रामवान् होय.

हे राजन् ! यह जो भगवान् वशिष्ठजी हैं इनकी युक्ति करके शांत होवेगा; अरु आगे भी सांई रघुवंशकुलके गुरु हैं; इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं जो सर्वत्र हैं, अरु साक्षीरूप हैं, और त्रिकालज्ञ हैं और ज्ञानके सूर्य हैं इनके उपदेश कर रामजी आत्मपदको प्राप्त होवेगा.

हे वशिष्ठजी ! वह ब्रह्मका उपदेश तुम्हारे स्मरणमें है क्योंकि, जब तुम्हारा हमारा विरोध हुआ था, तब उपदेश किया. और जो सब ऋषीश्वर अरु वृक्ष कारि पूर्ण

है ऐसा जो मन्दराचलमें आयकर ब्रह्माजीने सं
वासनाके नाश निमित्त उपदेश किया था; अरु तुम्ह
हमारा विरोध था तिसके निमित्त अरु और जी
कल्याण निमित्त जो उपदेश किया था अब वही उप
तुम रामजीको करो, यह भी निर्मल ज्ञानपात्र हैं
ज्ञान भी वही है अरु विज्ञान भी वही है अरु नि
युक्ति वही है कि, शुद्ध पात्रमें अर्पण होवे अरु प
विना उपदेश नहीं सुहाता है अरु जिसमें शिष्य
न होवै अरु विरक्तता न होवे ऐसा जो अपात्र
होवे तिसको उपदेश करना व्यर्थ है अरु जो वि
होवे अरु शिष्य भावना न होवे तौऊभी उपदेश
करना अरु दोनों करि संपन्न होवे तब करना. पात्र
उपदेश करना व्यर्थ होता है. अर्थ यह कि अपवित्र
जाता है, जैसे गौका दूध महापवित्र है, परन्तु श्वा
त्वचामें डारिये तब वह अपवित्र हो जाता है, तैसे अ
त्रको उपदेश करना व्यर्थ है. हे मुनीश्वर ! जो
वैराग्य करि संपन्न होता है, अरु उदार आत्मा
तुम्हारे उपदेशके योग्य है, तुम कैसे हो कि, वीत
हो भय अरु क्रोधते रहित हो परम शांतिरूप हो
तुम्हारे उपदेशका पात्र रामजी हैं.

वाल्मीकि उवाच–इस प्रकार जब विश्वामित्रने
तब नारद अरु व्यासादिकनने साधु साधु करके

अर्थ यह कि; भला भला कहा ऐसेई यथार्थ है, तब राजा दशरथके पास बहुत प्रकारके साधु बैठे हुए थे.

वसिष्ठ उवाच—ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजीने तिनसे कहा कि, हे मुनीश्वर! जो कछु तुमने आज्ञा करी है, सो हमने मानी है. ऐसा समर्थ कोऊ नहीं, सो संतकी आज्ञा निवारण करै, हे साधो! जेते कछु राजा दशरथके पुत्र हैं तिन सबके हृदयमें जो अज्ञानरूपी तम है सो मैं ज्ञान रूपी सूर्यकर निवारण करोंगा; जैसे सूर्यके प्रकाश कर अंधकार दूर होताहै. हे मुनीश्वर! जो कछु ब्रह्माजीने उपदेश किया था सो मुझको अखंड स्मरण है, सोई उपदेश करोंगा. जिसकर रामजी निःसंशय पदको प्राप्त होवेगा.

वाल्मीकि उवाच—इस प्रकार वशिष्ठजीने विश्वामित्रसे कहा। ताके अनंतर मोक्षका उपाय सब रामजीको कहत भया।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः॥ २॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णन।

वशिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो कछु कमलज जो ब्रह्माजी तिसने मुझको जीवके कल्याण निमित्त उपदेश किया है सो भले प्रकार मेरे सुमिरणमें आता है सो अब तुमको कहता हों.

श्रीराम उवाच–हे भगवन् ! कछुक प्रश्न करनेका अ
सर आया है, अब एक संशयको दूर करो. मोक्ष उप
जो कहते हो. सो सब तुम कहोगे, परंतु यह जो तुम
कहा कि, शुकदेवजी विदेहमुक्त होगये तो भगवा
व्यासजी जो सर्वज्ञ हैं सो विदेहमुक्त क्यों न हुए ?

वशिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे सूर्यकिरणसों त्रसरे
उडती देख पडती हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं हो
तैसे परम सूर्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकी
त्रसरेणु है सो असंख्य है और अनंत होकर मिट ज
हैं और अनंत होते हैं और अनंत त्रिलोकी, ब्रह्म स
द्रमें होवेंगे तिसकी संख्या कछु नहीं.

श्रीराम उवाच–हे भगवन् ! जो आगे व्यतीत हो
हैं और जो आगे होवेंगे तिनकी संख्या केती है
वर्त्तमानको तो जानता हों.

वशिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अनंत कोटि त्रिलोकी
गण उपजे हैं अरु मिटगये हैं अरु कई होवे हैं
कई होवेंगे गिननेकी संख्या कछु नहीं काहेते कि,
असंख्य हैं अरु जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि
जब यह जीव मृतक होजाते हैं तब उसी स्था
अपने अन्तवाहक संकल्परूपी पुरविषे इसका वा
भास आता है. अरु इसी स्थानमें परलोक भास अ
है. पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पंचभूत भासत

अरु नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी अपनी सृष्टिं भास आती है, बहुरि जब वहाँते मृतक होता है तब वही सृष्टि भास आती है नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत् सत्य होकर भास आती है बहुरि जब वहाँते मरता है तब इस पञ्चभूत सृष्टिका अभाव हो जाता है और अपर भासती है अरु तहांके जो जीव होते हैं तिनको भी इसी प्रकार अनुभव होता है, इसी प्रकार एक एक जीवकी सृष्टि होती है अरु मिटजाती है तिसकी संख्या कछु नहीं, तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे होवे ?

जैसे पुरुष फेर लेता है; अरु तिसको सब पदार्थ भ्रमते दृष्टि आवते हैं अरु जैसे नौकामें बैठे हुए नदी-तटके वृक्ष चलते दृष्टि आते हैं. जैसे नेत्रके दोषकर आका-शमें मोतीकी माला दृष्टि आती है. जैसे स्वप्नमें सृष्टि भासती है तैसे जीवको भ्रम करके यह लोक परलोक भासताहै, वास्तवते जगत् कछु उपजाई नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैत भ्रम अविद्या करके भासता है, जैसे बालकको अपने परछैयामें बैताल भासता है, अरु भयको पाता है, तैसे अज्ञानको अपनी कल्पना जगत्रूप हो भासती है.

हे रामजी ! यह व्यासदेव बत्तीस बेर मेरे देखनेमें आया है, तिसमें दश तो एक आकार रूप हैं, अरु एकही जैसी क्रिया, अरु एकही जैसे निश्चय हुआ है

अरु अपर दश समानही सम हुए हैं अरु विल॰ आकारवाले विलक्षण क्रिया चेष्टावारे हुए हैं जैसे स॰ द्रमें तरंग होते हैं तामें कई सम अरु कई विल॰ उपजते हैं. तैसे व्यास हुए हैं अरु सम जो दश हु॰ तिनमें दश व्यास यही हैं, अरु आगे भी अष्टबेर॰ होवेगा बहुरि महाभारत कहैगा, बहुरि नौमी बेर॰ होकर विदेहमुक्त होवेगा, अरु हम भी होवेंगे अरु वाल॰ कि भी होवेगा अरु भृगु भी होवेगा; अरु बृहस्पतिका॰ अंगीरा भी होवेगा, इत्यादिक और भी होवेंगे.

हे रामजी ! एक सम होते एक विलक्षण होतेहैं. मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव कई बेर समान हो॰ कई बेर विलक्षण होते हैं, कई जीव समान आकार॰ जैसे कुल क्रिया सहित होते हैं अरु कई संकल्प॰ उडते फिरते हैं आवना, जावना, जीवना, मरना; ॰ भ्रमकी नाई दीखता है अरु वास्तवते कोउ न आता॰ न जाता है न जन्मताहै, न मरता है. यह भ्रम अज्ञा॰ कर भासता है, विचार कियेते कुछ निकसता नहीं॰ कदलीका स्तंभ देखनेमें बडा पुष्ट आता है फिर॰ देखो तो सार कछु नहीं निकलता, तैसे जगत् भ्रम॰ चार करके सिद्ध है. विचार कियेते कछु भासता॰

हे रामजी ! जो पुरुष आत्मसत्तामें जागा है ति॰ द्वैत भ्रम नहीं भासता है. वह आत्मदर्शी, सदा

आत्मा परमानन्दस्वरूप है. अरु सब कलनाते रहित है. ऐसे जीवन्मुक्तको कोई चलाय नहीं सकता ऐसे जो व्यासदेवजी हैं तिसको सदेह मुक्ति, अरु विदेहमुक्तिकी कोई कलना नहीं सदा अद्वैत रूप है. हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब सर्वात्मा पूर्ण भासता है अरु स्वरूप भासताहै. स्वरूप सार शांतिरूप अमृत करि पूर्ण है, अरु निर्वाणमें स्थितहै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टिप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४।

अथ पुरुषार्थोपक्रमवर्णन ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जीवन्मुक्ति अरु विदेह मुक्तिमें भेद कछु नहीं. जैसे स्थिर जल है तोभी जल है, अरु तरंग फिरते हैं तौ भी जल है, तैसे जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं. हे रामजी ! जीवन्मुक्ति अरु विदेह मुक्तिका अनुभव तुझको प्रत्यक्ष नहीं भासता. काहेते ? जो स्वसंवेद्य है अरु तिनमें जो भेद भासता है सो असम्यग्दर्शीको भासता है, ज्ञानवान्को भेद कछु नहीं भासता है जैसे वायु स्पन्द रूप होता है तो भी वायु है; अरु निष्पंद रूप होता है तो भी वायु है, उसके वायेते निश्चय विषे भेद कछु नहीं पर अपर जीवको स्पंद होती है तो भासती है; अरु निष्पंद होती है, तो नहीं भासती है तैसे ज्ञानवान् पुरुषको जीवन्मुक्ति

अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं वह सदा अद्वैत है नाते रहित है जब जीवको उसका शरीर भासता है जीवन्मुक्ति कहते हैं जब शरीर अदृश्य होता है तब विदेह मुक्ति कहते हैं अरु उसको दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंगको सुन जो श्रवण भूषण है, जो कछु सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ सिद्ध होताहै, पुरुषार्थ बिना सिद्ध कछु नहीं होता जो कहते हैं दैव करेगा सो होवेगा सो मूर्खता है. चन्द्रमा हृदयको शीतल अरु उल्लास कर्ता भासता इसमें शीतलता पुरुषार्थ कर हुई है. हे रामजी! अर्थकी प्रार्थना करै अरु यत्न करै तिसमें फिरै तो अवश्य कर जरूर पाता है और पुरुष प्रयत्न किस नाम है? सो श्रवण कर. संतजन अरु सत्य शास्त्रके देशरूप उपाय कर तिसके अनुसार चित्तमें विचा होय सो पुरुषमें यत्न है, तिससें इतर जो चेष्टा कर तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है, अरु जिस निमित्त करता है सोई पावता है, एक जीव था सो पुरुषा यत्न करते अपूर्व इंद्रकी पदवी पाई; त्रिलोकीका होय सिंहासनपर आरूढ हुआ.

हे रामचंद्र! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य स्पंद, इस रूप होकर स्फूर्ति है, सो अपने पुरुषार्थ कर अ पदको प्राप्त भई है ताते देख, जिसको कछु सिद्धता

हुई सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है; केवल चैतन्य जो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्त संवेदन यही स्पंदरूप है. यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके गरुडपर आरूढ होय विष्णुरूप होता है, अरु यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके रुद्ररूप भया है अरु अर्द्धाङ्गमें पार्वतीको धर रहा है अरु मस्तकमें चन्द्रमाको धरा है अरु नील-कंठ परम शांतरूप है, ताते जो कछु सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ कर होता है.

हे रामजी! पुरुषार्थ करके सुमेरुका चूरण किया चाहै तोभी कर सकता है. जैसे पूर्व दिनमें दुष्कृत किया होय अरु अगले दिनमें सुकृत करै तब दुष्कृत दूर हो जाता है. जो अपने हाथ द्वारा चरणामृत भी ले नहीं सकता, अरु पुरुषार्थ करे तो वही पृथ्वी खंड खंड करनेको समर्थ होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोप-
क्रमो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५।

अथ पुरुषार्थवर्णन।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो चित्त कछु वांछा करता है अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुखको न पावेगा; उसकी उन्मत्त चेष्टा है. अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है—एक शास्त्र अनुसार है, एक शास्त्र विरुद्ध

है; जो शास्त्रको त्याग करि अपनी इच्छाके अनुसा विचारता है सो सिद्धताको न पावेगा अरु जो शास्त्र अनुसार पुरुषार्थ करता है सो सिद्धताको प्राप्त होवेग अरु दुःख भी न होवेगा. अनुभवते स्मरण होता है अरु स्मरणते अनुभव होता है, सो दोनों इसहीते हो हैं दैव तो कछु न हुवा.

हे रामजी ! और दैव कोई नहीं, इसका किया इस प्राप्त होता है. परंतु जो बलिष्ठ होता है सो तिसके अनु सार विचारता है. जो पूर्वके संस्कार बली होते हैं उसकी जय होती है अरु जो विद्यमान पुरुषार्थ ब होता है तब उसको जीति लेते हैं. जैसे एक पुरुष दो बेटे हैं अरु जो तिनको लडावता है तो दोनों जो बली होता है तिसकी जय होती है परन्तु दोनों उस हैं तैसे दोनों कम इसके हैं, जो पूर्वका संस्कार ब होता है तो इसकी जय होती है.

हे रामजी ! यह जो सत्संग करता है अरु सतशास्त्र हूका विचार करता है बहुरी पक्षीकी नाईं संसार वृ हूकी ओर उडता है तो पूर्वका संस्कार बली है ति करि स्थिर हो नहीं सकता, ऐसे जानकर तैं पुरुष प्र त्नका त्याग नहीं करना; जो पूर्वके संस्कारते अन्य नहीं होता । पूर्वका संस्कार बली भी होवे परंतु सत्संग करे अरु सतशास्त्रहूका दृढ अभ्यास होवे

पूर्वके संस्कारको पुरुष प्रयत्न कर जीत लेता है जैसे पूर्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है आगे सुकृत किया है तो अगलेका अभाव होजाता है; सो पुरुषप्रयत्न होता है. सो पुरुषार्थ क्या है अरु तिसकर सिद्ध क्या होता ? सो श्रवण करके ज्ञानवान् जो संत हैं अरु सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है तिसके अनुसार प्रयत्न करना तिसका नाम पुरुषार्थ है. अरु पुरुषार्थ करके पावने योग्य आत्मा है जिसकरि संसार समुद्रसे पारहोवे.

हे रामजी ! जो कछु सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ करि होता है; अपर दैव कोऊ नहीं, अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थको त्याग करि कहता है जो जो कुछ करना है सो दैव करेगा, सो मनुष्य गर्दभ है. तिसका संग न करना उसकी संगति करनी सो दुःखका कारण है. इस पुरुषको प्रथम तो यह कर्तव्य है कि, अपने वर्णाश्रमविषे शुभ आचारको ग्रहण करना, अरु अशुभको त्याग करना बहुरि संतका संग अरु सत्शास्त्रका विचारना और तिसके विचार कर अपने गुण दोषहूका विचार करना कि, दिन अरु रात्रिमें शुभ क्या करता हों अरु अशुभ क्या करता हों आगे गुण अरु दोषहूका साक्षीभूत होकर जो संतोष धीरज वैराग्य विचार अरु अभ्यास गुण है तिसका बढावना अरु जो दोष विपरीत है तिनका त्याग करना जब ऐसे पुरुषार्थको अंगीकार करैगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा, ताते हे रामजी !

वनके घायल हुए मृगकी नाईं नहीं होना जो घास, तृण पातको रसीला जानके परा चुगता है तैसे स्त्री पु बांधव धनादिक विषे मग्न हो रहना सो नहीं होना इन विरक्त होना साथ दंतहूको चबायकारि संसार समुद्र पार होनेका यत्न करना अरु बलते बंधनको तोड कर निकस जाना जैसे केसरी सिंह बल करके पींजरेसे निकस जाता है तैसे निकस जाना सोई पुरुषार्थ है.

हे रामजी ! जिसको कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है अपने पुरुषार्थकर हुई है पुरुषार्थ बिना नहीं होती जै प्रकाशविन पदार्थका ज्ञान नहीं होता जिस पुरुषने अपन पुरुषार्थ त्याग दिया है अरु दैवके आश्रय हुआ है कि हमारा दैव कल्याण करैगा सो न होवेगा. जैसे—पत्थरसे तेल निकासा चाहै सो नहीं निकलता तैसे उनका कल्याण दैवते न होवेगा. हे रामजी! तुम तो दैवका आश्रय त्याग क अपने पुरुषार्थका आश्रय करो जिसने अपने पुरुषार्थक त्यागा है तिसको सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जाती है जै वसन्तके मंजरी वसंतऋतुके गयेते बिरस होजाती है तै उनकी कांति लघु हो जाती है जिस पुरुषने ऐसे निश्च किया है कि, हमारा पालनेहारा दैव है सो पुरुष ऐसा जैसे कोई अपनी भुजाको सर्प जानके भय पायके दौरते और जानते नहीं कि, अपनी भुजा है तैसे अपने पुरुषा र्थको त्यागके दैवका आश्रय लेता है अरु भयको पाता है

पुरुषार्थ नाम इसका है कि, संतहूका संग अरु सत् शास्त्रोंका विचार करके तिनके अनुसार विचारना अरु जो तिनको त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरते हैं सो सुखको नहीं पावेंगे न सिद्धताको पावेंगे अरु जो शास्त्रके अनुसार विचरते हैं सो यहां भी सुख पावेंगे अरु आगेभी सुख पावेंगे तैसेई सिद्धताको पावेंगे ताते संसार-रूपी जालविषे नहीं गिरना सो पुरुषार्थ है संतजनहूके संग अरु सत्शास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना बोध-रूपी कानी करनी अरु विचाररूपी स्याही करनी जब ऐसे पुरुषार्थ करि लिखैगा तब संसाररूपी जालमें न गिरैगा.

हे रामजी ! जैसे यह आदिनेति हुई है जो पट है सो पटही है जो घट है सो घटही है घट है सो पट नहीं और पट है सो घट नहीं तैसे यह भी नेति हुई है अपने पुरु-षार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती.

हे रामजी ! जो संतहूकी संगति करता है अरु सत्-शास्त्रभी विचारता है अरु उनके अर्थमें पुरुषार्थ नहीं करता तिसकारि सिद्धता प्राप्त नहीं होती जैसे अमृतके निकटई बैठा होवे अरु पान किये बिना अमर नहीं होता.

हे रामजी ! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोवते हैं जब बालक होते हैं तब मूढ अवस्थामें लीन रहते हैं अरु युवा अवस्थामें विकारहूको सेवते हैं अरु जरामें जर्जरीभूत होते हैं इसी प्रकार जीवना व्यर्थ खोवते हैं

अरु जो अपना पुरुषार्थ त्याग करके दैवका आश्रय लेते हैं सो अपने हंता होते हैं सुखको नहीं पावेंगे. हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार विषे अरु परमार्थविषे आलसी हुए हैं अरु परमार्थको त्यागके मूढ हो रहे हैं सो दीन हुए हैं मानो पशु हैं अरु दुःखको प्राप्त हुए हैं यह मैंने विचार करके देखा है ताते पुरुषार्थका आश्रय करो। सत्संग अरु सत्‌शास्त्ररूपी आदर्श करके अपने गुण करके दोषको देखके दोषका त्याग करो अरु शास्त्रका सिद्धांत जो है तिसका अभ्यास करो, जब दृढ अभ्यास करोगे तब शीघ्रही आनन्दवान् होंगे.

वाल्मीकि उवाच–जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सायंकालका समय हुआ सब स्नानके निमित्त उठके खडे भये और परस्पर नमस्कार करके अपने अपने घरको गये बहुरि सूर्यकी किरणन साथ आय स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ १९ ॥

षष्ठः सर्गः ६।

अथ परमपुरुषार्थवर्णन।

वशिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसका जो पूर्वका किया पुरुषार्थ है तिसका नाम दैव है और दैव कोऊ नहीं जब यह सत्संग अरु शतशास्त्रका विचार पुरुषार्थ करै तब पूर्वके संस्कारको जीत लेता है जिस पुरुष इष्ट

पावनेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करैगा तिसको अवश्यमेव अपने पुरुषार्थते पावेगा अन्यथा कछु नहीं होती न हुई है न होवेगी पूर्व जो कोऊ पाप किया होता है तिसका फल जब दुःख पावता है तब मूर्ख कहता है कि, हाय दैव! हाय दैव! हाय कष्ट! हाय कष्ट!.

हे रामजी जो पुरुषार्थ पूर्वका है, तिसका नाम दैव है. और कोऊँ नहीं और जो कोऊ दैव कल्पते हैं सो मूर्ख हैं, अरु जो पूर्वके जन्म सुकृत करके आया होता है वही सुकृत सुख होयके दिखाई देता है जो पूर्वका सुकृत बली होता है तो उसहीकी जय होता है पूर्वका दुष्कृत बली होता है, अरु जो शुभका पुरुषार्थ करता है सत्संग अरु सत्शास्त्रहूका विचार श्रवण करता है तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. जैसे प्रथम दिन पाप किया होवे दूसरे दिन बडा पुण्य करै तो पूर्वका पाप निवृत्त हो जाता है तैसे जब यहां दृढ पुरुषार्थ करै तो संस्कारको जीत लेता है. ताते जो कछु सिद्ध होता है सो इसको पुरुषार्थ करके सिद्ध होता है कि, एकत्र भाव करि प्रयत्न करना, इसीको नाम पुरुषार्थ है. जिसको यत्न एकत्र भाव होयके करेगा तिसको अवश्यमेव प्राप्त होवैगा. जो पुरुष अपर दैवको जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठा है सो दुःखको पावेगा; शांतिवान् कबहूं न होवेगा.

हे रामजी ! मिथ्या दैवके अर्थको त्यागके तुम अपने पुरुषार्थका अंगीकार करो, जो संतजन अरु सत्‌शास्त्रहूके वचन अरु युक्ति साथ यत्न करके आत्मपदको अभ्यास करके प्राप्त होना, इसीका नाम पुरुषार्थ है. प्रकाश करके जैसे पदार्थहूका ज्ञान होता है तैसे पुरुषार्थ करि आत्मपदकी प्राप्ति होती है. जो पूर्वके कियेते बडा पाप होता है अरु इहाँ दृढ पुरुषार्थ कियेते उसको जीत लेता है. जैसे बडा मेघ होता है अरु तिसका पवन नाश करता है. अरु जैसे वर्ष दिनहूका क्षेत्र पक्का होता है, अरु बर्फ तिसका नाश कर देता है; तैसे पूर्वके संस्कार पुरुष प्रयत्न करके नाश होता है.

हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है जाने सत्संग अरु सत्‌शास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण करके संसार समुद्र तरवेको पुरुषार्थ किया है अरु जिनने सत्संग अरु सत्‌शास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी अरु पुरुषार्थको त्याग बैठे हैं सो पुरुष नीचते नीच गतिको पावेंगे, अरु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने पुरुषार्थ करके परमानंदपदको पावेंगे जिसके पायेते बहुरि दुःख नहीं होता. अरु जो देखने करि दीन होते हैं अरु सत्संगति अरु सत्‌शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करते हैं सो उत्तम पदवीको प्राप्त होते दृष्टि आवते हैं. हे रामजी ! जिस पुरुषने पुरुष प्रयत्न किया है तिसको सब संपदा आय प्राप्त होती है. अरु परमानंद

कारि पूर्ण हो रहते हैं जैसे रत्नहूकारि समुद्र पूर्ण है तैसे वह परमानंद करके पूर्ण हुए हैं ताते जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने पुरुषार्थ द्वारा संसारके बंधनते निकस जाते हैं जैसे केसरी सिंह अपने बलसों पिंजरेते निकस जाता है तैसे वह अपने पुरुषार्थ करि संसार बन्धनते निकस जाता है.

हे रामजी ! यह पुरुष और कछु न करै तब करै कि अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरै; अरु सारे पुरुषार्थ करै; जो संतहूं अरु शास्त्रहूका आश्रय होवे तिसके अनुसार पुरुषार्थ करे तब सब बंधनते मुक्त होवेगा अरु जो अपने पुरुषार्थका त्याग किया है किसी और दैवको मानके कहता है कि, वह मेरा कल्याण करैगा; सो जन्म मरणको प्राप्त होवेगा. हे राजमी ! इस जीवको संसाररूपी विषूचिका रोग है, तिसको दूर करनेका उपाय मैं कहता हों. संतजन अरु सत्शास्त्रहूके अर्थ विषे दृढ भावना करनी; जो कछु तिनहूते सुना है तिसका वारंवार अभ्यास करना. और सब कल्पना त्यागके एकान्त होयके तिसका चिंतन करना, तब इसको परमपदकी प्राप्ति होवेगी अरु द्वैत भ्रम निवृत्त हो जावेगा. अद्वैतरूपपणा भासेगा, इसकाही नाम पुरुषार्थ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नामः षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७ ।

अथ पुरुषार्थउपमावर्णन ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अन्य पुरुषार्थ करके इसक आध्यात्मिक आदि ताप आय प्राप्त होते हैं तिसको शांतिको नहीं पाता. तुम रोगी नहीं होना. अपने पुरु षार्थ द्वारा जन्म मरणके बंधनते मुक्त होवो और को दैव मुक्ति नहीं करनेका; अपने पुरुषार्थ द्वारा संसा बंधनते मुक्ति होना है जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थक त्याग किया है अरु किसी और दैवको मानिक तिसमें परायण हुआ है तिसका धर्म, अर्थ, काम न होजावेगा अरु नीचते नीच गतिको प्राप्त होवेगा.

हे रामजी ! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप है अरु वास्तव रूप है तिसके आश्रय जो आदि चित्त सं दन स्फूर्ति है जो अहं मम संवेदन होयके फुरने लगे है, बहुरि इंद्रिय अहं स्फूर्ति है. जब यह स्फूरना सं अरु शास्त्रकेअनुसार होवे तब वह पुरुष परमशुद्धता प्राप्त होता है अरु जो संत और शास्त्रके अनुसार न हो तब वासनाके अनुसार भाव अभाव रूप जो भ्रम जा है, तिसविषे परा घटीयंत्रकी नाईं भटकता है शांति कबहूं नहीं होता.

हे रामजी ! जिस किसीको सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थकरे हुई है, बिना पुरुषार्थ सिद्धताको प्र न होवेगा. जब किसी पदार्थको ग्रहण करना होता

तब भुजा पसारिये तो ग्रहण करना होता है, अरु जो किसी देशको प्राप्त होना होवे सो जब चले तब जाय पहुँचिये. अन्यथा नहीं होता ताते पुरुषार्थ विना सिद्ध कछु नहीं होता. जो कोऊ कहता है. दैव करैगा सो होवेगा सो मूर्ख है. हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं इस पुरुषार्थका नाम दैव है. यह दैव शब्द मूर्खहूका परचावा है, जो किसी कष्ट साथ दुःख पाया तिसका कहते हैं दैवका किया है सो और तो दैव कोऊ नहीं ॥

हे रामचंद्र ! जो अपना पुरुषार्थ त्यागके दैवके आश्रय हो रहेगा सो सिद्धताको प्राप्त न होवेगा, काहेते कि, अपने पुरुषार्थ बिना सिद्धता किसीको प्राप्त नहीं होता अरु बृहस्पतिने जो दृढ पुरुषार्थ किया है तब देवताओंके राजा इन्द्रका गुरु हुवा है, अरु शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सर्व दैत्योंका गुरु हुआ है, अरु अवर जो समान जीव हैं तिन विषे जिस पुरुषने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है. जिसको जाते सिद्धता प्राप्त भई सो अपने पुरुषार्थ करि भई है; अरु जिस पुरुषने संत अरु शास्त्रनके अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया सो मेरे देखते २ बडे राजा अरु प्रजा धनते और विभूतिते क्षीण होगये हैं अरु नरकहू विषे परे जलते हैं जिस करके कछु अर्थ सिद्ध होवे तिसका नाम पुरुषार्थ है अरु जिस करके अनर्थसिद्धि होवे तिसका नाम अपुरुषार्थ है.

हे रामजी ? इस पुरुषका कर्तव्य यही है कि, स
शास्त्र अरु संतहूका संगकरि बुद्धि तीक्ष्ण करै अरु शु
गुणको पुष्ट करै दया धीरज संतोष वैराग्यके अभ्या
करके बुद्धि तीक्ष्ण करै अरु तीक्ष्ण बुद्धि करके इन
पुष्ट करे जैसे बडे तालमें मेघ पुष्ट होता है बहुरि
करके मेघ तालको पुष्ट करता है तैसे शुभ गुण क
बुद्धि पुष्ट होती हैं अरु पुष्ट बुद्धिकरि शुभगुण पुष्ट होते

हे रामजी ! जो बालक अवस्थातें लेकरि अभ्या
किया होती है उसको शुद्धता प्राप्त होती है अर्थ
कि दृढ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती है,
किसी देश अथवा तीर्थ जाना होवे तब मार्गविषे
आलस होके चला जावै तो जाय पहुँचेगा अरु जब
जन करैगा तब क्षुधा निवृत्त शुद्ध होवेगी, अन्यथा
होवेगी. अरु जब मुखविषे जिह्वा शुद्ध होवेगी तब
स्पष्ट होवेगा, गूंगासो पाठनहीं होता. तातै जो कछु
सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ कर सिद्ध होता
तूष्णीं हो रहनेते कोई कार्य सिद्ध नहीं होता. अरु स
गुरु बैठे हैं, इनहूते पूंछ देखो आगे जो तेरी इच्छा
सो कर. अरु जो मुझसों पूछे तो सब शास्त्रका सि
कहता हों, जिस करि सिद्धताको प्राप्त होवेगा.

हे रामजी ! संत जो हैं, ज्ञानवान् पुरुष, अरु
शास्त्र जो हैं ब्रह्मविद्या तिनके अनुसार संवेदन

मन अरु इंद्रियोंका विचारना होवे अरु इसके विरुद्ध होवे तिससे वर्ज्य रखना. तिस करके तुझको संसारका राग द्वेष स्पर्श नहीं करेगा सबसे निर्लेप रहैगा जैसे जलते कमल निर्लेप रहता है तैसे तू निर्लेप रहैगा.

हे रामजी ! जिस पुरुषते शांति प्राप्त होवे तिसकी भली प्रकार सेवा करिये काहेते कि, उसका बडा उपकार है जो संसार समुद्रते निकासलेता है. हे रामजी ! सत जन भी वही हैं अरु सतशास्त्रभी वही है जिनके विचार करि अरु संगति करि संसारसे चित्त उपराति होवे मोक्षका उपाय वही है ताते और सब कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थको अंगीकार करो तब जन्म मरणका भय निवृत्त होजावे.

हे रामजी ! जब यह वांछा करताहै अरु तिसके निमित्त दृढ पुरुषार्थ करता है तब अवश्यमेव तिसको पावे अरु जो बडे तेज अरु विभूति करके संपन्न तुझको दृष्टि आते हैं अरु सुनता है सो अपने पुरुषार्थ करि भये हैं. अरु जो महानिकृष्ट सर्प कीट आदिक तुझको दृष्टि आ हैं तिनने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है तब ऐसे हुए हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुषार्थको आश्रय कर नहीं तो सर्प कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होवेगा. जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्यागा है और किसी दैवका आश्रय

धरा है, सो महामूर्ख है काहेते ? कि, यह वार्त्ता व्यवहा
भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम किये बिना किसी प
र्थकी प्राप्ति नहीं होती, तो परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवे
ताते दैवको त्याग करि संतजन अरु सत्‌शास्त्रोंके अ
सार यत्न करो परमपद पानेके निमित्त जो दुःखनतें मु
होवे. हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी हैं सो अव
धरकर दैत्यहूको मारता है अरु अपर चेष्टा भी करता
परंतु पापका स्पर्श उसको नहीं होता काहेते ? जो अ
पुरुषार्थ करके अक्षर पदको प्राप्त हुआ है, तुम भी पु
षार्थका आश्रय करो अरु संसार समुद्रको तरिजावो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थउपमावर्णनं नाम,सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ परमपुरुषार्थवर्णन ।

वशिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह जो दैव शब्द है
मूर्खोंने कल्पा है, कि दैव हमारी रक्षा करैगा हमको दै
आकार कोऊ दृष्टि नहीं आवता, न कोऊ दैवका
है, न दैव कछु करताही है, मूर्ख लोग दैव दैव परे
हैं. अपर दैव कोऊ नहीं, इसका पूर्वका कर्म ही दैव
हे रामजी ! जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थका
किया है, अरु दैवपरायण हुए हैं कि दैव हमारा कल

करैगा सो मूर्ख हैं काहेते ? जो अग्निविषे यह जाय पडे अरु दैव इसको निकासि लेवे तब जानिये कि, कोऊ दैव भी है, सो तो है नहीं. अरु जो दैव करता है, तो यह स्नान, दान, भोजन आदिहूका त्याग करि तूष्णीं होय बैठे, आपही दैव कर जावैगा, सो भी इसके किये बिना नहीं होता, ताते और दैव कोऊ नहीं अपना पुरुषार्थ ही कल्याण कर्त्ता है.

हे रामजी ! जो इसका किया कछु नहीं होता अरु दैवही करनेहारा होता तो शास्त्र अरु गुरुका उपदेश भी नहीं होता सो सत्शास्त्रके उपदेश करके अपने पुरुषार्थद्वारा इसका वांछित पदकी प्राप्ति होती है, ताते और जो कोऊ दैव शब्द है सो व्यर्थ है. इस भ्रमको त्याग करके संत अरु शास्त्रहूके अनुसार पुरुषार्थ करै तब दुःखनते मुक्त होवेगा, हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं इसका पुरुषार्थ जो है स्पंद, सोई दैव है.

हे रामजी ! जो कोऊ और दैव करनेहारा होता तो जब उस शरीरको त्यागता है अरु शरीर जब नाश होजाता है क्रिया शरीरसों कछु नहीं होती काहेते ? जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है तब दैव होता तो सभी शरीरसों चेष्टा करवाता सो तो चेष्टा कछु नहीं होती ताते जानना कि, दैव शब्द व्यर्थ है. हे रामजी ! पुरुषार्थकी वार्ता है सो अज्ञानी जीवोंको भी प्रत्यक्ष है कि

अपने पुरुषार्थ बिना कछु होता नहीं गोपाल भी जानता
जो मैं गौवोंको चराऊँ नहीं तो भूखी ही रहैंगी ताते अ
दैवके आश्रय बैठि नहीं रहती आप ही चराय ले आवता

हे रामजी ! और दैवकी कल्पना भ्रम करके परे
करते हैं, अपर दैव तो हमको कोऊ दृष्टि नहीं आव
हस्त, पाद, शरीर दैवका कोऊ दृष्टि नहीं आवता अ
पुरुषार्थ करि सिद्धता दृष्टि आती हैं. अरु जो को
आकारत रहित दैव कल्पिये तो नहीं बनता, काहे
कि निराकार अरु साकारका संयोग कैसे होवे?
रामजी ! और दैव कोऊ नहीं, अपना पुरुषार्थ दैव
है. जो राजा ऋद्धि सिद्धि संयुक्त भासता है, सो भी अ
पुरुषार्थ करि हुए हैं.

हे रामजी ! यह जो विश्वामित्र है याने दैव श
दूरहीते त्याग किया है सो भी अपने पुरुषार्थ क
क्षत्रियते ब्राह्मण हुए हैं अरु अपर जो बडे विभूति
हुए हैं सो भी अपने पुरुषार्थ करि दृष्टि आवते हैं.
रामजी ! जो दैव पढे बिना पंडित करे तो जानिये दै
किया सो तो पढे बिना पंडित कहूँ नहीं होता अरु
अज्ञानीते ज्ञानवान् होते हैं सो भी अपने पुरुषार्थ
होते हैं ताते अपर दैव कोऊ नहीं मिथ्या भ्रमको त्या
करि संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार संसार
तरनेका प्रयत्न करो तेरे पुरुषार्थ बिना अपर दैव

नहीं जो अपर दैव होता तो बहुत बेर क्रिया बल भी अपनी क्रियाको त्यागके सोई रहता आप दैवही पडा करेगा सो ऐसे तो कोऊ नहीं करता ताते अपने पुरुषार्थ बिना कछु सिद्ध नहीं होता अरु जो इसका किया कछु न होता तो पाप करनेहारे नरक न जाते अरु पुण्य करनेहारे स्वर्ग न जाते परंतु पाप करनेहारे नरकमें जाते हैं अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हैं ताते जो कछु प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थ करि होता है.

हे रामजी ! जो कोऊ अपर दैव करता है ऐसा कहै तिसका शिर काटिये अरु दैवके आश्रय जीवता रहै तो जानिये कि, कोऊ दैव है सो तो जीवता कोऊ रहता नहीं ताते दैव शब्दका मिथ्या भ्रम जानके संतजन अरु सत्शास्त्रहूके अनुसार अपने पुरुषार्थ करि आत्मपदविषे स्थित होवो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९ ।

राम उवाच—हे भगवन् ! सर्व धर्मवेत्ता ! तुम कहते हो कि, और दैव कोई नहीं परन्तु ब्राह्मण भी दैव हैं ऐसा कहते हैं और दैवका किया सब कछु होता है अरु सुख दुःखका देनेहारा दैव है यह लोकाविषे प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मैं तुझको ऐसे कहता हूं जो तेरा भ्रम निवृत्त होजावे इसहीका कम किया हुआ है शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है सो दैव कहो पुरुषार्थ कहो अपर दैव कोऊ नहीं और कर्त्ता क्रिया कर्म आदिकहू विषे तो दैव कोऊ नहीं और कोऊ दैवका स्थान नहीं रूप नहीं तो अपर दैव क्या कहिये. हे रामजी ! मूर्खहूके परचावने निमित्त दैव शब्द कहा है जैसे आकाश शून्य है तैसे दैवभी शून्य है.

श्रीराम उवाच-हे भगवन् ! सर्व धर्महूके वेत्ता ! तुम कहते हो कि अपर दैव कोऊ नहीं सो आकाशकी नाईं शून्य है सो तुम्हारे कहने परभी दैव सिद्ध होता है तुम कहते हो की इसके पुरुषार्थका नाम दैव है अरु जगत् विषे भी दैव शब्द प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मैं ऐसे तुझको कहता हूं जिसकर दैव शब्द तेरे हृदयसों उठि जावे अर्थ यह कि शून्य हो जावे दैव नाम अपने पुरुषार्थका है अरु पुरुषार्थ नाम कर्मका अरु कर्म नाम वासनाका है वासना मनते होती है अरु मनरूपी पुरुष है जिसकी वासना करता है सोई इसको प्राप्त होता है जो गांवको प्राप्त होनेकी वासना करता है सो गांवको प्राप्त होता है पत्तनकी वासना करता है सो पत्तनको प्राप्त होता है ताते अपर दैव कोऊ नहीं पूर्वका जो शुभ अथवा

अशुभ दृढ पुरुषार्थ किया तिसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है और तिसहीका नाम दैव है.

हे रामजी ! तुम विचारकर देखो कि, अपना पुरुषार्थ कर्महूते भिन्न नहीं तो दुःख देनेहारा अरु लेनहारा दैव कोऊ नहीं हुआ क्योंकि यह जो पापकी वासना करता है अरु शास्त्रविरुद्ध कर्म करता है सो किसकरके करता है ? पूर्वका जो इसका दृढ पुरुषार्थ कर्म तिसकरके यह पाप करता है अरु जो पूर्वका पुण्यकर्म किया होता है तो यह शुभ मार्गविषे विचरता है.

श्रीराम उवाच–हे भगवन् ! जो पूर्वकी दृढ वासनाके अनुसार यह विचरता है कि मैं क्या करूं ? मुझको पूर्वकी वासनाने दीन किया है अब मुझको क्या कर्त्तव्य है ?

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो कछु इसकी पूर्वकी वासना दृढ हो रही है तिसके अनुसार यह विचारणा होती है अरु जो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थ करके पूर्वके मलीन संस्कारको शुद्ध करता है तिसके मल दूर हो जाते हैं सत्शास्त्र अरु ज्ञानहूके वचन अनुसार दृढ पुरुषार्थ करो तब मलीन वासना दूर हो जावेगी.

हे रामजी ! पूर्वके मलीन कर्म कैसे जानिये अरु शुभकर्म कैसे जानिये ? सो श्रवण करिये जो चित्त विषयकी ओर धावै अरु शास्त्र विरुद्ध मार्गकी ओर जावे अरु शुभकी ओर न धावे तो जानिये कि, पूर्वका कर्म

कोई मलीन है; अरु जो संतजन अरु सत्‌शास्त्रहूके अनु-
सार चेष्टा करे अरु संसारमार्गते विरक्त होवे तब जानिये
कि पूर्वका कर्म शुद्ध है; ताते हे रामजी ! तुमको दोनो
करके सिद्धता है; जा पूर्वका संस्कार शुद्ध है ताते तेरा
चित्त शीघ्रही सत्संग अरु सत्‌शास्त्रहूके वचनको ग्रहण
करलेवेगा, अरु शीघ्रही तुमको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी
अरु जो तेरा चित्त इस शुभमार्गविषे स्थिर नहीं होसके
तो दृढ पुरुषार्थ करि संसारसमुद्रते पार होवे.

हे रामजी! तू चेतन है जड तो नहीं अपने पुरुषार्थका
आश्रय करहु मेरा भी यही आशीर्वाद है. जो तुम्हारा
चित्त शीघ्रही शुभ आचरण विषे स्थित होवे अरु ब्रह्म
विद्याका जो सिद्धांत सार है तिसविषे स्थित होवे. हे
रामजी ! श्रेष्ठ पुरुषभी वही है. जिसका पूर्वका संस्कार
यद्यपि मलीनभी था, परंतु संत अरु सत्‌शास्त्रके अनुसार
दृढ पुरुषार्थ करके सिद्धताको प्राप्त भया है. अरु जो
मूर्ख जीव है तिसने अपना पुरुषार्थ त्याग किया है. ताते
संसारते मुक्त नहीं होते, पूर्वका जो कोऊ पाप कर्म किया
होता है तिसके मलीनता करके पापमें धावता है अपने
पुरुषार्थ त्यागनेते अंध होजाता है अरु विशेषकारि धावता
है. जो श्रेष्ठ पुरुष है तिसको यह कर्तव्य है–प्रथम तो
पाँचों इंद्रियां वश करनी, शास्त्र अनुसार तिनको वर्ता-
वनी; शुभवासना दृढ करनी; अशुभका त्याग करना

यद्यपि त्यागनी दोनों वासना हैं. प्रथम शुभ वासनाको इकट्ठी करनी, अरु अशुभका त्याग करना. जब शुद्ध वासना करके कषाय परिपक्क होवेंगे, अर्थ यह जो अंतःकरण जब शुद्ध होवेगा तिस हृदयविषे संत अरु शत्‌शास्त्रका जो सिद्धांत है तिसका विचार उत्पन्न होवेगा और ताते तुमको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवेगी. तिस ज्ञानद्वारा आत्माका साक्षात्कार होवेगा. बहुरि क्रिया ज्ञानका भी त्याग हो जावेगा. केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासेगा. ताते हे रामजी ! और सब कल्पनाका त्याग कर संतजन अरु सत्‌शास्त्रहूके अनुसार पुरुषार्थ करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १० ।

अथ वसिष्ठोत्पत्ति वसिष्ठोपदेशागमनवर्णन ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! मेरे वचनको ग्रहण करो, सो वचन बांधव जैसे हैं; बांधव कहिये जो तेरे परममित्र होवेंगे, अरु दुःखहूते तेरी रक्षा करेंगे. हे रामजी ! यह जो मोक्ष उपाय तुमको कहता हों तिसके अनुसार तू पुरुषार्थ करेगा तब तेरा परम अर्थ सिद्ध होवेगा. अरु यह चित्त जो संसारके भोगकी ओर धावता है तिस भोगरूपी खाडाविषे चित्तको गिरने मत देवो भोगको

विरस जानिके त्याग देवो; वह त्याग तेरा परममित्र होवेगा. अरु त्यागभी, ऐसा करो जो बहुरि भोगका ग्रहण न होय.

हे रामजी ! यह मोक्ष उपाय संहिता है. चित्तको एकाग्र करके इसको श्रवण कर तिसकरि परमानंदकी प्राप्ति होवेगी. प्रथम शम अरु दमको धारि अर्थ यह जो सम्पूर्ण संसारकी वासनाका त्याग करहु अरु उदारता करके तृप्त रहना इसका नाम शम है। अरु दम अर्थ यह जो बाह्य इंद्रियोंको वश करना. जब इसको प्रथम धारेगा तब परमतत्त्वका विचार आय उत्पन्न होवेगा. तिस विचारते विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवेगी, जिस पदको पाय करि बहुरि दुःख कदाचित् न होवेगा; अविनाशी सुख तुझको आय प्राप्त होवेगा. तातें जो कछु मोक्ष उपाय यह संहिता है तिसके अनुसार पुरुषार्थ करहु, तब आत्मपदको प्राप्त होवेगा. पूर्व जो कछु ब्रह्माजीने हमको उपदेश किया है, सो मैं तुमको कहता हूं.

राम उवाच—हे मुनीश्वर ! तुमको जो ब्रह्माजीने उपदेश किया था, सो किस कारण किया था अरु कैसे तुमने धारा ? सो कहो.

वसिष्ठ उवाच—हे रामचंद्र ! शुद्ध चिदाकाश एक है अरु अनंत है, अविनाशी है. परमानंदरूप है, चिदानंदस्वरूप है, ब्रह्म है. तिसविषे संवेदन स्पंदरूप होवे है सो विष्णु होइकर स्थित भई है, सो विष्णुजी कैसा है?

जो स्पंद अरु निस्पंदविषे एक रस है. कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त हुआ जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे शुद्ध चिदाकाशते स्पंद करके विष्णु उत्पन्न हुआ है,तिस विष्णुजीके स्वर्णवत् किरण नाभिकमलते ब्रह्माजी प्रगट भया है. तिस ब्रह्माजीने ऋषि मुनीश्वर सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न करी तिस मनोराज करि जगत्को उत्पन्न किया, तिस जगत्के कोनविषे जो जंबूद्वीप भरतखंड है तिसविषे मनुष्यको दुःखकरि आतुर देखि ब्रह्माजीको करुणा उपजी, जैसे पुत्रको देखि पिताको करुणा उपजती है.तब तिसके सुख निमित्त ब्रह्माजीने तप उत्पन्न किया कि सुखी होय; अरु आज्ञा करी कि, तप करो. तब तप करत भये; तिस तपकरि स्वर्गादिकहूको जाय प्राप्त होनेलगे; तिन सुखहूको भोगि करि बहुरि गिरहिं,तब दुःखी रहे ऐसे ब्रह्माजी देखि करि सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादन करतभये, तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी तिस धर्मकी प्रतिपादन करी लोकहूको सुख प्राप्त होनेलगे; तहां केतिक काल सुख भोग करि बहुरि गिरहिं; तब दुःखीके दुःखी रहे बहुरि ब्रह्माजीने दान तीर्थादिक पुण्य उत्पन्न करके उनको आज्ञा करी कि, इनके सेवने करि तुम सुखी होहुगे जब वह जीव उनको सेवने लगे. तब बडे पुण्य लोकहूको प्राप्त भये, अरु तिनके सुख भोगने लगे बहुरि केतिक काल अपने कर्मके अनु-

सार भोग भोगि गिरे, तब तृष्णाकरि बहुत सुख दुःखके अनुभव करते भये अरु दुःखकरि आतुर हुए, तब ब्रह्माजी देखत भया; जो जन्म अरु मरणके दुःख करि महादीन होते हैं, ताते सोई उपाय करिये, जिस करि उनका दुःख निवृत्त होवे.

हे रामचन्द्र ! ब्रह्माजी विचरते भया कि, इसका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नहीं होनेका; ताते आत्मज्ञानको उत्पन्न करिये, यह जो सुखी होवहिं, इस प्रकार विचार करि आत्मतत्त्वका ध्यान करता भया, आत्मतत्त्वके ध्यानते संकल्प किया; तिस ध्यानके करनेसे जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है तिसकी मूर्ति होकर मैं प्रगट भया. सो मैं कैसा हूँ ? ब्रह्माजीके समान हूँ जैसे उनके हाथविषे कमंडलु है, तैसे मेरे हाथविषे कमंडलु है. जैसे उनके कंठ विषे रुद्राक्षकी माला है तैसे मेरे कंठमें भी रुद्राक्षकी माला है, जैसे उनके ऊपर मृगछाला है तैसे मेरे ऊपर मृगछाला है इस प्रकार ब्रह्माजीका अरु मेरा समान आकार है, अरु मेरा शुद्धज्ञानी स्वरूप है. मुझे जगत् कछु नहीं भासता; सुषुप्तिकी नाईं जगत् मुझको भासता है, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि, इसको मैं जीवके कल्याण निमित्त उत्पन्न किया है अरु यह तो शुद्ध ज्ञान स्वरूप है अरु अज्ञान मार्गको उपदेश तब होवे जब कछु प्रश्न उत्तर होवे अरु तब मिथ्याका विचार होवे.

हे रामजी ! जीवहूके कल्याण निमित्त मुझको ब्रह्माजीने गोदमें बिठाया अरु शीशपै हाथ फेरा, तिसकरि मैं शीतल हो गया. जैसे चन्द्रमाकी किरणहू करि शीतलता होती है तैसे मैं शीतल भया. तब ब्रह्माजी मुझको जैसे हंसको हंस कहै. यों कहा—हे पुत्र ! जीवहूके कल्याण निमित्त एकमुहूर्त पर्यंत तुम अज्ञानको अंगीकार करहु. श्रेष्ठ पुरुष जो है सो औरहूके निमित्त भी अंगीकार करके आये हैं. जैसे चन्द्रमा बहुत निर्मल है परंतु श्यामताको अंगीकार किया है, तैसे तू भी एक मुहूर्त अज्ञानको अंगीकार कर.

हे रामजी ! इस प्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजीने शाप दिया कि " तू अज्ञानी होवेगा " तब मैंने ब्रह्माजीकी आज्ञा मानि शापको अंगीकार किया. तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आप था तिसते मैं अन्यकी नाईं होत भया; मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण होगई अरु मेरा मन जागि आया भाव अभाव रूप जगत् मुझको भासने लगा अरु आपको मैं वशिष्ठ अरु ब्रह्माजीका पुत्र यों जानता भया अरु नाना प्रकारके पदार्थ सहित जगत् जानता भया अरु तिनकी ओर चंचल होता भया, तब मैं संसार जालको दुःखरूप जानि करि ब्रह्माजीते पूछत भया. हे भगवन् ! यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है ? हे रामजी ! जब इस

प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया तब भली प्रक
मुझको उपदेश करत भया, तिस करि मेरा अज्ञान न
होगया, जैसे सूर्य उदय हुए तम निवृत्त होजाता
तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त होगया अरु मैं शुद्धता
प्राप्त भया. जैसे आदर्शको मार्जन करता है अरु शु
हो आवता है; तैसे मैं शुद्ध हुआ.

हे रामजी ! मैं ब्रह्माजीसे भी अधिक होत भया त
मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजीने आज्ञा करी हे पुत्र ! जंबूद्वी
भरतखंडमें जो तुझको सृष्टिपर्यंत विषे अधिकार है त
जाइकरि जीवनको उपदेश करहु जिसको संसा
सुखकी इच्छा होवे तिसको कर्म मार्गका उपदेश कर
तिसकरि स्वर्गादिक सुख भोगेंगे अरु संसारते वि
होवें और जिनको आत्मपदकी इच्छा होवे तिन
ज्ञान उपदेश करना; ताते तुम अब भूलोक विषे जा
हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हु
है, अब इस प्रकार मेरा आवना हुआ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोत्पत्ति तथा वासिष्ठोप-
देशागमनं नाम दशम सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ वसिष्ठोपदेशवर्णन।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! इस प्रकार पृथ्वीविषे मेरा आना भया, मैं कैसा हो? जाको आत्मज्ञानकी वांछा होवे सो पूर्ण करिवेके लिये ब्रह्माजी मुझको उत्पन्न करत भये.

राम उवाच—हे मुनीश्वर! तिस ज्ञानकी उत्पत्तिते अनंतर जीवनकी शुद्धि कैसे भई? सो कहो.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है तिसका स्वभाव रूप संवेदन स्फूर्ति है सो ब्रह्माजीरूप होकर स्थित भई है, जैसे समुद्र अपनी द्रवता करके तरंग रूप होता है तैसे ब्रह्माजी भया है. बहुरि सपूर्ण जगत्को उत्पन्न किया अरु तीनों काल उत्पन्न किये तब केता काल व्यतीत हुआ अरु कलियुग आया तिस करि जीवहूकी बुद्धि मलीन होगई अरु पापविषे विचरने लगे शास्त्र वेदकी आज्ञा मानते रहगये इस प्रकार धर्मकी मर्यादा छिप गई अरु पाप प्रगट भया जेती कछु राज-धर्मकी मर्यादा थी सो सब नष्ट होगई अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचरने लगे ताते कष्ट पावने लगे तिनको देखकर ब्रह्माजीको करुणा उपजी तिस दयाको धारि करि भूलोक विषे मुझको भेजा अरु कहा—हे पुत्र! जाय-कारि तुम धर्मकी मर्यादा स्थापन करो अरु जीववोंको शुद्ध उपदेश करो जिसको भोगहूकी इच्छा होवे

तिसको कर्मकांडका उपदेश करना और जप तप संध्या यज्ञादिकका उपदेश करना अरु जो संसा विरक्त हुए हैं अरु मुमुक्षु हैं जिनको परमपद पाने इच्छा है तिनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना.

हे रामचंद्र ! जिस प्रकार ब्रह्माजी मुझको आज्ञा भूमिलोक विषे भेजते भये तैसेई सनत्कुमार नारद कहते भये ! तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचा भये कि, जगत्को मर्यादा किस प्रकार होवे अरु शुभ मार्गविषे कैसे विचरहिं. तब हमने यह विचार कि प्रथम राज्यहूका स्थापन करना जो जीव तिन आज्ञानुसार विचरहिं. प्रथम दण्डकरता राज्य स्था किया सो कैसा राजा ? जो बडा वीर्यवान् अरु ते बडा उदार आत्मा भया तिस राजाहूको हम आ त्मिक विद्या उपदेशकरि तिसकरि परमपदको प्राप्त जो परमानन्दरूप अविनाशी पद तिस ब्रह्मविद्याका देश तिसको भया तब सुखी भये इस कारणते ब्रह्म द्याका नाम राजविद्या है तब हमहूँने वेद शास्त्र पुराणकरि धर्मकी मर्यादा स्थापन करी सो जप यज्ञ दान स्नान आदिक क्रियाको प्रगट कीनी. अरे जी तुम इसके सेवन करि सुखी होगे तब सब फलको करि तिनको सेवने लगे तामें कोऊ विरला निरहं हृदयशुद्धताके निमित्त कर्म करते थे.

हे रामजी ! जो मूर्ख हैं सो कामनाके निमित्त मनमें फूलके कर्म करते हैं सो घटीयंत्रकी नाईं भटकते फिरते हैं सो कबहू ऊर्ध्व अरु कबहूँ नीचे आते हैं और जो निष्काम करते हैं तिसका हृदय शुद्ध होता है फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारी होते हैं ताके उपदेशद्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होती है इस प्रकार सो जीवन्मुक्त हुए हैं कई राजा प्रसिद्ध हुए हैं सो राजकी परंपरा चलावता हमारे उपदेशद्वारा ज्ञानको प्राप्त भये हैं और राजा दशरथहू ज्ञानवान् भया है और तूभी इसी दशाको आयके प्राप्त हुआ है सो तू सबसे श्रेष्ठ हुआ है जैसे तू विरक्त आत्मा हुआ है, तैसे आगेहूं स्वाभाविक विरक्त आत्मा भये हैं सो स्वभावकर देहशुद्धि कर हुए हैं इसी कारणते तू श्रेष्ठ है जो कोऊ अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है तिस कर विरक्तता उपजती है सो तुझको नहीं भई तुझको सब इंद्रियके विषय विद्यमान हैं, तैसे होते तेरेको वैराग्य हुआ है ताते तू श्रेष्ठ है.

हे रामजी जो मशान आदिक कष्टके स्थान कहे ता ठिकाने सबको वैराग्य उपजाता है " जो कछु नहीं मरजाना है " तिसमैं जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है सो वैराग्यको दृढ कर रखता है और जो मूर्ख है सो फिर विषयमें आसक्त होजाता है ताते जिनको अकारण वैराग्य उपजता है सो श्रेष्ठ है. हे रामजी ! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो

अपने वैराग्य अरु अभ्यासके बल करके संसारबंध
मुक्त होजाते हैं जैसे हस्ती बंधनको तोरके अपने
निकस जाता है तब सुखी होता है तैसे वैराग्य अ
सके बलकर बन्धनते ज्ञानी मुक्त होता है.

हे रामजी ! यह संसार बडा अनर्थरूप है जिस पु
षने अपने पुरुषार्थ करके बन्धनको नहीं तोरा तिन
राग द्वेषरूपी अग्नि जरावत है अरु जिन पुरुषोंने अ
पुरुषार्थ करके शास्त्र और गुरुको प्रणाम करके
साधा है सो उस पदको प्राप्त भये हैं तिनको आध्या
त्मिक आधिदैविक आधिभौतिक ताप जलाय सक
नहीं जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षाके होते वनको दावा
जलाय नहीं सकता तैसे ज्ञानीको आध्यात्मिक
ताप कष्टको नहीं देते.

हे रामजी ! जिन श्रेष्ठ पुरुषोंने संसारको विरस
कर त्याग किया है तिनको संसारका पदार्थ गिराय
सकता अरु जो मूर्ख हैं तिनको गिराय देते हैं जैसे अं
चलत पवनके वेगसों वृक्ष गिरजाते हैं परन्तु कल
गिरता नहीं तैसे हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष वही है जि
संसार विरस होगया है सो केवल आत्मतत्त्वकी
करके तिसमें परायण भये हैं तिनकोही ब्रह्मवि
अधिकार है सोई उत्तम पुरुष है, हे रामजी ! तूभी
उज्ज्वल पात्र है जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोते हैं

तुमको मैं उपदेश करता हों और जिसको भोगकी इच्छा है और संसारकी ओर यत्न करता है सो पशुवत् है श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसको संसार तरनेका पुरुषार्थ होता है.

हे रामजी! प्रश्न तिनके पास करिये जिनको जानिये कि मेरे प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थ हैं और जिसमें उत्तर देनेकी सामर्थ्य दीखनेमें नहीं आवै तिससों प्रश्न करना नहीं और उत्तर देनेको जो समर्थ देखिये और तिसके वचनमें भावना न होय तब भी तिससों प्रश्न न करिये काहेते कि दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है और गुरु भी उपदेश तिनको करता है जो संसारते विरक्त होय अरु केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा होवे अरु आस्तिक भाव होवे ऐसा पात्र देखके उपदेश करे हे रामजी! जो गुरु अरु शिष्य दोनों उत्तम होते हैं तब वचन शोभते हैं तुम उपदेशका शुद्ध पात्र हो, जेते कछु गुण शिष्यके शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सब तेरेमें प्राप्त हैं और मैं उपदेश करनेमें समर्थ हों ताते कार्य्य शीघ्र होवेगा.

हे रामजी! शुभ गुण साथ तेरी बुद्धि निर्मल हो रही है मेरा जो सिद्धांतका सार वचन है सो तेरे हृदयमें प्रवेश कर रहैगा जैसे उज्ज्वल वस्त्रमें केशरका रंग शीघ्र चढ जाता है तैसे तेरे निर्मल चित्तमें उपदेशका रंग लगैगा जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिलते हैं तैसे तेरी बुद्धि शुभ गुण कर खिल आई है हे रामजी! जो कछु शास्त्रका सिद्धांत आत्मतत्त्व मैं तुमको कहता हों तिसमें

तेरी बुद्धिं शीघ्र प्रवेश करैगी जैसे निर्मल जलमें सूर्य
कांति प्रवेश करती है तैसे तेरी बुद्धि आत्मतत्त्व
शुद्धता करके प्रवेश करैगी.

हे रामजी ! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोडके प्रार्थना क
ताहूँ जो कछु मैं तुझको उपदेश करता हों तिस
तुम आस्तिक भावना करियो, जो इन वचन कर
कल्याण होवेगा, अरु जो तुमको धारणा न होवे तो
मत करना जो शिष्यको गुरुके वचनमें आस्तिक भाव
होती है, तिसका शीघ्र कल्याण होता है, ताते मेरे व
नमें आस्तिक भावना करियो और जिसकर तू आ
पदको प्राप्त होवेगा सो मैं कहता हों प्रथम तो यह
जो अज्ञानी जीवनमें असत्य बुद्धि है तिनका संग त्या
कर अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपाल हैं तिनसों मि
भावना कर और जब तिनसों मित्रभाव होयगा तब
मोक्षद्वारमें पहुँचाय देयँगे तब आत्मदर्शन तुमको हो
सो द्वारपालके नाम श्रवण कर-शम संतोष वि
सत्संग यह चारों द्वारपाल हैं जिस पुरुषने इनको
किया है तिसको यह शीघ्र मोक्षरूपी द्वारके अन्तर
देते हैं हे । रामजी ! जो चारों वश न होवें तो तीनों
वश कर अथवा दोको वश कर ले अथवा एक
वश कर जो एक वश होवेगा तो चारोंई वश हो जा
इन चारोंका परस्पर स्नेह है जहां एक आता है
चारों आयके रहतें हैं जो पुरुषने इनसे स्नेह किया

सो सुखी भया है और जिनने इनका त्याग किया है सो दुःखी है हे रामजी ! यद्यपि प्राणका त्याग होवे तो भी एक साधन तो बल करके वश करना एकके वश कियेते चारोंही वश होयँगे अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणने आयके निवास किया है. जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आये हुए हैं तैसे संतने अरु शास्त्रने जो निर्मल गुण कहे हैं सो सब तेरेमें प्राप्त हैं. हे रामजी ! अब तू मेरे वचनका अधिकारी भया है, जैसे चन्द्रमाके उदयते चंद्रमुखी कमल खिल आते हैं तैसे शुभ गुण कर तेरी बुद्धि खिल आई है.

हे रामजी ! सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण कियेते शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होताहै ताते श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसारको विरस जानके त्याग किया है. अरु संत अरु सत्शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपद पानेका यत्न करताहै, सो अविनाशी पदको प्राप्त होता है. और जो संसारका त्याग करके संसारकी ओर लगे हैं सो महामूर्ख जड हैं. जैसे जल शीतलता करके बर्फ हो जाता है, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके आत्ममार्गते जड होइ रहे हैं, हे रामजी ! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहताहै सो कदाचित् शांति नहीं पाता अरु आनंदसों कबहुँ प्रफुल्लित नहीं होता अरु आशा करकें सदा संकुचित रहता है. हे रामजी ! आत्मपदके

साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशाही जैसे सूर्यके आ
मेघका आवरण होता है, तैसे आत्मतत्त्वके आगे दु
शाका आवरण है. जब आशारूपी आवरण दूर होवे; त
आत्मपदका साक्षात्कार होवै. हे रामजी ! आशा तव
होवे जब संतकी संगती अरु सत्‌शास्त्रका विचार हो

हे रामजी ! संसाररूपी एक बडा वृक्ष है सो बो
रूपी खड्ग कर छेदा जाता है. सत्संग अरु सत्‌शास्त्र
तीक्ष्ण बुद्धि होवे, तब संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट
जाता है. जब शुभ गुण होते हैं, तब आत्मज्ञान आय
विराजता है; जहाँ कमल होते हैं तहाँ भौंरे आयके स्थि
होते हैं तब शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहता है. हे राम
शुभ गुणरूप पवन कर जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त हो
है तब आत्मरूपी चंद्रमाका साक्षात्कार होता है
चंद्रमाके उदय हुए आकाश शोभता है तैसे आत्म
साक्षात्कार हुए तेरी बुद्धि खिलैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेशो नाम
एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तत्वज्ञमाहात्म्यवर्णन ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अब तू मेरे वचनक
अधिकारी है–काहेते कि, तप वैराग्य विचार संतो
आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रने कहे हैं सो
तेरेमें प्राप्त हैं. ताते तू मेरे वचनको सुन सो रज

गुणको त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होता है, सो दोऊका त्याग करके सुन. जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सब कर तू संपन्न है, अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सब मेरेमें हैं. जैसे रत्नाकर समुद्र संपन्नहै तैसे मैं सम्पन्न हों ताते मेरे वचनका तू अधिकारी है और मूर्खको मेरे वचनका अधिकार नहीं. हे रामजी ! जैसे चंद्रमाके उदयते चंद्रकांत मणि द्रवीभूत होती है तब तामेंते अमृत वरसताहै और पत्थरकी शिला है तिनते द्रवीभूत नहीं होताहै तैसे जो जिज्ञासु होताहै तिसको परमार्थ वचन लगता है अरु अज्ञानीको नहीं लगता. हे रामजी ! शिष्य तो शुद्ध पात्र होवे अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान् न होवे तो उसको आत्माका साक्षात्कार नहीं होवे, जैसे चंद्रमुखी कमालिनी निर्मल होय, अरु चंद्रमा न होय तब प्रफुल्लित नहीं होती. तैसे ताते तू मोक्षका पात्र है. अरु मैं भी परमगुरु हों मेरे उपदेश कर तेरा अज्ञान नष्ट होय जावेगा. मैं मोक्षका उपाय कहता हों जब तिसको तू भले प्रकार विचारेगा, तब जेती कछु मलिन मनकी वृत्ति हैं तिनका अभाव होजायगा; जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मन्दराचल पर्वत जलजाता है, ताते हे रामजी ! वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनको अपने विषे लीन कर

शांतात्मा होवहु. तैंने बालकावस्थासों लेकर अभ्या
कर रक्खा है ताते मन उपशम पायके आत्मपदको प्रा
होवेगा. हे रामजी ! सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा जो आत्म
पद पाया है. सो सुखी भये हैं फिर तिनको दुःख नहीं
लगता. काहेते? जो दुःख देहाभिमानकर होता है सो देहका
अभिमान तो उनने त्याग दिया है अरु देहका आत्म
करके बहुरि ग्रहण नहीं करता ताते सुखी रहता है
हे रामजी ! जिनने आत्मबल धरके विचारद्वारा आत्म
पदको पाया है, सो अकृत्रिम आनन्दकर सदा पूर्ण है; स
जगत् तिसको आनंदरूप भासता है अरु जो असम्य
ग्दर्शी है तिनको जगत् अनर्थरूप भासता है. हे रामजी
संसरना रूप जो यह संसार सर्प है सो अज्ञानीके हृदय
दृढ होगया है सो योगरूपी गारुड मंत्र करके न
होजाता है अन्यथा नहीं होता और सर्पका विष है
एक जन्ममें मारता है. अरु संसरनरूप जो विषे है ति
करके अनेकजन्म पायके मरता चला आता है, शांति
वान् कदाचित् नहीं होता.

हे रामजी ! जिन पुरुषोंने सत्संग अरु सत्शास्त्र
वचनद्वारा आत्मपदको पाया है सो आनंदित भये हैं
अरु अंतर्बाहिर सब जगत् इनको आनंदरूप भासता
अरु सब क्रिया करनेमें आनंद विलास है और जिन
सत्संग अरु सतशास्त्रका विचार त्यागा है अरु संसार

सन्मुख हैं; तिसकर तिनको संसार अनर्थरूप है सो ऐसा दुःख देता है—जैसे सर्पके दंशते दुःखी होते हैं अरु शस्त्र कर घायल होते हैं, अरु अग्निमें पारेकी नाई जलत हैं, अरु जेवरीके साथ बद्ध होते हैं अरु अधंकूपमें गिरनेते कष्ट पाते हैं तैसे संसारमें मनुष्य दुःख पाते हैं. हे रामजी! जिन पुरुषोंनें सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा आत्मपदको नहीं पाया सो ऐसे कष्ट पाते हैं जो नरकरूपी अग्निमें जरते हैं अरुचिके विष पीते हैं पाषाणकी वर्षा कर चूर्ण होते हैं, कोल्हूमें पीस डारते हैं, अरु शस्त्र साथ कटते हैं, इत्यादिक जो बडे कष्ट हैं सो तिनको प्राप्त होते हैं. हे रामजी! ऐसा दुःख कोई नहीं? जो इस जीवको प्राप्त नहीं होता, आत्माके प्रमादसों सब दुःख होते हैं. अरु जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानते हैं सो चक्रकी नाईं चंचल है, कबहूं स्थिर नहीं रहते सतमार्गको त्याग कर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादुःखको प्राप्त होते हैं. अरु जिस पुरुषने संसारको विरस जाना है और पुरुषार्थकी तरफ दृढ भये हैं तिनको आत्मपदकी प्राप्ति होती.

हे रामजी! जिन पुरुषनको आत्मपदकी प्राप्ति भई है तिनको संसार दुःख नहीं होता; और तिनके दुःख जो नष्ट नहीं होते तो ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोऊ नहीं करता. जो अज्ञानी है तिनको संसार दुःखरूप है. अरु ज्ञानीको सब जगत् आनंदरूप है; अपने आपुई

है उनको भ्रम कोई नहीं रहता. हे रामजी ! ज्ञानवा नमें नाना प्रकारकी चेष्टा भी दृष्टि आती है तौ भी सदा शान्तरूप है अरु आनन्दरूप है. संसारके दुःख कोई नहीं स्पर्श कर सकता, काहेते कि तिनने ज्ञानरूपी कवच पहिरा है.

हे रामजी ! ज्ञानवान्को भी दुःख होता है, बडे बडे ब्रह्मर्षि अरु राजर्षि बहुत ज्ञानवान् भये हैं सोहू दुःखको प्राप्त होते हैं परन्तु दुःखसों आतुर नहीं होते, क्यों कि जो ज्ञानवान्‌न ज्ञानका कवच पहिरा है; ताते कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनंदरूप है. जैसे ब्रह्मा विष्णु, रुद्र नानाप्रकारकी चेष्टा करते और जीवको दृष्टि आवते हैं अरु अंतरसे सदा शांतरूप हैं, इस प्रकार और जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं सो शांतरूप हैं ताको कर्त्ताका अभिमान कोऊ नहीं फुरता. हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो मेघ है, तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है, सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट होजाता है, ताते स्वरूपत्ताको प्राप्त होवै है, अरु सदा आनंदकर पूर्ण है; हे रामजी ! जो कछु क्रिया करते हैं, सो तिनके विलासरूप है अरु सब जगत् आनंदरूप है, अरु शरीररूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व और मनरूपी रस्सा तासों अश्वको खैंचता है अरु बुद्धिरूपी रथवाही है, तिस रथमें यह पुरुष बैठता है अरु इंद्रियरूपी अश्व इसको खोटे मार्गमें

डारते हैं अरु ज्ञानवान्‌को इंद्रियरूपी अश्व हैं सो ऐसे हैं कि, जहां जाते हैं तहां आनंदरूप हैं किसी ठौरमें खेद नहीं पाता; सब क्रियामें उनको विलास है; सर्वदा आनंद कर तृप्त रहते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३ ।

अथ शमवर्णन ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इसी दृष्टिका आश्रय कर जो हृदय पुष्ट होवे, संसारके इष्ट अनिष्ट कर्मकर चलाय-मान न होवे, जिस पुरुषको इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है सो परम आनंदित भये हैं; शोकके कर्त्ता नहीं हैं, न याचना करते हैं, उपाधिते रहित परम शांत-रूप अमृत कर पूर्ण होय रहे हैं सो पुरुष नाना प्रकारकी चेष्टा करते दृष्टि आते हैं परन्तु कछु नहीं करते जहाँ उनके मनकी वृत्ति जाती है तहां आत्मसत्ता भासती है सो आत्मानन्दकर पूर्ण होय रहे हैं, जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृतकरि पूर्ण रहता है, तैसे ज्ञानवान् परमा-नंद करि पूर्ण रहता है, हे रामजी ! यह जो मैंने तुमको अमृतरूपी वृत्ति कही हैं इसको जब जानेगा तब तुमको साक्षात्कार होवेगा. जब जिसको आत्मज्ञानकी प्राप्त होती है तब सर्वदुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे चंद्रमाके

मंडलमें अंधकार नहीं होता तैसे ज्ञानीको अशांति क-
हूं नहीं होती और जो कछु क्रिया करते हैं तिसमें दु:
पाता है; जैसे कंटककी वृक्षकी कंटककी उत्पत्ति होती
तैसे अज्ञानीको दुःखकी उत्पत्ति होती है.

हे रामजी ! इस जीवको मूर्खता करके बडे दुःख प्रा
होते हैं ऐसा अद्भुत दुःख और कोई नहीं, अरु कि
आपदा करके भी ऐसा दुःख नहीं होता; जैसा दु:
मूर्खता करके पाते हैं, ऐसा दुःख कोई नहीं, हे रामजी
हाथमें ठीकरा ले चंडालके घरकी भिक्षा ग्रहण करै अ
आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होवे तोभी और ऐश्वर्यते श्रे
है परन्तु मुर्खतासों जीवना व्यर्थ है तिस मूर्खताको दू
करनेको मोक्ष उपाय मैं कहता हों हे रामजी ! यह मो
उपाय परम बोधका कारण है; कछुक बुद्धि संस्का
होवे, अर्थ यह जो पद पदार्थके जाननेहारी होवे, अ
मोक्ष उपाय शास्त्रको विचारे, तो तिसकी मूर्खता न
हो जावेगी, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी जैसा आत्
बोधका कारण यह शास्त्र है तैसा और शास्त्र त्रिलो
विषे कोई नहीं. नाना प्रकारके, दृष्टांत सहित इतिहा
हैं जामें. तिसको जब विचारेगा तब परमानंदकी प्रा
होवेगा, अज्ञानरूपी तिमिर नाश करनेको ज्ञानरू
शलाका है जैसे अंधकारको सूर्यनाश करता है.

हे रामजी ! जिस प्रकार इसका कल्याण होता
सो श्रवण कर गुरु जो ज्ञानवान् है सो शास्त्रका उपदे

करै अरु अपने अनुभवसों ज्ञान पावे. जब गुरु अरु शास्त्र और अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें तब इसका कल्याण होवे जबलग अकृत्रिम आनंदको प्राप्त नहीं भया; तबलगि दृढ अभ्यास करे तिस अकृत्रिम आनंदको प्राप्त करनेहारा मैं गुरु हों, जीवमात्रका मैं परम मित्र हों, ऐसा अपर कोऊ नहीं हमारी संगति जीवको आनंद प्राप्त करनहारी है ताते जो कछु मैं कहता हों सो तू कर.

हे रामजी ! जो संसारके भोग हैं सो क्षणमात्र हैं; ताते इनको त्याग करहु, और विषयके परिणाममें दुःख अनंत हैं इनको दुःखरूप जानकर त्याग दे; अरु हम सरीखे ज्ञानवान्‌का संग कर, और हमारे वचनके विचारते तेरे सब दुःख नष्ट होजायँगे. हे रामजी ! जिस पुरुषने हमारे संग प्राप्ति करी है तिसको हमने आनंदके पदकी प्राप्ति कर दीनी है, जिस आनंदते ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं और ज्ञानवानहू आनंदित भये हैं, सो निर्दुःख पदको प्राप्त भये हैं. हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई हैं. जाने हमारे साथ प्रीति कीनी है । जिसने संत अरु शास्त्रके विचारद्वारा दृश्यको अदृश्य जाना है, अरु निर्भय हुवा है आत्माका प्रमाद जीवको दीन करता है; अज्ञानीका हृदयरूपी कमल तबलग सकुचा रहता है;जबलग तृष्णा-रूपी रात्रि होती है; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है तब तृष्णारूपी रात्रि नष्ट हो जाती हैं अरु हृदयरूपी

कमल आनंद कर खिलि आते हैं. हे रामजी! जि
पुरुषने परमार्थमार्गको त्यागा है, अरु संसारके खान पा
आदि भोगमें मग्न हुआ है तिसको तू मेढुक जान. जै
कीचमें मेढुक परा शब्द करता है तैसा वह पुरुष
हे रामजी! यह संसार बडा आपदाका समुद्र है, ता
जो कोऊ श्रेष्ठ पुरुष है सो सत्संग अरु सत्‌शास्त्रके विचा
करके समुद्र उलंघता है, अरु परमानंदको प्राप्त होता
आदि अंत मध्य रहित निर्भय पदको प्राप्त होता है, अ
जो संसार समुद्रके सन्मुख हुआ है सो दुःखते दुःख
पदको प्राप्त भया है; कष्टते कष्ट, नरकते नरककी प्रा
होती हैं. जैसे विषको जान तिसका पान करता है
विष उसको नाश करता है, तैसे जो पुरुष संसार अस
जानके बहुरि संसारकी ओर यत्न करता है सो मृत्यु
प्राप्त होता है. हे रामजी! जो आत्मपदको कल्याण
जानताहै अरु आत्मपदके अभ्यासका त्यागकर सं
रकी ओर धावता है सो जैसे किसीके घरमें अग्नि ल
अरु तृणका घर अरु तृणकी शय्या करिके शयन कर
है, सो जैसे नाशका पावे तैसे जन्म मृत्युको प्राप्त हो
होगे, और संसारके पदार्थ देखकर राग दोषवान् हुए
सो सुख बिजुरीका चमक जैसा है, क्यों जो होयके मि
जावे स्थिर नहीं रहे तैसे संसारके दुःख आगमापायी
हे रामजी! यह संसार अविचार करके भासता है अ
विचार कियेते लीन होजाता है विचार कियेते लीन

न होता तो तुमको उपदेश करनेका काम नहीं था सो तो विचार कियेते लीन होजाता है इसी कारणते पुरुषार्थ चाहिये जैसे हाथमें दीपक होवे; अरु अंधकूपमें गिरे सो मूर्खताहै तैसे संसारके भ्रमके निवारणहारे गुरु शास्त्र विद्यमान हैं तिनकी शरण न आवै सो मूर्ख है. हे रामजी ! जो पुरुष संतकी संगती अरु सत्‌शास्त्रके विचारद्वारा आत्मपदको पायाहै सो पुरुष केवल कैवल्यभावको प्राप्त भये अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यको प्राप्त हुए हैं अरु संसार भ्रम तिनका निवृत्त होगया है.

हे रामजी ! यह संसार मनके स्मरणते उपजा है सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं. होना है अरु धन करके भी नहीं होना है प्रजा करके भी नहीं होना है; अरु तीर्थ अरु देवद्वार करकेभी नहीं होनाहै ऐश्वर्यकरके भी नहीं होना है, एक मनके जीतनेते कल्याण होता है.

हे रामजी ! जिसको ज्ञानी परमपद कहते हैं और जिसको रसायन कहते हैं. जिसके पायेते इसका नाश नहीं होय; अरु अमर होवे अरु सब सुखकी पूर्णता होवे इसका साधन समता अरु संतोष है. इनकर ज्ञान उत्पत्ति होता है सो आत्मज्ञानरूपी एक वृक्ष है तिसका फूल शांति है अरु स्थिति इसका फल है जिस पुरुषको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है सो शांतिमान् हुआहै, सो निर्लेप रहता है, जिसको संसारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं

होता है जैसे आकाशमें सूर्य उदय होता है तब जगत‍
क्रिया होती है फिर जब अदृश्य होताहै तब जगत‍
क्रिया भी लीन होजाती है. तिस क्रिया होने न हों
आकाश ज्योंका त्यों है तैसे ज्ञानवान् सदा निर्लेप है ति
आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र

हे रामजी ! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रको श्र
संयुक्त पढै अथवा सुनै तो वाही दिनसों मोक्षका भा
होय रहै अरु मोक्षके चार द्वारपाल हैं सो मैं तुम
कहता हों; सो इनमेंते एकहू जब अपने वश होय त
मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवे; सो चारोंका न
कहों सो सुन. हे रामजी ! यह शम इसको परम वि
मका कारण है, अरु यह संसार जो दीखता है सो म
थलकी नदीवत है इसको देखकर मूर्ख अज्ञानी रूपी
मृग है सो सुखरूपी जल जानकर दौरता है अरु
तिको नहीं प्राप्त होता. जब शमरूपी मेघकी वर्षा
तब सुखी होवे. हे रामजी ! शम सो परम आनन्द
अरु शम सो परमपद है और शिवपद है, जिस पुरु
शम पाया है सो संसारसमुद्रते पार हुआ है उसको
सो मित्र होजाते हैं. हे रामजी ! जब चन्द्रमा उदय हो
है तब अमृतकी कण फूटती हैं अरु शीतलता होती
तैसे जिसके हृदयमें शमरूपी चन्द्रमा उदय होता
तिसके सब ताप मिट जाते हैं अरु परमशांतिमान

है. हे रामजी ! यह शम देवताके अमृतसमान है वही परम अमृत है, शम करके इसको परम शोभा प्राप्त होता है जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाकी कांति परम उज्ज्वल होती है. तैसे शमको पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है, जैसे विष्णुके दो हृदय हैं सो एक तो अपने शरीरमें है दूसरा संतमें है, तैसे इसके दो हृदय होतेहैं एक अपने शरीरमें दूसरा शम भी इनका हृदय होता है ऐसा आनंद अमृतके पान कियेते हू नहीं होता अरु लक्ष्मीकी प्राप्तिते भी नहीं होता. जो आनंद शमवान्‌को होता है.

हे रामजी ! प्राणहुते भी प्रिय कोई होवे सो अन्तर्द्धान कर फिर प्राप्त होवे, तैसा आनंद नहीं होवे ऐसा आनंद शमवान्‌को होवे तिसके दर्शनकरभी आनंद प्राप्त होता है अरु ऐसा आनंद राजाको भी नहीं होता जो बाहरते श्रेष्ठ मंत्री होताहै अरु अंतरते सुन्दर स्त्रियां होती हैं तिनकरभी ऐसा आनंद नहीं होता जैसा आनन्द शम संपन्न पुरुषका होताहै. हे रामजी ! जिस पुरुषको शमकी प्राप्ति भईहै सो वंदन करने योग्य है अरु पूजने योग्य है जिसको शमकी प्राप्ति भई है तिसको उद्वेग नहीं आवे अरु लोकहूंते उद्वेग नहीं पावे उसकी क्रिया अमृत समान है। अरु वचन उसके अमृतकी नाईं मीठे हैं जैसे चंद्रमाकी किरण शीतल अरु अमृतरूप हैं सो सबको हृदयाराम है तैसे सत जनके वचन हैं जिस पुरुषको

शमकी प्राप्ति भई है तिसकी संगति जब इस जीवको प्राप्त होती है तब सब परम आनन्दित होते हैं.

हे रामजी! जैसे बालक माताको पायके आनंदित होताहै तैसे जिसको शमकी प्राप्ति भई है तिसका संग कर जीव अधिक आनंदवान् होता है. जैसे किसीका बांधव मुवा हुआ फिर आवे और उसको आनंद प्राप्त होवे तिसते भी अधिक आनंद शमसंपन्न पुरुषको पायके होताहै. हे रामजी! ऐसा आनंद चक्रवर्ती राज्यके पायेतेभी तिसको नहीं होता अरु त्रिलोकीका राज्य पायेते भी नहीं होता जिसको शमकी प्राप्ति भई है तिसके शत्रु भी मित्र होजाते हैं. तिसकर कछु भयभीत नहीं होता अरु सर्पका भय भी तिसको नहीं रहता सिंहका भय भी तिसको नहीं रहता और हू किसीका भय नहीं रहता सदा निर्भय शांतरूप रहता है. हे रामजी! जो कोई कष्ट आय प्राप्त होवे कालकी अग्नि आय लगै, तौ भी सो चलायमान नहीं होता. सदा शांतिरूप रहते हैं जैसे शीतलचांदनी चन्द्रमामें स्थित है तैसे जो कछु शुभ गुण अरु सम्पदा हैं सो सब शमवान्के हृदयमें आय स्थित होते हैं.

हे रामजी! जो पुरुष आध्यात्मकादि तापकर जलता है तिसको हृदयमें शमकी प्राप्ति होवे तब ताप मिट जाते हैं. जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा करके शीतल हो जाती है

तैसे उसका हृदय शीतल हो जाता है. जिसको शमकी प्राप्ति भई हैं सो सब क्रियामें आनंदरूप है. तिसको दुःख कोई नहीं स्पर्श करता जैसे वज्रशिलाको बाण वेध नहीं सकता तैसे जिस पुरुषने शमरूपी कवच पहिरा है उसको आध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं सकता वह सर्वदा शीतलरूप रहता है.

हे रामजी ! तपस्वी पंडित याज्ञिक धनाढ्यसों पूजा मान करने योग्य है. परंतु जिसको शमकी प्राप्ति भई है सो सबसे उत्तम है. सो सबसे पूजने योग्य है उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वको ग्रहण करती है अरु सब क्रियामें शोभत है. जिस पुरुषको शब्द स्पर्श रूप रस, गंध यह इन्द्रियके विषय इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष नहीं होता तिसको शांतात्मा कहते हैं. हे रामजी ! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता अरु आत्मानन्द कर पूर्ण है तिसको शांतिमान् कहते हैं. वाको संसारके शुभ अशुभ कर मलीनपना नहीं लगता सदा निर्लेप रहता है. जैसे आकाश सब पदार्थते निर्लेप है तैसे शांतिमान् सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी ! ऐसा जो पुरुष है सो इष्ट विषयकी प्राप्तिमें हर्षवान् होते नहीं अरु अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमें शोकवान् होते नहीं अरु अंतरते सदा शांत रहते हैं उसको कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता अपने आपमें सदा परमानंदरूप रहता है.

जैसे सूर्यके उदयहुए अंधकार नष्ट होजाता है तैसे शांतिके पाये सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं सदा निर्विकार रहते हैं

हे रामजी ! सो पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आते हैं परंतु सदा निर्गुणरूप हैं कोऊ क्रिया उनको स्पर्श नहीं करती जैसे जलमें कमल निर्लेप रहता है तैसे शांतिवान् सदा निर्लेप रहता है हे रामजी ! जो पुरुष बडे राज संपदाको पायकर अरु बडी आपदाको पायकर ज्योंका त्यों अलग रहता है सो शांतिमान् कहिये. हे रामजी ! जो पुरुष शांतिते रहित है तिसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेषकर तपता है अरु जिसको शांति प्राप्ति भई है सो अन्तर बाहिर शीतल है अरु सदा एक रस है जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है तैसे वह सदा शीतल रहता है वाके मुखकी कांति बहुत सुन्दर हो जाती है जैसे निष्कलंक चन्द्रमा होवे तैसे शांतिमान् पुरुष निष्कलंक रहता है हे रामजी ! जिसको शांति प्राप्ति भई है सो परमआनंदित हुआ है परमलाभ तिसको प्राप्त होता है ज्ञानी इसीको परमपद कहते हैं जिसको पुरुषार्थ करना है तिसको शांतिकी प्राप्ति करनी चाहिये. हे रामजी ! जैसे मैंने कहा है तिस क्रम करके शांतिको ग्रहण करो तब संसारसमुद्रके पार पहुँचोगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शमवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४।

अथ विचारनिरूपण।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अब विचारका निरूपण सुन, जब हृदय शुद्ध होता है तब विचार होता है अरु शास्त्रार्थ विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है हे रामजी ! अज्ञानरूपी वन है तिसमें आपदारूपी बेलिकी उत्पत्ति होती है तिसको विचाररूपी खड्ग करके काटैगा तब शांत आत्मा होवेगा अरु मोहरूपी हस्ती है सो जीवके हृदयकमलको खण्ड खण्ड कर डारता है अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें राग द्वेषकर छेदा जाता नहीं जब विचाररूपी सिंह प्रगटे तब मोहरूपी हस्तीका नाश करै फिर शांतात्मा होवे.

हे रामजी ! जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई है सो विचार अरु पुरुषार्थ कर भई है जो राजा होता है सो प्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है तिसकर राज्यको प्राप्त होता है बल बुद्धि अरु तेज चतुर्थ जो पदार्थका आगमन अरु पंचम पदार्थकी प्राप्ति होती है सो पाँचोंकी प्राप्ति विचारकर होती है अर्थ यह जो इंद्रियोंका जीतना अरु बुद्धि सो आत्मा व्यापिनी अरु तेज पदार्थका आगमन इनकी प्राप्ति विचारसों होती है हे रामजी ! जिस पुरुषने विचारका आश्रय लिया है सो विचारकी दृढता करके जिसकी वांछा करते हैं तिसको पावते हैं ताते

विचार इसका परममित्र है जो विचारवान् पुरुष है सो आपदामें मग्न नहीं होता जैसे तुंबी जलमें डूबती नहीं तैसे वह आपदामें डूबता नहीं हे रामजी ! वह विचार संयुक्त जो करता है देता है लेता है सो सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होती है धर्म अर्थ काम मोक्ष विचारकी दृढता करके सिद्ध होते हैं विचाररूपी कल्पवृक्ष है तिसमें जिसका अभ्यास होता है सोई पदार्थकी सिद्धिको पाता है

हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकर आत्मज्ञानको प्राप्त होहु जैसे दीपकसों कर पदार्थका ज्ञान होता है तैसे पुरुष विचारसों सत्य असत्यको जानता है असत्यको त्यागकर सत्यकी ओर यत्न किया है तिसको विचारवान् कहते हैं. हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रविषे आपदारूपी तरंग चलते हैं जो विचारवान् पुरुष है सो संसारके भाव अभावमें कष्टवान् नहीं होता है जो कछु विचार संयुक्त क्रिया होती है तिसका परिणाम सुख है जो विचार विना चेष्टा होती है तिसकर दुःख प्राप्त होता है. हे रामजी ! अविचाररूपी कंटकवृक्ष है तिससे दुःखरूपी कंटक पेड उत्पन्न होते हैं अरु अविचाररूपी रात्रि है तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी आय विचरती है जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि अरु तृष्णारूपी पिशाचनी नष्ट हो जाती है.

हे रामजी ! हमारा यही आशीर्वाद है कि तुम्हारे हृदयसों अविचाररूपी रात्रि नष्ट होहु विचाररूपी सूर्य

करके अविचारित संसार दुःखका नाश होता है जैसे बालक अविचारकरके अपनी परछैयाको बैताल कल्पके भयको पाता है अरु विचार कियेते भय नष्ट हो जाता है तैसे अविचार करके संसार दुःखको देता है और सत्शास्त्रको युक्तिकर विचार कियेते भय नष्ट हो जाता है हे रामजी ! जहाँ विचार है तहाँ दुःख नहीं है जैसे जहाँ प्रकाश नहीं तहाँ अन्धकार नहीं रहता है जहाँ प्रकाश नहीं तहाँ अन्धकार रहता है तैसे जहाँ विचार है तहाँ संसार भय नहीं है अरु जहाँ विचार नहीं तहाँ संसार भय रहता है अरु जहाँ आत्मविचार होता है तहाँ सुखको देनेहारे शुभगुण आय स्थित होते हैं जैसे मानससरोवरमें कमलकी उत्पत्ति होती है तैसे विचारमें शुभ गुणकी उत्पत्ति होती है जहाँ विचार नहीं तहाँ दुःखका आगम होता है.

हे रामजी ! जो कछु अविचारकर क्रिया करते हैं सो दुःखका कारण होता है जैसे चूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकासता है सो जहाँ इकट्ठी होती है तहाँ बेलिकी उत्पत्ति होती है तैसे अविचार कर यह पुरुष मृत्तिकारूपी पाप क्रियाको इकट्ठी करता है, तिसते आपदारूपी बेलि उत्पन्न होती है अरु अविचाररूपी घुनका खाया सूखा वृक्ष है तिसको सुखरूपी फल चाहते हैं तेऊ नहीं निसकते हैं सो अविचार तिसका नाम है

जिस करके शुभ क्रिया न होवे अरु जिसकर शास्त्रानु-
सार क्रिया न होवे, तिसका नाम नाम अविचार है.

हे रामजी ! विवेकरूपी राजा है, अरु विचाररूपी प्रजा
है, जहाँ विवेकरूपी राजा आता है तहाँ विचाररूपी
प्रजा तिनके साथ फिरती है; अरु जहाँ विचार रूपी प्रजा
आती है, तहाँ विवेकरूपी राजा भी आता है जो पुरुष
विचार करके संपन्न है सो पूजने योग्य है तिसको सब
कोऊ नमस्कार करते हैं. जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको सब
नमस्कार करते हैं तैसे विचारवानको सब नमस्कार
करते हैं. हे रामजी ! हमारे देखते देखते अल्पबुद्धि
विचारकी दृढताते मोक्षपदको प्राप्त भये हैं, ताते विचार
सबका परममित्र है. विचारवाला पुरुष अन्तर बाहिर
शीतल रहता है. जैसे हिमालय पर्वत अन्तर बाहिर
शीतल रहता है. तैसे वह भी शीतल रहता है देख
विचार करके ऐसे पदको प्राप्त होता है जो पद नित्य है
अरु स्वच्छ है अनन्त है परमानन्दरूप है, तिसको पाय-
कर तिसके त्यागकी इच्छा होती नहीं औरके ग्रहणकी
इच्छा नहीं होती है, उनको इष्ट अनिष्टविषे सब सम
हैं; जैसे तरंगके होनेमें अरु लीन होनेमें समुद्र सम
रहता है, तैसे विवेकी पुरुषको इष्ट अनिष्टविषे सम
रहती है अरु संसारभ्रम मिट जाता है; आधाराधेय
रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है.

हे रामजी ! यह जगत् अपने मनके मोहते उपजता है, अरु अविचार कर दुःखदायी दीखता है. जैसे अविचार करके बालकको बैताल भासता है; तैसे इसको जगत् भासता है जब ब्रह्म विचारकी प्राप्ति होवै तब जगत्भ्रम नष्ट हो जावे. हे रामजी ! जिसके हृदयमें विचार होता है, तहाँ समताकी उत्पत्ति होती; जैसे बीजते अंकुर निकल आता है तैसे विचारते समता हो जाती है. अरु विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है तिस ओर आनंददृष्टि आता है, दुःख कोऊ नहीं भासता है. जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आता है, तैसे विचारवान्को दुःख दृष्टिमें नहीं आता, जहां अविचार है तहां दुःख है; जहाँ विचार है तहाँ सुख है. जैसे अंधकारके अभाव हुए बैतालके भयका अभाव हो जाता है तैसे विचार कियेते दुःखका अभाव हो जाता है.

हे रामजी ! संसाररूपी दीर्घ रोग है तिसका नाशकरनेका विचार बडा औषध है. जिसको विचारकी प्राप्ति भई है, तिसके मुखकी कांति उज्ज्वल हो जाती है जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको उज्ज्वल कांति होती है तैसी विचारवान्को मुखकी उज्ज्वल कांति होती है. हे रामजी ! विचार करके इसको परमपदकी प्राप्ति होती है जिस करि अर्थसिद्धि होवै तिसका नाम विचार है अरु जिस करि अनर्थ सिद्धि होवे तिसका नाम अविचार है. अविचार

रूपी मदिरा है जो इसका पान करता है सो उन्मत्त
जाता है. जिसते शुभ विचार कोऊ नहीं हो आव
शास्त्रके अनुसार जो कछु क्रिया है, सो ताते नहीं हो
ताते अविचार करि अर्थसिद्धि नहीं होती.

हे रामजी ! इच्छारूपी रोग है सो विचाररूपी औ
करके निवृत्त होता है जिस पुरुषने विचारद्वारा परम
सत्ताका आश्रय लिया है, सो परम शांत होजाता
अरु हेय उपादेय बुद्धि तिसकी नहीं रहती सब दृश्य
साक्षी भूत होकर देखता है अरु संसारके भाव अभा
विषे ज्योंका त्यों रहता है. अरु उदय अस्तते र
निःसंग रूप है जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण है तैसे विच
वान् आत्मतत्त्व करि पूर्ण है; जैसे अंधा कूपविषे
हुआ हस्तके बल करि निकसता है; तैसे संसार
अंधकूपमें गिरा हुआ विचारके आश्रय होकर विचार
पुरुष निकसनेको समर्थ होता है.

हे रामजी ! राजाओंको जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त हो
है तब वह विचार करके यत्न करते हैं; तब कष्ट नि
हो जाता है. ताते तू विचार कर देख कि किसीको
प्राप्त होता है सो विचारते मिटता है तुम भी विचार
आश्रय करके सिद्धिको प्राप्त होहु; सो विचार इस
प्राप्त होता है जो वेद अरु वेदांतके सिद्धांतको श्रवण
पाठकर भले प्रकार विचारेगा तब विचारकी दृढता

आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा, जैसे प्रकाश कर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके वचनकर तत्त्वज्ञान होता है. जैसे प्रकाशमें अंधेको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती है तैसे गुरु शास्त्रसों जो विचार शून्य होवै तिसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी ! जो विचार-रूपी नेत्रकर संपन्न हैं सोई देखते हैं अरु विचाररूपी नेत्रते जो रहित हैं सो अन्धे हैं.

हे रामजी ! ऐसा विचारकर कि मैं कौन हूँ अरु यह जगत् कौन है अरु इसकी उत्पत्ति कैसे हुई है अरु लीन कैसे होता है ! इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचार कर, सत्यको सत्य जान अरु असत्यको असत्य जान. जिसको असत्य जाना है तिसका त्याग कर. अरु सत्यमें स्थित होय इसीका नाम विचार है इस विचार कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है. हे रामजी ! विचाररूपी दिव्य दृष्टि जिसको प्राप्ति भई है,तिसको सब पदार्थका ज्ञान होता है. विचारसो आत्मपद की प्राप्ति होती तिसको पायेते परिपूर्ण होता है . फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहीं होता ज्योंका त्यों रहता है. जबलग प्रारब्ध वेग होता है तबलग शरीरकी चेष्टा होती है जबलग अपनी इच्छा होवे तबलग शरीरकी चेष्टा करै; बहुरि शरीरको त्याग कर केवल शुद्धरूप होजाता है.

ताते हे रामजी ! ब्रह्मविचारको आश्रय कर संसार समुद्रको तरजा. जो कोऊ रोगी होता है सो एता रुदन

नहीं करता जेता रुदन विचार रहित पुरुष करता है जिसको कष्ट प्राप्त होता है सो भी एता रुदन नहीं करता है।

हे रामजी ! जो पुरुष विचारते शून्य है तिसको सब आपदा आय प्राप्त होती हैं; जैसे सब नदी स्वभावसे समुद्रमें आय प्रवेश करती हैं तैसे अविचारमें सब आपदा प्रवेश करती है.

हे रामजी ! कीचका कीट होना सो भला है; अरु गर्तका कंटक होना सो भी भला है; अरु अँधेरे बिलमें सर्प होना सो भला है. परंतु विचारते रहित होना सो भला नहीं. जो पुरुष विचारतें रहित है अरु भोगमें दौरताहै सो श्वान है.

हे रामजी ! विचारते रहित पुरुष बडे कष्टको पाता है. ताते एक क्षणहू विचारते रहित नहीं रहना विचारमें दृढ होकर निर्भय रहना कि मैं कौन हों अरु दृश्य क्या है; ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माको जानके दृश्यका त्याग करना. हे रामजी ! जो पुरुष विचारवान् है सो संसार भोगमें नहीं गिरजाता अरु सत्यमें स्थित होता है विचार जब स्थिर होता है तब तिसते तत्त्वज्ञान होताहै तत्त्वज्ञानते विश्राम होताहै; विश्रामते चित्तका उपशम होताहै अरु चित्तके उपशमते सब दुःख नाश होते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारानिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५ ।

अथ संतोषवर्णन।

वशिष्ठ उवाच—हे अविचार शत्रुके नाश कर्ता, हे रामजी ! जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है सो परम-आनंदित हुआ है अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसको तृणकी नाईं तुच्छ भासता है. हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान कियेते नहीं होता और जो आनंद त्रिलोकीके राज्य कर नहीं होता तैसा आनंद संतोषवान्‌को होता है.

हे रामजी ! इच्छारूपी रात्रि है अरु सो हृदयरूपी कमलको सकुचाय देती है और जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है तब इच्छा रूपी रात्रिका अभाव हो जाता है जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलता करके शोभता है तैसे संतोषवान्‌की कांति सुशोभित होती है.

हे रामजी ! त्रिलोकीके राजाकी इच्छा निवृत्त न भई तब सो दरिद्री है; अरु जो निर्धन है और संतोषवान् है सो सबका ईश्वर है संतोष तिसकाई नाम है श्रवण कर जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे अरु प्राप्त होइ इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष न धरे इसका नाम संतोष है संतोष सोई परमपद है संतोषवान् पुरुष सदा आनंद रूप है अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुआ है तिसको और इच्छा कछु नहीं स्फुरती अरु संतुष्टता कर तिसका हृदय प्रफुल्लित हुवाहै. जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल

प्रफुल्लित होताहै तैसे संतोषवान् प्रफुल्लित हो जाताहै, जो अप्राप्त वस्तु हैं तिनकी इच्छा नहीं करता अरु जो अनिच्छित प्राप्त भई हैं तिसको यथाशास्त्र क्रम करके ग्रहण करता है तिसका नाम संतोषवान् है. जैसे पौर्णमासीका चंद्रमा अमृत कर पूर्ण होताहै तैसे संतोषवान्का हृदय संतुष्टता करके पूर्ण होताहै. अरु जो संतोषते रहित है तिसके हृदयरूपी वनमें सदा दुःख अरु चिंतारूपी फूल फल उत्पन्न होतेही हैं.

हे रामजी ! जिसका चित्त संतोषते रहित है तिसको नानाप्रकारकी इच्छा होती है. जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होते हैं तैसे उपजती हैं. संतुष्टात्मा परम आनंदित है तिसको जगत्के पदार्थमें हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती. हे रामजी ! जैसा आनन्द संतोषवान्को होताहै तैसा आनंद अष्टसिद्धिके ऐश्वर्य करके भी नहीं होता अरु अमृतके पान कियेते भी नहीं होता. संतोषवान् सदा शांतिरूप है. और सदा निर्मल रहता है. इच्छारूपी धूर सर्वदा उडतीथी सो संतोषरूपी वर्षाकर शांत होगई है; तिस कारणते संतोषवान् निर्मल है.

हे रामजी ! संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगताहै जैसे आंबका परिपक्व फल सुन्दर होताहै अरु सबको प्यारा लगताहै तैसे संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगता है अरु स्तुति करने योग्य है. जिस पुरुषको संतोष प्राप्त

भया है तिसको परमलाभ भया है. हे रामजी ! जहां संतोष है, तहां इच्छा नहीं रहती है अरु संतोषवान् भोगमें दीन होकर नहीं रहता वह उदारात्मा है सर्वदा आनंद कर तृप्त रहता है जैसे मेघ पवनके आयेते नष्ट होजाता है तैसे संतोषके आयेते इच्छा नष्ट होजाती है अरु जो संतोषवान् पुरुष है तिसको देवता ऋषीश्वर सब नमस्कार करते हैं अरु धन्य धन्य कहते हैं. हे रामजी! जब इस संतोषको धरेगा तब परम शोभा पावेगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे संतोषवर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

अथ साधुसङ्गवर्णन।

वशिष्ठ उवाच—हे रामजी ! और जैसे कछु दान तीर्थादिक साधन हैं तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती साधुसंगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है साधु संगरूपी एक वृक्ष है तिसका फूल आत्मज्ञान है जिस पुरुषने फूलकी इच्छा करी है सो अनुभवरूपी फलको पाता है. हे रामजी ! जो पुरुष आत्मानंदतें रहित है सो सतसंग कर आत्मानंदसों पूर्ण होते हैं अरु अज्ञानकरके जो मृत्युको पाता है सो संतके संगते ज्ञान पायकर अमर होता है अरु जो आपदा करके दुःखी है सो संतके संगकर संपदाको पाता है आपदारूपी कमलका नाश करने-

हारी सत्संगरूपी बर्फकी वर्षा है सतसंगसों आत्मबुद्धि प्राप्त होती है तिसकर मृत्युते रहित होता है और सब दुःखते रहित होता है अरु परमानंदको प्राप्त होता है.

हे रामजी! संतकी संगतिकर इसके हृदयमें ज्ञानरूपी दीपक जलता है तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट हो जाता है अरु बडे ऐश्वर्यको प्राप्त होता है बहुरि किसी भोग पदार्थका इच्छा नहीं रहती अरु बोधवान् होता है तबते उत्तम पदमें विराजता है जैसे कल्पवृक्षके निकटगयेते वांछित फलकी प्राप्ति होती है तैसे संसार समुद्रके पार उतारनहारे संतजन हैं. जैसे धीवर नौका करके पार लगाता है तैसे संतजन युक्ति करके संसार समुद्रते पार करते हैं. अरु मोहरूपी मेघका नाश करनहारा सतका संग है सो पवन है; जिनको देहादिक अनात्मसों स्नेह नष्ट भया है; अरु शुद्ध आत्माविषे जाकी स्थिति है तिसकर तृप्त भये हैं बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टते जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती सदा समता भावमें स्थित रहे हैं ऐसे संसार समुद्रके पार उतारनेमें पुल जैसे अरु आपदारूपी बेलीको जडसमेत नाश करनहारे हैं.

हे रामजी! संतजन प्रकाशरूप हैं तिनके संगते पदार्थकी प्राप्ति होती है. अरु जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रते हीन हुए हैं इनको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती जिस पुरुषने सत्संगका त्याग किया है सो नरकरूपी अग्निमें लकडीकी

नाईं जरेगा; अरु जिस पुरुषने सत्संग किया है तिसको नरकरूपी अग्निका नाश करनहारा सत्संगरूपी मेघ है. हे रामजी ! सत्संगरूपी गंगा है जाने सत्संगरूपी गंगाका स्नान किया ताको बहुरि तप दान आदि साधनका प्रयोजन नहीं वह सत्संग करके परमगतिको प्राप्त होनेका है ताते अपर सब उपाय त्यागकर सत्संगको खोजना. जैसे निर्धन चिंतामणि आदिक धनको खोजता है तैसे मुमुक्षु सत्संगको खोजता है आध्यात्मिकादि तीन तापसों जलता है तिसको शीतल करनेहारा सत्संग है जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघकर शीतल होती है तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है.

हे रामजी ! मोहरूपी वृक्षका नाश करनहारा सत्संगरूप कुल्हाडा है; सत्संग करके यह पुरुष अविनाशी पदको प्राप्त होता है; जिस पदके पायेते और पावनेकी इच्छा नहीं रहती ऐसा सबते उत्तम सत्संग है. जैसे सब अप्सरानते लक्ष्मी उत्तम है तैसे सत्संग कर्त्ता सबते उत्तम है ताते अपने कल्याणके निमित्त सत्संग करना तुमको योग्य है. ताते हे रामजी ! यह जो चारों मोक्षके द्वारपाल हैं सो तुझको कहे, जो पुरुषने इनके साथ प्रीति करी है सो शीघ्र आत्मपदको प्राप्त होहिंगे और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको प्राप्त नहीं होते. हे रामजी ! इन चारोंमेंसे एकहू जहां आता है तहां तीनों

औरहू आय जाते हैं जहां समुद्र रहता है तहां सब नदी आय जाती हैं तैसे जहां शम रहता है तहां संतोष विचार अरु सत्संग ये तीनों आय जाते हैं जहां साधुसंगम होता है तहां संतोष विचार अरु शम ये तीनों आय जाते हैं; जहां कल्पवृक्ष रहता है तहां सब पदार्थ आय स्थित होते हैं. अरु जहां संतोष आता है तहां शम विचार सत्संग ये तीनों आय जाते हैं; जैसे पौर्णमासीके चंद्रमामें गुण कला सब इकट्ठी हो जाती हैं तैसे जहां संतोष आता है तहां और तीनों आय जाते हैं अरु जहां विचार आता है तहां संतोष उपशम अरु सत्संग ये आय रहते हैं. जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसों राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है तैसे जहां विचार होता है तहां और भी तीनों आते हैं ताते हे रामजी! जहां चारों इकट्ठे होते हैं तहां परम श्रेष्ठ जानना ताते हे रामजी! चारों न होहिं तो एकका तो अवश्य आश्रय करना जब एक आवेगा तो चारों आय स्थित होवेंगे. मोक्षके प्राप्ति होनेके यह चार परम साधन हैं और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं.

श्लोकः।

सन्तोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनम्॥
विचारः परमं ज्ञानं शमश्च परमं सुखम्॥ १॥

हे रामजी! यह परम कल्यान कर्त्ता है सो जो इन चारों करि संपन्न हैं तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं

ताते दंतकों दंत लगाय इसका आश्रय करके मनको वश कर ले.

हे रामजी ! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश करके वश होता है अरु मनरूपी वनमें वासनारूपी नदी चलती है तिसके शुभ दो किनारे हैं अरु पुरुषार्थ करना यह है कि, अशुभकी ओरते रोकके शुभकी ओर चलावना जब अंतर्मुख आत्माके सन्मुख वृत्तिकी प्रवाह होवेगा तब तू परमपदको प्राप्त होवेगा हे.रामजी ! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है कि अविचाररूपी उँचाईको दूर करना जब अविचाररूपीरुकावट दूर होवेगा तब आपही प्रवाह चलेगा. हे रामजी ! दृश्यकी ओर जो प्रवाह चलता है सो बंधनका कारण है जब आत्माकी ओर अंतर्मुख प्रवाह होवे तब मोक्षका कारण हो जाय, आगे जो तेरी इच्छा होवे सो कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे साधुसंगवर्णनं
नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः। १७।

अथ षट्प्रकरणविवरण।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह मेरे वचन हैं सो परम पावन हैं जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी हैं तिसको यह वचन परम बोधका कारण हैं जो पुरुष शुद्ध पात्र हैं सो इन वचनोंको पायके शोभते हैं और वचनहु उनको

पायके शोभा पाते हैं जैसे मेघके अभावतें शरदकालमें चन्द्रमा अरु आकाश शोभते हैं तैसे शुद्ध पात्रमें यह वचन शोभते हैं अरु जिज्ञासु निर्मल वचनकी महिमा सुनके प्रसन्न होता है.

हे रामजी! तुम परमपात्र हो अरु मेरे वचन परम उत्तम हैं। यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र है सो आत्मबोधका परम कारण है अरु परमपावन वाक्यकी सिद्धता है अरु युक्तियुक्तार्थ वाक्य है अरु नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं जिनके बहुत जन्मके पुण्य आय इकट्ठे होते हैं तिनको कल्पवृक्ष मिलता है सो फल कर झुक पडता है तब तिनको यह शास्त्र श्रवण होता है अरु नीचको इनका श्रवण प्राप्त नहीं होता है उसकी वृत्ति इनके श्रवणमें नहीं आती है जैसे धर्मात्मा राजाकी इच्छा न्यायशास्त्रके श्रवणमें होती है अरु जो पापात्मा राजा है तिसकी इच्छा नहीं होती.

हे रामजी! तैसे पुण्यवान्की इच्छा इसकी श्रवणमें होती है अरु अधमकी इच्छा नहीं होती. जो कोई मोक्षोपायक इस रामायणका अध्ययन करैगा अथवा निष्काम संतके मुखते श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा अरु आदिते लेकर अंतपर्यंत एकत्र भाव होकर विचारेगा तब तिसका संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा. जैसे जेवरी जाननेते सर्पका भ्रम दूर हो जाता है तैसे अद्वैतात्मतत्त्वके जाननेते

तिसका संसार भ्रम नष्ट होजावेगा. सो इस मोक्षोपायक शास्त्रके बत्तीस सहस्र श्लोक हैं अरु षट् प्रकरण हैं.

प्रथम वैराग्य प्रकरण है सो वैराग्यका परमकारण है. हे रामजी ! मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता परंतु बडी वर्षा होवे तब तहाँ वृक्ष होता है तैसे अज्ञानीका हृदय मरुस्थलकी नाईं है तिसमें वैराग्यरूपी वृक्ष नहीं होता परन्तु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवे तिसकर वैराग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है तिसके एक सहस्र पांचसौ श्लोक हैं.

तिसके अनंतर मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है—तिसमें परम निर्मल वचन है तिस करके मलिन मणि हुई ताका मार्जन कियेते उज्ज्वल हो आती है. तैसे यह वचनते मुमुक्षुका हृदयनिर्मल होता है अरु विचारके बलते आत्मपद पानेको समर्थ होता है तिसके एक सहस्र श्लोक हैं.

तिसके अनंतर उत्पत्ति प्रकरण है—तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं तिसमें बडी सुंदर कथा दृष्टांत सहित कही है जिस विचारते जगत्का सत्यताभाव मनते चलायमान रहता है अर्थ यह जो जगत्का अत्यन्त अभाव जान पडता है. हे रामजी ! यह जगत्में जो मनुष्य देवता दैत्य पर्वत नदी आदि स्वर्गलोक पृथ्वी अप तेज वायु आकाश आदि स्थावर जंगम भासता है सो अज्ञान करके है अरु इसकी उत्पत्ति कैसे भई है जैसे जेवरीमें सर्प होता है अरु सीपमें रूपा होता है अरु सूर्यकी किरणमें जल

दीखता है आकाशमें तरुवर दीखता है और जैसे दूसरा चंद्रमा दीखता है जैसे गंधर्वनगर भासते हैं मनोराजकी सृष्टि भासती है अरु संकल्पपुर होता है अरु सुवर्णमें भूषण होता है समुद्रमें तरंग होता है आकाशमें नीलता दीखती है जैसे नौकामें बैठते किनारे वृक्ष पर्वत चलते दृष्टि आते हैं अरु बादलके चलते चन्द्रमा धावता दीखता है और थंभमें पूतरी भासती है भविष्यत् नगरते आदि लेकर असत्यपदार्थ जैसे सत्य भासते हैं तैसे सब जगत् आकाशरूप है अज्ञानकरके अर्थाकार भासता है सो अज्ञान करके उत्पत्ति दीखती है सो अरु ज्ञान करके लीन हो जाता है जैसे निद्रामें स्वप्न दृष्टिकी उत्पत्ति होती है अरु जागेते निवृत्त होजाती है तैसे अविद्याकरके जगत्की उत्पत्ति होती है अरु सम्यक् ज्ञान करके निवृत्त होजाती है सो अविद्या कछु वस्तुही नहीं सर्व ब्रह्म चिदाकाश रूप है सो शुद्ध है. अनंत है परमानंद स्वरूप है तिसमें न जगत् उपजता है न लीन होता है ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आप विषे स्थित है तिसमें जगत् ऐसा है जैसे भीतमें चित्र होता है जैसे थंभमें पुतरियां होती हैं. अरु हुए विना भासती है तैसे यह सृष्टि मनमें रही है; वास्तवते कछु बनी. नहीं सब आकाशरूप है जब चित्त संवेदन स्पदंरूप होता है तब नाना प्रकारका जगत् होयकै

भासता है अरु जब निष्पंद होता है तब जगत् मिट जाता है. इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति कही है।

तिसके अनन्तर स्थिति प्रकरण है—तिसमें जगत्की स्थिति कही है. जैसे इन्द्रका धनुष आकाशरूप है और अविचार करके रंगसहित भासता है जैसे सूर्यकी किरणोंमें जल भासता है. जैसे जेवरीमें सर्प भासता है सो सब सम्यक् दृष्टि करके निवृत्त होता है तैसे अज्ञान करके जगत्की प्रतीहोती है सो मनोराज्य करके जगत् रच-लेता है, सो कछु उत्पन्न हुआ नहीं है तैसे यह जगत् संकल्पमात्र है जबलग मनोराज्य है तबलग वह नगर होता है जब मनोराज्यका अभाव हुआ तब नगरका अभाव होजाता है. जबलग अज्ञान होता है तबलग जगत्की उत्पत्ति है जब संकल्पका लय हुआ तब जगत्का अभाव हो जाता है जैसे इंद्र, ब्रह्माके पुत्रहूकी दश सृष्टि संकल्प करके स्थित भई; तैसे यह जगत् भी है, कोऊ पदार्थ अर्थ रूप नहीं। हे रामजी ! इस प्रकार स्थिति प्रकरण कहे हैं, तिसके तीन सहस्र श्लोक हैं तिसके विचार करके जगत्की सत्यता जाती रहती है।

तिसके अनंतर उपशम प्रकरण है—तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं तिसके विचार अहंतत्त्वादिक वासना लीन होजाती है जैसे स्वप्नते जागते वासना जाती रहती है तैसे विचार कियेते अहंतादिक वासना लीन होती है। काहेते ?

कि उसके निश्चयमें जगत् नहीं रहता, जैसे एक पुरुष सोया है तिसको स्वप्नमें जगत् भासता है और उसके निकट जो जाग्रत् पुरुष है तिसको स्वप्नका जगत् आकाशरूप है जब आकाशरूप हुआ तब वासना कैसे रहे? जब वासना नष्ट भई तब मन उपशम होजाता है तब देखने मात्रको उसकी सब चेष्टा होती है और इसके मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती जैसे अग्निकी मूर्त्ति देखनेमात्रको होती है अर्थाकार नहीं होती तैसे उसकी चेष्टा होती है. हे रामजी! जब मनते इच्छा नष्ट होती है तब मनभी निर्वाण हो जाता है जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण होता है तैसे इच्छाते रहित मन निर्वाण होता है; इस प्रकार उपशम प्रकरण है।

तिसके अनन्तर निर्वाण प्रकरण है- जो शेष है तिसमें परम निर्वाण वचन कहे हैं अज्ञान करके चित्त अरु चित्तका संबन्ध है सो विचार कियेते निर्वाण होजाता है. जैसे शरदकालमें मेघके अभावते शुद्ध आकाश होता है तैसे पुरुष विचार करके निर्मल होता है. हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच है सो विचारकरके नष्ट होता है. जेती कछु इच्छा स्फूर्ति है सो निर्वाण हो जाती है जैसे पत्थरकी शिला फुरनेते रहित होती है तैसे ज्ञानवान् इच्छाते रहित होता है तब जेती कछु जगत्की यात्रा है सो इसको होय चुकती है जो कछु

करना है कर चुकता है. हे रामजी ! शरीर होते ही वह पुरुष अशरीरी हो जाता है. अरु नाना प्रकारका जगत् तिसको नहीं भासता. जगत्की नेतीते वह रहित होता है अहंतत्त्वादिक तम रूप जगत् तिसको नहीं भासता है. जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आवता तैसे उसको जगत् दृष्टिमें नहीं आता अरु ऐसे बडे पदको प्राप्त होता है जैसे सुमेरु पर्वतके किसी कोनेमें कमल होते हैं. तिसके ऊपर भौंरे स्थित रहते हैं तैसे ब्रह्माके किसी कौनपै जगत् तुषाररूपी है अरु जीवरूपी भौंरे तिसपर स्थित है वह पुरुष अचिंत्य चिन्ममात्र है, रूप अवलोकन, मन, तिसका आकाशरूप हो जाता है तिस पदको वह प्राप्त होता है जिस पदकी योग्य उपमा कहनेको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र समर्थ नहीं, ऐसे अनुगमताके सदृश कोऊ नहीं है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे षट्प्रकरणविवरणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८।

अथ दृष्टान्तवर्णन।

वशिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह परम उत्तम वाक्य कैसे हैं ? कि इसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है. जैसे उत्तम खेतमें उत्तम बीज बोयेते उत्तम फलकी उत्पत्ति होती है तैसे इसको विचारनहारा उत्तम पदको

प्राप्त होता है जो युक्तिपूर्वक वाक्य और युक्तिरहित ऋषिवाक्य भी होहिं तो तिनका त्याग करिये और युक्तिपूर्वक वाक्यका अंगीकार करिये.

हे रामजी ! जो ब्रह्माके वचन युक्तिते होहिं, तब तिनको भी सूखे तृणकी नाईं त्याग करिये अरु बालकके वचन युक्तिपूर्वक होहिं तो तिनका अंगीकार करिये पिताके कूपका खारा जल होवे तो उसका त्याग करिये और निकट मिष्ट जलका कूप होवे तब तिसका पान करिये तैसे बडे अरु छोटेका विचार न करके युक्तिपूर्वक वचनका अंगीकार करना, हे रामजी ! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक हैं अरु बोधके परमकारण हैं जो पुरुष एकाग्र होयके इस शास्त्रको आदिते अंतपर्यंत पढै अथवा पंडितसों श्रवण करके विचारे तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवे.

प्रथम वैराग्य प्रकरणको विचारेगा तब वैराग्य उपजेगा जेते कछु जगतके रमणीय भोग पदार्थ हैं तिनको विरस जानेगा अरु किसी पदार्थकी वांछा न करेगा जब भोगमें वैराग्य होता है तब शांतिरूप आत्मतत्त्वमें प्रतीति होती है जब विचार करके बुद्धि संस्कारित होवेगी तब शास्त्रका सिद्धांत बुद्धिमें आय स्थित होवेगा और संसारके विकाररहित बुद्धि निर्मल होवेगी जैसे शरत्कालमें बादरके अभाव हुएते आकाश सब ओरते स्वच्छ होता

तैसे बुद्धि निर्मल होवेगी. बहुरि आधिव्याधिकी पीडा उसको न होवेगी. हे रामजी! ज्यों ज्यों विचार दृढ होवेगा त्यों त्यों शांतात्मा होवेगा, ताते जेते कछु संसारके यत्न हैं तिनका त्याग कर इस शास्त्रको वारंवार विचारते चैतन्य सत्ता उदय होवेगी. लोभ मोहादिक विचारकी सत्ता नष्ट होवेगी. ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है तैसे विकार नष्ट होवेगा तब तिस पदकी प्राप्ति होवेगी जिसके पायेते संसारके क्षोभ मिट जायँगे, जैसे शरत्कालमें मेघ नष्ट होजाता है तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं.

हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषको संसारके राग द्वेष विंध नहीं सकते. जैसे जिस पुरुषने कवच पहिरा होय तिसको बाण वेध नहीं सकते उसको भोगकी इच्छा नहीं रहती जब विषय भोग विद्यमान आयरहे तब तिनको विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती अर्थजानकर बाहर नहीं निकसती अंतर आत्मामें ही स्थिर रहती है पतिव्रता स्त्री अपने अंतःपुरते बाहर नहीं निकलती तैसे ताकी बुद्धि अंतरते बाहर नहीं निकलती. हे रामजी! बाहरते तो वह भी प्रकृतिजन्यकी नाईं दृष्टि आते हैं जो कछु अनिच्छित प्राप्त होतेहैं तिसको भुगतता हुआ दृष्टिमें आता है और अंतरते उसका रागद्वेष नहीं करता. हे रामजी! जेता कछु जगत्की उत्पत्ति प्रलयका

क्षोभ है सो ज्ञानवान्को नष्ट नहीं कर सकता; जैसे चित्रकी बेलिको आंधी चलाय नहीं सकती तैसे उसको जगत्का दुःख चलाय नहीं सकता अरु संसारकी ओरतें जड होजाताहै वृक्षकी नाई गंभीर हो जाताहै अरु पर्वतकी नाई स्थिर होजाता है अरु चन्द्रमाकी नाई शीतल होताहै. हे रामजी ! सो आत्मज्ञान करके ऐसे पदको प्राप्त होता है. जिसके पायेतें और कछु पाने योग्य नहीं रहता. आत्मज्ञानका कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है जामें नाना प्रकारके दृष्टांत कहे हैं जो वस्तु अपरिच्छिन्न होवे अरु देखनेमें न आई होय तिसका न्याय देखनेमें होवे तिसको विधिपूर्वक समुझावे उसका नाम दृष्टांतहै. हे रामजी ! यह जगत् कार्य कारणरूप है अरु आत्मा जगत्की एकता कैसे होवे ? ताते जो मैं दृष्टांत कहूँगा तिसका एक अंश अंगीकार करना सब देशका अंगीकार नहीं करना. हे रामजी ! कार्यकारणकी कल्पना मूर्खने करी है तिसको निषेध करनेके निमित्त मैं स्वप्न दृष्टांत कहो हों. सो समुझनेते तेरे मनका संशय नष्ट होजावेगा अरु दृश्यका भेद मूर्खको भासता है तिसके दूर करनेके अर्थ स्वप्न दृष्टांत कहोंगा; तिसके विचार करि मिथ्या विभाग कल्पनाका अभाव होना है, हे रामजी ! ऐसी कल्पनाका नाशकर्ता यह मेरा मोक्ष उपाय शास्त्र है जो पुरुष आदिते अंतपर्यंत विचारेगा सो संस्कार

होवेगा. जो पद पदार्थको जाननेहारा होवे अरु इसको वारंवार विचारे तब तिसका दृश्यभ्रम नाश पावे; इस शास्त्रके विचारविषे अपर किसी तीर्थ तप दान आदिककी अपेक्षा नहीं, जहां स्थान होवे तहां बैठे जैसा भोजन गृहविषे तैसा करै, अरु वारंवार इसका विचार करै तब अज्ञान नष्ट होजावे अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवे. हे रामजी ! यह शास्त्र प्रकाशरूप है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ नहीं दीखता अरु दीपकके प्रकाश कारि चक्षुसहित देखता है तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी दीपक नेत्रसहित होवे तब आत्मपदकी प्राप्ति होवे.

हे रामजी ! आत्मज्ञान, विचार कारि दृढ अभ्यास कारिके प्राप्त होता है. ताते मोक्ष उपाय जो परम पावन शास्त्र तिसके विचारते जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा, जगत्के देखते देखते जगत् भाव मिट जावेगा. जैसे—सर्पकी मूर्त्ति लिखी होती है अरु अविचार करके तिससे भय पाता है, जब विचारकारि देखिये तब सर्पभ्रम मिटजाता है, सो सर्पका आकार दृष्टि आता है परन्तु उसका भय मिटजाता है, तैसे यह जगत् भ्रम विचार कियेते नष्ट होजाता है अरु जन्म मरणका भय जो बडा दुःख है, इस शास्त्रके विचारते नष्ट हो जाता है जिन्होंने इसके विचारको त्यागा है सो माताके गर्भविषे कीट होवेंगे अरु कष्टते नहीं

छूटेंगे, अरु विचारवान् पुरुष आत्मपदको प्राप्त होवेगा, जो श्रेष्ठज्ञानी अनंत है तिसको अपना रूपही भासता है.

हे रामजी! और जो तेज होता है सो दाहक होता है परन्तु ज्ञानरूपी तेज जिस घटविषे उदय होता है सो शीतल शांतिरूप होता है बहुरि तिस विषे संसारका विकार कोऊ नहीं रहता. जैसे कलियुगविषे शिखावाला तारा उदय होता है तैसे ज्ञानवान्के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता.

हे रामजी! संसारभ्रम आत्माके प्रमादकरि उत्पन्न होता है. सो आत्मज्ञानके प्राप्त भये यत्न विना शांत हो जाता है. फूल पत्र काटनेमें भी कछु यत्न होता है परन्तु आत्माके पावनेमें कछु यत्न नहीं होता काहेते कि बोधरूपी बोधही करके जानता है। हे रामजी! जो जानने मात्र ज्ञानस्वरूप है तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है? आत्मा शुद्ध अद्वैत रूप है अरु जगत् भ्रम मात्र है जो पूर्व अपर विचार कियेते जिसकी सत्यता न पाइये तिसको भ्रममात्र जानिये अरु पूर्व अपर विचार कियेते सत्य होवे तिसका रूप जानिये सो इस जगतकी सत्यता आदि अंतमें कछु है नहीं तैसे जाग्रत् भी आदि अंतमें नहीं है ताते जाग्रत् स्वप्न दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी! यह वार्त्ता बालक भी जानता है कि आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाइये सो स्वप्नवत् है

जो आदि भी न होय अरु अंतभी न रहे तिसको मध्यमें भी असत्य जानिये तिस विषे यह दृष्टांत कहैहैं संल्पकप पुरीवत्, ध्यान नगरकी नाई स्वप्नपुरीकी नाई वरषात करके जो उपजता है तिसकी नाई, औषधिते उपजनेकी नाई इस पदार्थकी सत्यता न आदि होती है न अंत होती है अरु मध्यमें जो भासता है सो भी भ्रममात्र है. तैसे यह जगत् अकारण है अरु कार्य कारण भाव संबंधमें भासता है तो कार्य कारण जगत् भया अरु आत्मसत्ता अकारण है जगत् साकार है अरु आत्मा निराकार है.

इस जगत्का दृष्टांत जो आत्मा विषे देऊंगा तिसका तुम एक अंश ग्रहण करना. जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्व विषे मिलता है. काहेते कि अकारण है अरु मध्य भावका दृष्टांत नहीं मिलता. काहेते कि उपमेय अकारण है तो तिसका इस समान दृष्टांत कैसे होवे ? ताते अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना. हे रामजी! जो विचारवान् पुरुष हैं सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करते हैं. हे रामजी! तिसको अत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है काहेते कि सारग्राहक होते हैं अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंशग्रहण नहीं करते अरु बाद करते हैं तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती ताते दृष्टांतका एक अंशग्रहण

करनासर्वभाव करके दृष्टांतको नहीं मिलावना अरु पृथ
कको देखि करि तर्क नहीं करना. एक अंश दृष्टांतका
आत्म बोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करना जैसे अंध
कारमें पदार्थ परा होवे सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना
जो दीपकके साथ प्रयोजन है और ऐसे नहीं कहना कि
दीपक किसका है अरु तेल बाती कैसा है अरु किस
स्थानका है दीपकका प्रकाश ही अंगीकार करना तैसे एक
अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना
हे रामजी ! जिस करि वाक्य अर्थ सिद्धि न होवे तिसका
त्याग करना; जो वचन अनुभवको प्रगट करै तिसका
अंगीकार करना. जो पुरुष अपने बोधके निमित्त वचनको
ग्रहण करता है, सोई श्रेष्ठ है अरु जो वादके निमित्त
ग्रहण करता है सो चोगचूंच है; वह अर्थको सिद्ध नहीं
करता. जो कोऊ अभिमानको लेकर कहता है सो
हस्तीकी नाईं शिरपर माटी डारता है; तिसका अर्थ
सिद्ध नहीं होता अरु जो अपने बोधके निमित्त वचनको
ग्रहण करता है अरु विचारकारि तिसका अभ्यास करता
है तब वह आत्मा शांतिको पाता है. हे रामजी ! आत्म
पद पावने निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिता है; अरु
शम, विचार, संतोष अरु संतसमागम कारि बोधकी
प्राप्ति होवे तब परमपदको पाता है.

हे रामजी ! जिसका दृष्टांत कहता है, सो एक देश
लेकारि कहता है, सर्व मुख कहनेकारि अखंडताका अभा

होय जाता है अरु जो सर्वमुख दृष्टांत मुखको जानि सो सत्यरूप होता है ऐसे तो नहीं. आत्मा सत्यरूप है, कार्य कारणते रहित शुद्ध चैतन्य है; तिसका दिखावने निमित्त कार्य कारण जगत् दृष्टांत कैसे दीजिये, यह जगत्का जो दृष्टांत कहता है सो एक अंश लइ कहता है; अरु बुद्धिमान् भी दृष्टांतके एक अंशको ग्रहण करते हैं. जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करते हैं अरु जिज्ञासुको भी यही चाहता है, कि अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करै, अरु वाद न करै.

हे रामजी ! वाक्य सोई है. जो अनुभवको प्रगट करै अरु जो अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना जो स्त्रीका वाक्य होवे अरु आत्म अनुभवको प्रत्यक्ष करै तिसका ग्रहण करना; अरु परमगुरु वेद वाक्य होवे और अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना जब लग विश्रामको नहीं पाया, तबलग विचार कर्त्तव्य है; विश्रामका नाम तुर्यपद है; जब विश्रामकी प्राप्ति भई तब अक्षय शांति होती है. हे रामजी ! जो तुर्यपद संयुक्त पुरुष है तिसका श्रुति स्मृति उक्त कर्महूके करने करि प्रयोजन सिद्ध कछु नहीं होता अरु न करिने करि पाप नहीं होता सदेह होवे, भावे विदेह होवे, गृहस्थ होवे, भावे विरक्त होवे; तिसको कर्त्तव्य कछु नहीं, वह पुरुष संसार समुद्रते पार हुआ है.

हे रामजी! उपमेयको उपमा करि जानता है, सो एक अंशको ग्रहण करि जानता है, तब बोधकी प्राप्ति होती है, अरु जो बोधते रहित है सो मुक्तिको प्राप्त नहीं होता वह व्यर्थ वाद करता है. हे रामजी! शुद्धस्वरूप आत्म-सत्ता जिसके घटविषे विराजमान है तिसको त्याग करि अपर विकल्प उठावता है सो चोगचूंच है अरु मूर्ख है।

हे रामजी! जो अर्थ प्रत्यक्ष है सो प्रमाण मानने योग्य है और जो अनुमान अर्थापत्ति आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष करि होती है. जैसे सब नदियोंका अधिष्ठान समुद्र है तैसे सब प्रमाणहूका अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है सो प्रत्यक्ष क्या है सो श्रवण करहु.

हे रामजी! चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है तिस चक्षु करके विद्यमान होता है तिसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है तिस प्रमाणहूको विषय करनेहारा जीव है अपने वास्तव स्वरूपके अज्ञानकरि अनात्मारूपी दृश्य बनी है तिस विषे अहंकृति करके अभिमान भया है. अभिमान सब दृश्य है ताते हेयोपादेय बुद्धि भई है अरु राग द्वेष करके परा जलता है आपको कर्ता मानि करि बहिर्मुख हुआ भटकता है.

हे रामजी! जब विचार करके संवेदन अंतर्मुखी होता तब आत्मपद प्रत्यक्ष होताहै अरु निज भावको प्राप्त होता है परिच्छिन्न भाव नहीं रहता शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है. जैसे स्वप्नते जागनेपर स्वप्नका शरीर और

दृश्य भ्रम नष्ट होजाता है तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुएते सब भ्रम मिट जाता है अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी ! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है सो मिथ्या है जो द्रष्टा है सो दृश्य होता है. अरु जो दृश्य है सो द्रष्टा होता है सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है जैसे पवनमें स्पंद शक्ति रहती है तैसे आत्मामें संवेदन रहती है जब संवेदन स्पंदरूप होती है तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है जैसे स्वप्नेमें अनुभव सत्ता दृश्यरूप होयके स्थित होती है तैसे यह दृश्य है ताते सब आत्मसत्ता है ऐसे विचार करि आत्मपदको प्राप्त होवहु. अरु जो ऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्त न होयसको तब अहंकार जो उल्लेख फुरता तिसका अभाव करो पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ता है जब शुद्ध बोधको तुम प्राप्त होहुगे तब ऐसे चेष्टा पडी होवेगी. जैसे जंत्रीकी पुतरी संवेदन विना चेष्टा करती है तैसे देहरूपी पुतरीका पालनहारा मनरूपी संवेदन है तिस विना पडी रहेगी परंतु अहंकृतिका अभाव होवेगा, ताते यत्न करके तिस पदके पानेका अभ्यास करो जो नित्य शुद्ध शांतरूप है.

हे रामजी ! और दैव शब्दको त्याग करि अपना पुरुषार्थ करो आत्मपदको प्राप्त होहु पुरुषार्थमें शूरमा आत्मपदको प्राप्त होता है.

इति दृष्टांतवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥१८॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ आत्मप्राप्तिवर्णन ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्धबुद्धि करै तब आत्मपद पानेको समर्थ होवे प्रथम सत्संग यह है जिसकी चेष्टा शास्त्रहूके अनुसार होवे तिसका संग करै तिसके गुणहूको हृदयविषे धारै बहुरि महापुरुषके शम संतोष आदिक गुणहूका आश्रय करै शम संतोषादिक करि ज्ञान उपजता है जैसे मेघहू करि अन्न उपजता है अरु अन्नकारि जगत होता है अरु जगतहूते मेघ होता है तैसे शम संतोष भी हैं शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है अरु आत्मज्ञान करि शमादिक गुण आय स्थित होते हैं जैसे बडे तालकरि मेघ पुष्ट होता है अरु मेघकरि ताल पुष्ट होता है ऐसे विचार करके शमसंतोषादिक गुणोंका अभ्यास करहु तब शीघ्रही आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा। हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं अरु जिज्ञासुको अभ्यास करके प्राप्त होते हैं अरु जैसे धान्यकी पालन स्त्री करती है ऊँच शब्द करती है जिस करि पक्षीहूको उडावती है जब इस प्रकार पालना करती है तब फलको पाती है तिसकारि पुष्ट होती है तैसे शम संतोषादिकके पालनेकारि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है

हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय शास्त्रको आदिते लेकर अंतपर्यंत विचारे तब भ्रांति निवृत्त होवे. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ कर सिद्ध होते हैं, परन्तु यह मोक्ष उपाय शास्त्र परम कारण है जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी; याते इस मोक्ष उपाय शास्त्रका भली प्रकार अभ्यास करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

समाप्तमिदं योगवासिष्ठमुमुक्षुप्रकरणम् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.
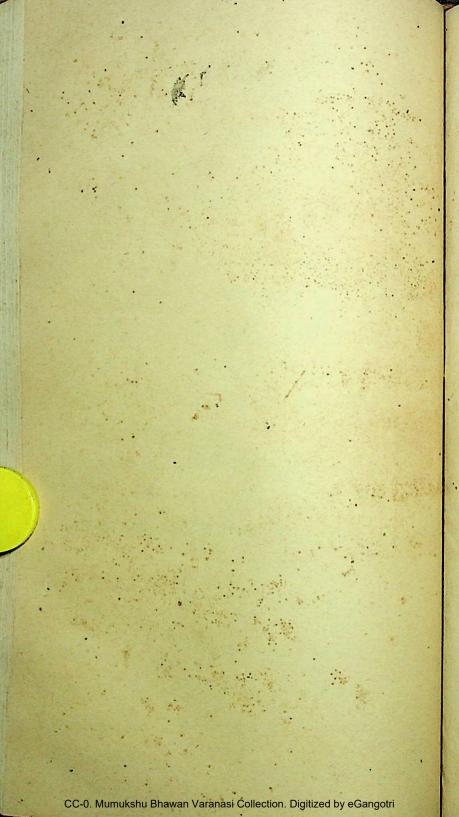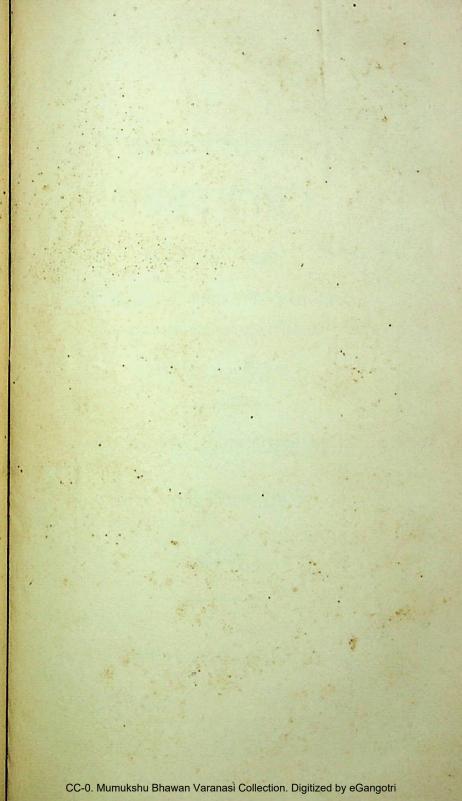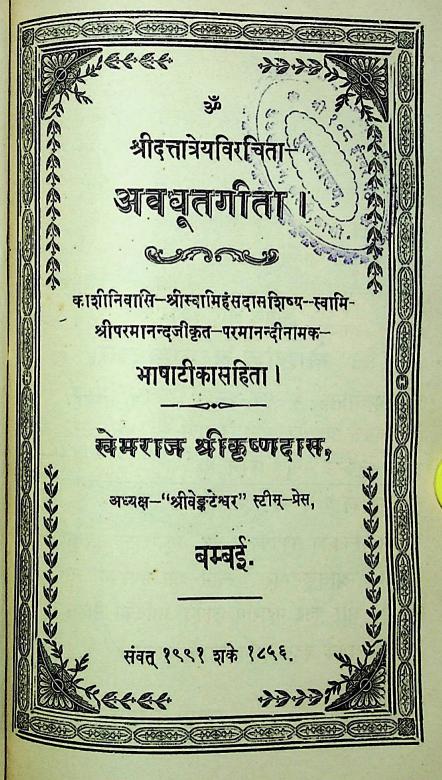
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.

ॐ

श्रीदत्तात्रेयविरचिता-

अवधूतगीता ।

काशीनिवासि-श्रीस्वामिहंसदासशिष्य--स्वामि-
श्रीपरमानन्दजीकृत-परमानन्दीनामक-

भाषाटीकासहिता ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९९१ शके १८५६.

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई.

॥ श्रीदत्तात्रेयाय नमः ॥
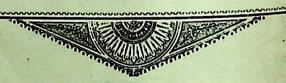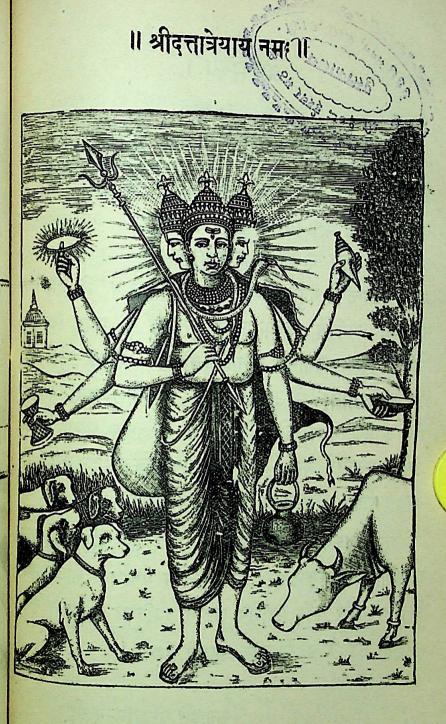
भूमिका ।

संसारमें कौनसा ऐसा पंडित और महात्मा संन्यासी होगा जो कि, श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके नामको न जानता होगा, यद्यपि स्वामी दत्तात्रेयजीके नामको तो इस भारतखण्डमें अनेक स्त्री पुरुष जानते हैं, तथापि उनके त्याग और वैराग्यके वृत्तान्तको बहुत ही कम पुरुष जानते हैं, सो मैंने इस ग्रन्थकी आदिमें उनके जीवनवृत्तान्त को प्रथम दिखला करके फिर स्वामी दत्तात्रेयजी–की बनाई हुई जो "अवधूतगीता" है उसके प्रत्येक शब्दके अर्थको और फिर तिसके भावार्थको भी दिखाया है. मुझे आशा है कि उसको पढ़करके सम्पूर्ण विरक्त महातमा जन दत्तात्रेयजीकी तरह गुणोंको ग्रहण करके परम लाभ उठावेंगे ।

इस पुस्तकका सर्वाधिकार सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष " श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्–प्रेस मुंबईको सादर समर्पित है, और कोई महाशय छापने आदिका साहस न करें. नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पड़ेगी ।

स्वामी परमानन्दजी.

ईश्वरगुरुवन्दना।

दोहा--नमो नमो तिस रूपको, आदि अन्त जेहि नाहिं।
सो साक्षी मम रूप है, घाट बाढ कहुँ नाहिं॥ १॥
अवगत अविनाशी अचल, व्याप रह्यो सब थाहि।
जो जानै अस रूपको, मिटै जगत भ्रम ताहि॥ २॥
हंसदास गुरुको प्रथम, प्रणमों वारंवार।
नाम लेत जेहि तम मिटे, अघ होवत सब छार॥

टीकाकारका परिचय।

चौ०--परमानन्द मम नाम पछानो। उदासीन मम पथको जानो॥
रामदास मम गुरुको गुरु है। आत्म वित्त जो मुनिवर मुनि है॥
दोहा--परशराम मम नगर है, सिंधु नदी उस पार।
भारतमंडलके विषै, जानै सब संसार॥ ५॥

अथ श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका वृत्तान्त।

संसारमें जन्ममरणरूपी वन्धनसे छूटनेके लिये सम्पूर्ण मोक्षके साधनोंसे वैराग्यही प्रधान साधन है क्योंकि जबतक प्रथम पुरुषको वैराग्य नहीं होता है तबतक पुरुषका मन विषयभोगोंकी तरफसे नहीं हटता है और मनको भोगोंकी तरफसे हटाये विना कोई भी मोक्षका साधन सफल नहीं होता है इसीसे सिद्ध होता है कि संपूर्ण मोक्षके साधनोंका मूलकारण वैराग्य ही है क्योंकि आजतक जितने जीवन्मुक्त महात्मा हुए हैं वे सब वैराग्य करके ही हुए हैं सो वैराग्य तीन प्रकारका है:—एक तो मन्द वैराग्य है, दूसरा तीव्र है, तीसरा तीव्रतर वैराग्य है, स्त्रीपुत्रादिकोंमेंसे किसी एकके नष्ट होजानेसे जो वैराग्य होता है वह मन्द वैराग्य कहा जाता है क्योंकि वह थोडे कालके पीछें नष्ट होजाता है, तात्पर्य यह है कि, जिस कालमें किसीका धन या पुत्र स्त्री या कोई दूसरी प्रिय वस्तु

नष्ट हो जाती है तब पुरुष अपनेको और संसारको दुःखी होकर धिक्कार देने लगता है और कुछ कालके पीछे जब कि तिसका मन संसारके दूसरे पदार्थोंकी तरफ लग जाता है तब वह वैराग्य भी तिसको भूलजाता है इसीका नाम मन्द वैराग्य है और विना ही किसी दुःखकी प्राप्तिके विषयभोगोंके त्यागकी इच्छाका उत्पन्न होना जो है इसका नाम तीव्र वैराग्य है और अपनी अभिलाषाके अनुकूल समस्त राज्यादिक सांसारिक पदार्थ तथा स्त्री पुत्र आदिके वर्तमान होनेपर भी उनके त्यागकी इच्छाका जो उत्पन्न होना है उसे तीव्रतर वैराग्य कहते हैं सो ऐसे वैराग्यवान् अर्थात् ज्ञानवैराग्यकी मूर्ति श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी हुए हैं और जिसवास्ते वह अवधूत होकर संसारमें विचरे हैं इसी वास्ते उन्होंने "अवधूतगीता" भी बनाई है उन्हींकी "अवधूतगीता" के अर्थोंको हम भाषाटीकामें दिखावेंगे । अब प्रथम उनके जीवनवृत्तांतको दिखाते हैं इस वार्ताको तो हिंदूमात्र जानते हैं जो सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलि यह चारों युग बरावर ही अपनी २ पारीसे आते जाते रहते हैं । जिस जमानेमें सब लोग सत्यवादी और धर्मात्मा होते हैं उसी जमानेका नाम सत्ययुग है फिर जिस जमानेमें तीन हिस्सा सत्यवादी और चौथा हिस्सा असत्यवादी होते हैं उसी जमानेका नाम **त्रेतायुग** है और जिस जमानेमें आधे सत्यवादी और आधे असत्यवादी होते हैं उसका नाम द्वापर है जब कि चौथा हिस्सा सत्यवादी होते हैं तब **कलियुग** कहा जाता है और जब कि हजारों लाखोंमें एक आधा सत्यवादी होता है और सब असत्यवादी होते हैं तब उस जमानेका नाम घोर कलियुग है सो सत्ययुगमें जब कि, सब लोग सत्यवादी थे उसी जमानेमें अत्रि नाम करके एक राजर्षि बडे भारी तपस्वी राजा हुए हैं उनकी स्त्रीका नाम अनसूया था और अनसूयाके सन्तति नहीं थी. सो सन्ततिकी कामना करके अनसूयाने ब्रह्मा विष्णु और महादेव जो कि, संपूर्ण देवतोंमें प्रधान हैं इन्हीं तीनों देवतोंकी उपासनाको किया अर्थात् अनसूयाने बडे भारी नियमको धारण करके इन तीनों देवताओंकी उपासनाको चिरकालतक किया । कि जब तपस्याको करते २ अनसूयाको बहुतसा समय व्यतीत होगया तब एक दिन तीनों देवता आकरके अनसूयाके

कहनेलगे हम तुम्हारेपर बडे प्रसन्न हुए हैं क्योंकि तुमने हमारी बडी कठिन उपासनाको किया है अब तुम हमसे वरको मांगो, जिस वरको तुम मांगोगी उसी वरको हम तुम्हारे प्रति देवेंगे। ब्रह्मा आदिक देवतोंकी इस वार्ताको सुनकर अनसूयाने उनसे कहा कि, यदि तुम तीनों देवता हमारेपर प्रसन्न हुए हो तो तुम तीनों देवता पृथक् २ पुत्ररूप होकर मेरे उदरसे जन्मको धारण करो। अनसूयाकी इस प्रार्थनाको सुनकर तीनों देवतोंने तथास्तु कहा अर्थात् हम तीनों तुम्हारे घरमें पुत्ररूप होकर उत्पन्न होवेंगे इस प्रकारका वर अनसूयाको देकर तीनों देवता चलेगये फिर कुछ कालके बीतजानेपर तीनों देवतोंने क्रमसे अनसूयाके उदरसे अवतार लिया उन तीनोंमेंसे प्रथम विष्णुने अनसूयाके उदरसे अवतार लिया इनका नाम दत्तात्रेय रक्खा गया जिस कारणसे विष्णुने अपने वचनकी पालना करनेके वास्ते आप ही अनसूयाकी कुक्षिसे जन्मको धारण किया इसी वास्ते सब लोग इनको विष्णुका अवतार कहते हैं और जैसे विष्णुमें स्वाभाविक ही ज्ञान वैराग्यादिक गुण भरे थे वैसेही स्वामी दत्तात्रेयजीमें भी थे। फिर काल पाकर महादेवजीने भी अनसूयाकी कुक्षिसे अवतार लिया तब इनका नाम दुर्वासा रक्खा गया क्योंकि जैसे महादेवजी तमोगुण प्रधान थे वैसेही दुर्वासाका भी अवतार तमोगुण प्रधान था फिर कुछ कालके पीछे ब्रह्माने भी अनसूयाके घरमें अवतार लिया इसका नाम चन्द्रमा हुआ सो ब्रह्माजीकी तरह यह भी रजोगुणप्रधानही हुए। तीनेंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र अनसूयाके दत्तात्रेयजी थे, सो बाल्यावस्थासे ही ज्ञान और वैराग्य करके पूर्ण रहते थे तथापि जब कि, यह सयाने हुए तब इनके पिताका देहान्त हो गया और सब प्रजाने इनको बडा जानकर राजसिंहासनपर बिठलादिया, राजा बनकर कुछ कालतक तो यह प्रजाकी पालनाको करते रहे और दुष्टोंको दण्ड देकर सज्जनोंकी रक्षाको भी करते रहे कुछ कालके पीछे इनके चित्तमें राज्यकी तरफसे घृणा उत्पन्न हुई तब राज्यका त्याग करके यह अकेलेही विचरनेलगे, इनकी सौम्य और दयालु मूर्तिको देखकर बहुतसे मुनियोंके लडके भी इनके साथ होलिये और जहां जहां दत्तात्रेयजी जायँ वहाँ वेह बालक भी सब साथ ही साथ जायँ, कितना ही दत्तात्रेयजीने उन बालकोंको समझाकर हटाना चाहा

परन्तु वह किसी प्रकारसे भी न हटे तब दत्तात्रेयजीने अपने मनमें विचार किया कि, कोई ऐसा कर्म करना चाहिये जिस कर्मको देखकर इन बालकोंको हमारी तरफ़से घृणा उत्पन्न होजाय क्योंकि विना ग्लानिके यह हमारा पीछा नहीं छोडेंगे ऐसा विचार करके एक दिन दत्तात्रेयजी वनमें विचरते २ एक तालावके किनारे पर जाकर खडे होगये और कुछ देरके पीछे पानीमें गोता लगाय तीन दिनतक बराबर जलके भीतरही समाधि लगाये बैठेरहे पर तो भी वे मुनियोंके लडके बाहर तालावके किनारे पर बैठेही रहे, क्योंकि मुनियोंके लडकोंका दत्तात्रेयजीके साथ अतिस्नेह होगया था । जब दत्तात्रेयजीने समाधिसे देखा कि, मुनियोंके लडके तो इस तरहसे भी नहीं हटते हैं तब उन्होंने योगबलसे एक मायाकी युवा अवस्थावाली स्त्री रची और एक मदिराकी बोतल रची फिर एक हाथमें तो मदिराकी बोतलको पकडा और दूसरे हाथमें स्त्रीका हाथ पकडे हुए जलसे बाहर निकले और अपना विहार करनेलगे तब उनके इस निन्दित आचरणको देखकर मुनियोंके बालक भी सब चलेगये और कहनेलगे कि, यह तो उन्मत्त होगये हैं अब इनका संग करना अच्छा नहीं है । जब कि, सब मुनियोंके बालकोंने उनका पीछा छोडदिया तब दत्तात्रेयजीने उस मायाकी स्त्री और मदिराकी बोतलको भी अपनी मायामें लय करदिया और नग्न अवधूत होकर विचरने लगे विचरते २ कभी २ तो ग्रामोंमें जाकर लोगोंको अपने दर्शनसे कृतार्थ करते और कभी नगरोंमें जाकर लोगोंको अपने उपदेशसे कृतार्थ करते और कभी वनोंमें और पर्वतोंमें जाकर विचरते और कभी शून्यमन्दिरोंमें जाकर ध्यानावस्थित होकर बैठे रहते । श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी वासनासे रहित होकर और जीवन्मुक्त होकर संसारमें जहां तहां विचरतेथे और अपने कालको व्यतीत करते थे। एक दिन दत्तात्रेयजी अपने आपमें मग्न मस्त हस्तीकी तरह चले जाते थे, इनको मस्त देखकर एक राजाने इनसे पूंछा आपको ऐसा आनन्द किस गुरुसे मिला है जो आप संपूर्ण चिन्तासे रहित होकर मस्त हस्तीकी तरह होकर विचरते फिरते हैं । राजाके इस वाक्यको सुनकर श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीने कहा:—

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥ १॥

पुरुषका विशेषकरके गुरु अपना आत्मा ही है क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमानसे अपने आत्माके ज्ञानसेही पुरुष कल्याणको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! मैंने किसी एक मनुष्यको गुरु नहीं बनाया है और न मैंने किसीसे कानोंमें फूंक मरवाकर मंत्रही लिया है किन्तु जिस २ से जितना २ गुण हमको मिला है उतने २ गुणका प्रदाता मानकर मैंने उस २ को गुरु बनाया है इसीसे मैंने २४ को अपना गुरु माना है क्योंकि उनमेंसे हरएकसे हमको एक २ गुण मिला है इसवास्ते मैं उन सबको गुरु करके मानता हूँ । राजाने कहा कि, हे महाराज ! जिन चौबीसोंसे आपको गुण मिले हैं उन सबके भिन्न २ नामोंको हमारे प्रति आप निरूपण करैं और जो २ गुण उनसे आपको जिस २ रीतिसे मिला है उस २ गुणका भी आप हमारे प्रति निरूपण करैं जिससे मेरेको भी उन गुणोंका और उनके फलोंका यथार्थ रीतिसे बोध होजाय ॥

दत्तात्रेयजीने राजाको जिज्ञासु जानकर कहा कि, हे राजन् ! तुम एकाग्र चित्त होकर श्रवण करो प्रथम हम आपको उन चौबीस गुरुओंके नामोंको सुनाते हैं और फिर उनके गुणोंको श्रवण करावेंगे १ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ कपोत, ९ अजगर १० सिन्धु, ११ पतंग, १२ भ्रमर, १३ मधुमक्षिका, १४ गज, १५ मृग, १६ मीन, १७ पिंगला, १८ कुररपक्षी, १९ बालक, २० कुमारी, २१ साँप, २२ शरकृत्, २३ मकडी, २४ भृंगी यह चौबीस गुरुओंके नाम हैं । इन्हीं चौबीस गुरुओंसे जो २ हमको गुण मिले हैं उन सब गुणोंको भी आपके प्रति हम सुनाते हैं.हे राजन् ! क्षमा और परोपकार करना ये दो गुण हमको पृथिवीसे मिले हैं, पृथिवी अपने प्रयोजनसे विना संपूर्ण जीवोंके लिये अनेक प्रकारके पदार्थोंको उत्पन्न करती है और ताडना करनेसे भी वह बदलेको नहीं चाहती है ऐसी वह क्षमाशील है फिर जो कोई और भी पृथिवीसे इन गुणोंको ग्रहण कर लेता है वहभी संसारमें जीवन्मुक्त होकर विचरता है इसमें कोई भी संदेह नहीं है इसी वास्ते हमने पृथिवीसे इन गुणोंको ग्रहण करके उसे अपना गुरु बनाया है ॥ १ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जलसे स्वच्छता और माधुर्यता ये दो गुण हमको मिले हैं जैसे जल अपने स्वभावसे स्वच्छ और मधुरभी है तैसे मनुष्यको

भी अपने स्वभावसेही स्वच्छ और मधुरभी होना चाहिये क्योंकि आत्मा अपने स्वभावसे ही शुद्ध और सुखरूप भी है इसवास्ते मनुष्यको भी उचित है, कि छलकपटसे रहित होकर मधुरही भाषण करे क्योंकि ये गुण कल्याणकारक हैं ये दो गुण हमको जलसे मिले हैं इस वास्ते जलको भी हमने गुरु माना है ॥२॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! अग्निका अपना उदरही पात्र है जितना द्रव्य अग्निमें डाला जाता है तिसको अग्नि अपने उदरमेंही रख लेता है तैसे ही मैंने भी अपने उदरको ही पात्र बनाया है क्योंकि मुझको भी समयपर जितना भोजन मिलजाता है तिसको मैं भी अपने उदरमेंही रखलेता हूँ अपने पास दूसरे समयके वास्ते कुछभी नहीं रखता हूँ इसीसे मैंने अग्निको भी गुरु बनाया है ॥ ३ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे वायु सर्वकाल चलता रहता है परन्तु किसीभी पदार्थमें आसक्त नहीं होता है और जो शरीरके भीतर वायु है सो केवल आहार करके ही सन्तोषको प्राप्त हो जाता है और जो किसी भोगकी इच्छाको वह नहीं करता है वैसे हमभी चलते फिरते हैं परन्तु किसीमें भी आसक्त नहीं होते हैं और समयपर जो आहार मिलजाता है तिसी करके सन्तोषको प्राप्त होजाते हैं और अधिक भोगकी इच्छाको भी हम नहीं करते हैं इसी वास्ते हमने वायुको भी गुरु बनाया है ॥ ४ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे आकाशमें तारागण और वायु तथा बादल आदि रहते हैं परन्तु आकाशका किसीके भी साथ सम्बन्ध नहीं होता है किन्तु आकाश सबसे असंग ही रहता है, और आकाश व्यापक भी है और असंग भी है तैसे आत्माभी व्यापक है और असंग है इसीवास्ते शरीरादिकोंके साथ आत्माका कोई भी सम्बन्ध नहीं है और संसारमें रहकरभी किसीके साथ यह आत्मा लिप्त नहीं होता है इस असंगतारूपी गुणको मैंने आकाशसे लिया है इसी वास्ते आकाशकोभी मैंने अपना गुरु बनाया है ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे चन्द्रमण्डल सर्वकाल एकरस रहता अर्थात् न घटता है न बढता है किन्तु पूर्णरूपसे ज्योंका त्यों रहता है और जैसे चन्द्रमंडलके जितने २ भागोंपर पृथिवीमंडलकी छाया पड़ती

जाती उतना २ भाग तिसका न्यूनसा प्रतीत होनेलगता है परन्तु स्वरूपसे वह न्यून नहीं होता है किन्तु एकरस ही रहताहै वैसे आत्मामें भी घटना बढना नहीं होताहै किन्तु सर्वकाल एकरस ज्योंका त्यों ही रहताहै। आत्माकी पूर्णताका ज्ञानरूपी गुण हमने चन्द्रमासे लियाहै इसवास्ते हमने चन्द्रमाको भी गुरु माना है ॥ ६ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा जलको पृथिवीतलसे खींचकर फिर समयपर तिसका त्याग करदेता है तैसे ही विद्वान् पुरुष भी इन्द्रियापेक्षित वस्तुओंका ग्रहण करके भी फिर उनका त्याग ही करदेताहै इस गुणको हमने सूर्यसे लियाहै इसवास्ते सूर्यको भी हमनें गुरु बनाया है ॥ ७ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! स्नेहका त्यागरूपी गुण हमने कपोतसे लियाहै सो दिखाते हैं। वनमें एक वृक्षके ऊपर कपोत और कपोतिनी दोनों रहते थे उन्होंने उसी वृक्षपर बच्चोंको भी उत्पन्न किया जब कि, उनके बच्चे दाना खानेलगे तब कपोत और कपोतिनी दोनों इधर उधरसे दाना लाकर उनको खिलानेलगे जब कि, वह दोनों बच्चे कुछ बडे होगये तब उसी वृक्षके नीचे वह भी इधर उधर घूमकर खेलनेलगे। एक दिन एक फंदकने वहांपर आकर जालको लगाकर उन दोनों बच्चोंको उस जालमें फँसालिया इतनेमें वह कपोत और कपोतिनी भी अपने वृक्षपर आगये और अपने बच्चोंको जालमें बँधाहुआ देखा दोनों ही स्नेहके वशमें होकर रुदन करनेलगे बहुतसा रुदन करके कपोतिनीने कहा कि, जिसकी सन्तति कष्टको प्राप्त होकर मारीजाय तिसका जीनेसे मरना ही अच्छा है इस प्रकार शोचकर वह कपोतिनी तिसी जालमें गिरपडी उसको भी फंदकने बाँधलिया तब कपोतने भी विलाप करके कहा जिसका कुटुम्ब नष्ट होजाय तिसका मरना ही अच्छा है अब मैं अकेला जीकर क्या करूंगा ऐसे कहकर कपोतभी उस जालमें गिर पडा। फंदकने उसको भी बांध लिया और चलदिया। हे राजन् ! स्नेहके वशमें प्राप्त होकर वह कपोत और कपोतिनी भी मारेगये इससे सिद्ध होताहै कि, संपूर्ण जीवोंके जन्म और मरणका हेतु स्नेह ही है और स्नेहका त्याग ही मोक्षरूपी सुखका

परम साधन है सो स्नेहका त्यागरूप ही गुण मैंने कपोतसे सीखा है इसी वास्ते मैंने कपोतको भी गुरु बनाया है ॥ ८ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे अजगर एक स्थानमें पडा रहता है अपने भोजनके लिये भी यत्न नहीं करताहै जो कुछ तिसको दैवयोगसे प्राप्त हो जाता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है उससे अधिककी इच्छाकोभी वह नहीं करताहै इसी प्रकार हम भी शरीरके योगक्षेमकी इच्छाको नहीं करते हैं. यह गुण हमने अजगरसे लिया है इसीवास्ते हमने अजगरको भी गुरु करके माना है ॥ ९ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे हजारों नदियां समुद्रमें जाकर मिलती हैं परन्तु समुद्र अपनी मर्यादासे चलायमान नहीं होता है तैसे विद्वान्का मन भी अनेक प्रकारके विषयोंके प्राप्त होनेपरभी चलायमान नहीं होताहै । सो मनका अडोल रखनारूपी गुण हमने समुद्रसे लिया है, इसीवास्ते हमने समुद्रको भी अपना गुरु मानाहै ॥ १० ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे पतंग रूपको देखकर अग्निमें भस्म होजाताहै और तिसका निशान भी नहीं मिलताहै । तैसे ही सुन्दर स्त्रीके रूपको देखकर पुरुषका मन भी तिसीमें लीन होजाताहै और संसारकी तिसको कोई भी खबर नहीं रहती है सो मनको आत्मामें लीन करदेना ही जीवन्मुक्तिका साधन है यह गुण हमने पतंगसे लिया है । इससे हमने पतंगको भी अपना गुरु बनाया है ॥ ११ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे भ्रमर एक पुष्पसे जरासा रस लेकर फिर दूसरे पुष्पपर चलाजाताहै उससे रस लेकर फिर तीसरे पुष्पसे रस लेता है अर्थात् थोडा २ रस हरएक पुष्पसे लेकर बहुतसा रस जमाकर लेता है तैसे हमभी हरएक गृहसे एक १ रोटीके ग्रासको लेकर अपने उदरको भर लेते हैं यह गुण हमने भ्रमरसे लियाहै इससे हमने भ्रमरको भी गुरु बनायाहै ॥ १२ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! माक्षिका जब बहुतसा मधु जमा कर लेती है तब एक दिन शिकारी मनुष्य उनको मारकर जमा किया हुआ सब मधु उनसे छीन करके लेजाता है और जैसे माक्षिका बडे कष्टसे मधुको जमा करती है इसी तरहसे मनुष्य भी बडे २ कष्टोंको उठाकर पदार्थोंको इकट्ठा करते हैं और जिस कालमें यमराजके दूत आकर उनके

पकडकर लेजाते हैं तब वे तो खाली हाथही चले जाते है और उनके पदार्थोंको दूसरा कोई आकर लेजाता है इससे सिद्ध हुआ कि, संग्रह करनेमेंही महान् दुःख होता है सो संग्रहका न करनारूपी गुण हमने मधुमक्षिकासे लिया है इसवास्ते हमने तिसको भी गुरु माना है ॥ १३ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन्! काम करके मदान्ध हुआ हाथी कागजोंकी हाथिनीको देखकरके गढेमें गिरपडता है और फिर जन्मभर सैकडों लोहेके अंकुशोंको अपने शिरपर खाता रहता है तैसे ही कामातुर पुरुष भी स्त्रीको देखकर संसाररूपी गढ़ेमें गिरपडते हैं सो यह स्त्रीका त्यागरूपी गुण हमने गजसे लिया है सो यह इससे गजको भी अपना गुरु बनाया है ॥ १४ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! हिरनको राग सुननेका वडा भारी व्यसन है और रागके ही पीछे वह वंधायमान भी होजाता है इसी कारण शिकारी तिसको बांध भी लेता है। तैसेही कामी पुरुष भी सुंदर स्त्रियोंके गायनको सुनकर और उनके हावभावरूपी कटाक्षों करके वंधायमान भी होजाता है सो श्रोत्र इन्द्रियका विषय सुंदर गायन है सो तिसको बंधनका हेतु जानकर उसका त्यागरूपी गुण हमने मृगसे लिया है इससे मृगको भी हमने गुरु बनाया है ॥ १५ ॥

दत्तात्रेंयजी कहते हैं—हे राजन्! जैसे मछली आहारके लोभसे कुंडीमें फँस जाती है तैसे ही आहारके लोभसे पुरुष भी परतन्त्र होजाता है और परतन्त्र होकर अनेक प्रकारके दुःखोंको उठाता है सो आहारके लिये भोगका त्याग हमने मछलीसे सीखा है इसवास्ते तिसको भी हमने गुरु बनाया है ॥ १६ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! निराशतारूपी गुण हमने वेश्यासे लिया है सो दिखाते हैं, किसी नगरमें पिंगला नामक वेश्या रहती थी सन्ध्याके समय वह नित्य ही हारशृंगार करके अपने खिडकीमें ग्राहकके वास्ते बैठती थी जब कि कोई ग्राहक आजाता तब तिसको लेकर सो जाती। एक दिन संध्याको खिडकीमें बैठकर अपने ग्राहककी आशा करनेलगी जब वहुतसी रात्रि बीतगई और कोई भी ग्राहक तिसके पास नहीं आया तव वह उठकर मकानके भीतर चलीगई थोडी देरके पीछे पुरुषकी आशासे फिर वह वाहर निकल आई फिर थोडी देरके पीछे भीतर चलीगई इसी

प्रकार करते जब तिसको आधी रात्रि व्यतीत होगई और कोई भी तिसके पास ग्राहक नहीं पहुँचा तब तिसके मनमें ऐसा विचार उठा कि, हमको धिक्कार है और हमारे इस पेशेको भी धिक्कार है जो मैं व्यभिचार कर्मके लिये कभी बाहरको जाती हूँ और कभी भीतरको जाती हूँ, यदि मैं परमेश्वरके साथ मिलनेकी इतनी आशा लगाती तो क्या जाने मैंने कौनसी उत्तम पदवी प्राप्त होजाती ऐसे कहकर जब वह निराश होगई तब भीतर जाकर बडे आनन्दके साथ सोभी रही सो यह निराशतारूपी गुण हमने वेश्यासे ग्रहण किया है इसलिये वेश्याको भी हमने गुरु बनाया है और योगवासिष्ठमें भी रामजीने आशाको ही बन्धनका हेतु कहा भी है-

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते विश्वम् ॥ १ ॥

अन्यच्च-

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ २ ॥
ते धन्याः पुण्यभाजस्ते तैस्तीर्णः क्लेशसागरः।
जगत्संमोहजननी यैराशाऽऽशीविषी जिता ॥ ३ ॥

इस संसारमें जो पुरुष आशाके दास होरहे हैं अर्थात् जिन्होंने स्त्री पुत्र धनादिकोंकी प्राप्तिकी और चिरकाल तक जीनेकी आशा लगाई है उनको सब लोगोंका दास ही होना पडता है और आशाको जिन्होंने अपनी दासी बनालिया है संपूर्ण जगत् उनका दास बनगया है ॥ १ ॥ उसी पुरुषने संपूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन करलिया है और उसीने शास्त्रका श्रवण भी किया जिसने आशाको पीछे हटाकर निराशताको अंगीकार करलिया है ॥ २ ॥ संसारमें वेही पुरुष धन्य हैं और पुण्य आत्मा भी हैं जो कि, दुःखरूपी संसारसे तरगये हैं और जिन्होंने जगत्को मोहन करनेवाली आशाका नाश करदिया है ॥ ३ ॥ आशा ही जन्म मरणका हेतु है जो निराश हो गये हैं वेही मुक्त होगये हैं ॥ १७ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--कि, हे राजन् ! कुरर नामक एक पक्षी होता है उस कुरर पक्षीको कहींसे एक मांसका टुकडा मिला तिसको लेकर वह आकाश मार्गसे उम्मेदपर उडा जाता था कि, कहींपर वैठकरके इसको मैं खाऊँगा। तिस पक्षीके मुखमें पकडे हुए टुकडेको देखकर और भी पक्षी तिसको छीननेके वास्ते तिसके पीछे दौडे और तिसको मारने लगे उस कुरर पक्षीने देखा कि, इस मांसके टुकडेके लिये सव पक्षी मेरेको मारते हैं यदि मैं इसको फेंक देऊंगा तो यह मेरेको नहीं मारेंगे ऐसा विचार करके उसने तिस टुकडेको भूमिपर फेंक दिया तव सव पक्षियोंने तिसको मारना भी छोड दिया और वह भी मारखानेसे बचगया। इसी प्रकार पुरुषने भी जबतक भोगोंको पकड रक्खा है तवतक दुष्ट तस्करादि-कोंकी मारको पडा खाता है जब त्याग कर देता है तब उनकी मारसे वच जाता है। सो भोगोंका त्यागरूपी गुण मैंने कुरर पक्षीसे लिया है इसवास्ते मैंने कुरर पक्षीको भी गुरु बनाया है ॥ १८ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे दूध पीनेवाले वालकको किसी प्रकारकी भी चिन्ता नहीं होती है किन्तु दूधको पान करके अपने आनन्दमें मग्न होकर वह पडा रहता है और आनन्दसे हँसताही रहता है तैसे भिक्षान्नको भोजन करके हम भी चिन्तासे रहित होकर पडे रहते हैं। यह गुण हमने दूध पीनेवाले वालकसे लिया है इस लिये तिसको भी हमने गुरु माना है ॥ १९ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! एक ग्राममें हम भिक्षाके वास्ते गये और वहां देखा कि एक ब्राह्मणके घरके और सब लोग तो कहीं गये थे एक कुमारी कन्या ही अकेली घरमें थी और एक भिक्षुकने आकर उसीके द्वारपर हरिनारायण जगाया, तब कन्याने कहा महाराज ठहर जावो मैं धानोंको कूटकर चावल निकाल करके आपके प्रति भिक्षाको देती हूं भिक्षुक तो वाहर खडा होगया और भीतर घरमें वह कन्या जब धानोंको कूटने लगी तब तिसके हाथकी चूडियाँ छन २ करने लगीं उनके छन २ शब्दसे कन्याको लज्जा आई तब वह एक २ करके उतारने लगी जब दो बाकी रहगई तब भी थोडा २ शब्द होता ही रहा, जब एक ही बाकी रह गई तब शब्दका होना भी वन्द होगया तब सो मुझे यह निश्चय हुआ कि—

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ।
एकाकी विचरेद्विद्वान्कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १ ॥

बहुतसे आदमियोंमें निवास करनेसे नित्य ही लडाई झगडा होता एवं दोके इकट्ठा रहनेसे भी बातें होती हैं विचार ध्यान नहीं होता है इ वास्ते विद्वान् कुमारीके कंगनकी तरह अकेला ही विचरे सो हे राजन् अकेला रहना यह गुण हमने कुमारी कन्यासे लिया है इस वास्ते हम तिसको भी गुरु बनाया है ॥ २० ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं हे राजन् ! जैसे सर्प अपना घर नहीं बनाता है किन्तु बने बनाये घरमें वह रहता है तैसे हम भी अपने घरको नहीं बनाते हैं किन्तु बने बनाये मन्दिरों और गुफाओंमें रहते हैं यह गुण हमको सर्पसे मिला है इस लिये हमने सर्पको भी अपना गुरु बनाया है ॥ २१ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! किसी नगरके बाजारमें अपनी दूकानपर एक वाणोंका बनानेवाला वाण बनारहा था और वाणके सीधा करनेमें उसकी दृष्टि जमी थी, दैवयोगसे उसी समय राजाकी सवारी आ निकली पर तिसकी दृष्टि सवारीपर न गई क्योंकि वह वाणको सीधा करनेके लिये एक दृष्टिसे देखरहा था जब राजाकी समस्त सेना तिसके आगेसे निकल गई तब पीछेसे एक सवारने आकर उससे पूछा कि क्या इधरको राजाकी सवारी गई है ? तब उसने कहा हम नहीं जानते हैं

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! तिसका मन वाण बनानेमें ऐसा एकाग्र हुआ था जिससे सामनेसे भी जाती हुई फौजको उसने नहीं देखा था इस मनके एकाग्र करनेका गुण हमने उस वाण बनानेवालेसे सीखा है इस वास्ते हमने उसको भी गुरु बनाया है ॥ २२ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे मकडी एक छोटासा जीव होता है वह अपने मुखसे तारको निकालकर फिर उसीमें फँस जाता है तैसे जीव भी अपने मनसे अनेक प्रकारके संकल्परूपी तारोंको निकालकर फिर उन्हींमें फँसजाता है । सो मनके संकल्पोंका त्याग हमने मकडीसे सीखा है इसवास्ते मकडीको भी हमने गुरु बनाया ॥ २३ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं हे राजन् ! भृंगी एक जीव होता है सो एक कीटको पकडकर अपने घोसलेमें उसको ला करके अपने सन्मुख रखकर शब्दको करता है। वह कीट उसी भृंगीके शब्दको सुनकर भृंगीरूप होकर और फिर तिस भृंगीमें मोहका त्याग करके उड जाता है तैसे हम भी इस देहमें आत्माका ध्यान करके आत्मरूप होकर देहमें मोहको नहीं करते हैं सो देहमें मोहका त्यागरूपी गुण हमने भृंगीसे सीखा है इसवास्ते तिसको भी हमने गुरु बनाया है ॥ २४ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! मेरेको चौवीस गुरुओंसे परमार्थका बोध हुआ है इसलिये मैं अब अपने स्वरूपमें स्थित हूं आत्मानन्दको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त होकरके संसारमें विचरता हूं । इसीवास्ते मैं चिन्तासे रहित होकर और निर्द्वन्द्व होकरके विचरता हूं । दत्तात्रेयजीके उपदेशसे राजाको भी आत्मज्ञानका लाभ हुआ और राजा भी मोहसे रहित होकर अपने घरको चलेगये और दत्तात्रेयजी फिर मस्त हस्तीकी तरह आत्मानन्दमें मग्न होकर विचरनेलगे । आठ महीना तो दत्तात्रेयजी एक स्थानसे निरन्तर ही रहते थे किन्तु जहाँ तहाँ रागसे रहित होकरके विचरते ही रहते थे और वर्षाऋतुके चतुर्मासमें निरन्तर एक स्थानमें रहजाते थे । सो चतुर्मासमें जिन २ स्थानोंमें उन्होंने निवास किया है वह २ स्थान आजतक उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है और तीर्थरूप करके पूजे भी जाते हैं क्योंकि जिस २ स्थानमें स्थित होकर महात्मा लोग तप या निवास करते हैं वह स्थान तीर्थरूप और दूसरोंको पवित्र करनेवाला होजाता है । दत्तात्रेयजीका एक स्थान गोदावरीके किनारेपर नासिकसे कुछ दूर है और दूसरा जूनागढसे तीन मील पर गिरनार पर्वतपर है, तीसरा काश्मिरके श्रीनगरशहरसे दो मील दूर एक पर्वतपर है और भी बहुतसे स्थान उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके जीवन चरित्रसे यह वार्ता सिद्ध होती है कि जितना गुण जिससे जिसको मिलजाय वह उतने गुणका उसको गुरु मान लेवे और वह गुण चाहे व्यवहारको सुधारनेवाला हो चाहे परमार्थको सुधारनेवाला हो और गुणका लेना सबसे उचित है, दोषको छोडदेना भी एक गुण है और

कानमें फूँक लगाकर आजकल जो गुरु बन जाते हैं वह तो एक आपनी जीविकाके वास्ते करते हैं । आजकल भारतवर्षमें दम्भ पाखण्ड बहुत बढ़गया है इसीवास्ते दम्भियोंने वेद और शास्त्रकी रीतिको हटाकर अपने नये २ पाखण्डोंको चलाकर नये २ मंत्रोंको बनाकर मूर्खोंके कान फूँककर अपने पशु बनालेते हैं वह मूर्ख भी उनके पूरे २ पशु बनजाते हैं और उन दम्भियों पाखण्डियोंकी पूजा सेवाआदि करते हैं सो उनका ऐसा व्यवहार वेदशास्त्रसे विरुद्ध होनेसे नरकका ही हेतु है इसीवास्ते उनको इस लोक और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता है इसवास्ते मुमुक्षुको उचित है कि, स्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनकर संसारमें विचरे किसी चालाकके फंदेमें फँसकर कान फुँकवाये तिसका पशु न बनैं जो वेदान्ती कहाते हैं और फिर कान फुँकवाकर दूसरेके पशु बनते हैं वह अत्यन्त मूर्ख हैं । और जो चेलोंके कान फुँककरके उनके गुरु बनते हैं वह भी वेदशास्त्रकी रीतिसे स्वार्थी मूर्खही कहे जाते हैं क्योंकि वेदशास्त्रमें ऐसा लेख नहीं है किन्तु शिष्यके संदेहोंको दूर करके तिसको आत्मज्ञानका उपदेश करके तिसके अज्ञानको दूर करदेना ही वेदान्तमें गुरुशिष्यकी रीति है। देखो रामजीने वसिष्ठजीसे कान फुँकवाकर कोई भी मंत्र नहीं सुना किन्तु हजारों प्रश्न किये थे और उनके उत्तरोंको देकर जब वसिष्ठजीने उसके अज्ञानको दूर कियाथा तब रामजीने वसिष्ठजीको गुरु माना है इसी तरह अर्जुननेभी श्रीकृष्णजीसे अनेक प्रश्न किये जिनकी कि गीता बनी है, जब अर्जुनके सब संदेह दूर होगये थे तब भगवानको गुरु माना था कान नहीं फुँकवाये थे ऐसेही जनकजीने याज्ञवल्क्यको गुरु बनायाथा कान नहीं फुँकवाये थे । शुकदेवजीने जनकजीको गुरु बनाया था कानोंमें उनसे मंत्र नहीं सुनाथा । याज्ञवल्क्यजीने सूर्यसे उपदेश लिया था कान नहीं फुँकवाये थे । नचिकेताने यमराजसे आत्मविद्याको लिया था कान नहीं फुंकवाये थे । विदुरजीने सनत्कुमारोंसे आत्मविद्याको ग्रहण कियाथा कान नहीं फुँकवाये थे, कहाँ तक कहैं इसी प्रकार और भी बडे २ तत्त्ववेत्ता वेदान्ती पूर्व युगोंमें हुए हैं और इस युगमें भी गुरु नानकजीसे आदि लेकर महात्मा

वेदान्ती हुए हैं उन्होंने भी किसीसे नहीं फुँकवायेथे इन्हीं युक्तियोंसे और उपनिषदादिके प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि, वेदान्तके सिद्धान्तमें कान फूंककर गुरु बनना और कान फुंकवाकर चेला बनना यह व्यवहार नहीं है इससे जो कि ऐसा करते हैं वह मूर्ख या दंभी पाखंडी कहे जाते हैं जो कर्मी हैं, वेदान्ती नहीं हैं और द्विज हैं उनके लिये संस्कारोंके समयमें यज्ञोपवीत करानेवालेसे गायत्री मंत्रका उपदेश लेना कहा है क्योंकि विना गायत्री मंत्रके शूद्र ही होता है और फिर गायत्रीमंत्रके ऊपर दूसरा कोई भी शिवमंत्र या और कोई भी मंत्र लेकर गुरु बनाना द्विजातिके वास्ते नहीं लिखा है जो कर्मी कहाते हैं और फिर गायत्रीमंत्रके ऊपर अपना दूसरा शिवादिकोंका मंत्र कानोंमें फूँककर गुरु बनकर चेलोंके धनको वंचन करते हैं वह दम्भी कलियुगी गुरु कहे जाते हैं और वह चेले भी मूर्ख ही कहे जाते हैं। बस पूर्वोक्त युक्तियोंसे यह वार्ता सिद्ध होती है कि, आजकलके कलियुगी मनुष्य वेद और शास्त्रके विरुद्ध व्यवहारका प्रचार करके लोगोंके और अपने धर्मका नाश कर रहे हैं इस वास्ते मुमुक्षु पुरुषोंको उचित है कि, श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनें और कलियुगी गुरुओंके फंदेमें न फँसे और हरएक महात्माओंके सत्संगसे गुणोंको ग्रहण करके संसारमें राजा जनककी तरह या श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह हो करके विचरें ॥

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके जीवनवृत्तान्तका तो संक्षेपसे वर्णन करदिया अब उनकी बनाई हुई जो "अवधूतगीता" है जिसमें कि, उन्होंने अपने अनुभवका निरूपण किया है तिसकी भाषाटीकाका प्रारम्भ करेंगे। जिसको पढकर सब लोग लाभ उठावेंगे. इस टीकामें प्रथम ऊपर मूल फिर नीचे पदच्छेद तिसके नीचे पदार्थ अर्थात् प्रत्येक पदका अर्थ फिर नीचे भावार्थ लिखा है जिसको कि, थोडासा भी हिन्दीका बोध होगा वह भी इसके तात्पर्यको भले प्रकारसे जान लेवेगा।

इति श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका वृत्तान्त।

अवधूतगीताकी विषयानुक्रमणिका ।

इति अवधूतगीताकी विषयानुक्रमणिका संपूर्ण ।

अथावधूतगीता ।

भाषाटीकासहिता ।

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना ।
महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ईश्वरानुग्रहात्, एव, पुंसाम्, अद्वैतवासना, महद्भयपरित्राणा, विप्राणाम्, उपजायते ॥

पदार्थः ।

ईश्वरानुग्रहात् = ईश्वरके अनुग्रह (कृपा) से
एव = निश्चय करके
पुंसाम् = पुरुषोंके मध्यमें
विप्राणाम् = विप्रोंको
महद्भयपरित्राणा = महान् भयसे रक्षाको करनेवाली
अद्वैतवासना = अद्वैतकी वासना
उपजायते = उत्पन्न होती है ।

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—ईश्वरकी कृपासे ही पुरुषोंको अद्वैतकी वासना अर्थात् जीव और ब्रह्मके अभेदकी वासना उत्पन्न होती है । अब इसमें यह शंका होती है कि, यदि ईश्वरके अनुग्रहसे ही अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होती हैं, तब सभीको अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होनी चाहिये ।

क्योंकि ईश्वरका अनुग्रह जीवमात्रपर है, भगवद्गीतामें भी भगवान्ने कहा है–" समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः " भगवान् कहते हैं, मैं संपूर्ण प्राणियोंमें सम हूँ, मेरा किसीके साथ द्वेष और प्रियत्व नहीं है। इस वाक्यसे ईश्वरका अनुग्रह सब जीवोंपर तुल्य ही सिद्ध तो होता है परन्तु अद्वैतकी वासनायें सबको उत्पन्न नहीं होती हैं तो फिर दत्तात्रेयजीने कैसे कहा। कि ईश्वरके अनुग्रहसे अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होती हैं? इस शंकाका यह उत्तर है–भगवद्गीतामें ही भगवान्ने कहा है–"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् " जो पुरुष जिस जिस कामनाको लेकरके मेरा भजन करते हैं उनको मैं भी उसी प्रकारसे भजता हूं। सो श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका कहनेका तात्पर्य है कि, जो पुरुष निष्काम होकर परमेश्वरकी उपासनाको करता है उसीके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह होता है और ईश्वरके अनुग्रहसे ही अद्वैतकी वासनायें भी उत्पन्न होती हैं। (पुंसाम्) पुरुषोंको अर्थात् चारों वर्णोंमेंसे किसी वर्णका भी हो, क्योंकि आत्मज्ञानमें मनुष्यमात्रका अधिकार है। जब कि मनुष्यमात्रपर उसकी उपासनाद्वारा कृपा हो जाती है तब फिर जो कि वेदके अभ्यास करके विप्रपदवीको प्राप्त हुए हैं, वे यदि ईश्वरकी उपासनाको करें तब उनके ऊपर ईश्वरकी कृपा क्यों नहीं होवेगी? किन्तु अवश्य ही होवेगी इसी तात्पर्यको लेकर विप्रोंको भी कह दिया। ननु अद्वैतवासना उत्पन्न होनेसे फिर फल क्या होवेगा? उच्यते–" महद्भयपरित्राणा " अर्थात् जन्ममरणरूपी जो महान् भय है उससे वह अद्वैतकी वासनायें रक्षा कर देंगी अर्थात् जन्ममरणरूपी संसारचक्रसे वह छूट करके ब्रह्मरूप होजायगा॥ १॥

ननु–ग्रन्थके आदिमें श्रेष्ठ पुरुष मंगलाचरणको करते हैं अर्थात् अपने इष्टदेवको नमस्कार करके पीछे ग्रन्थका आरम्भ करते हैं; सो इस ग्रन्थके आदिमें स्वामीजीने मंगलाचरणको क्यों नहीं किया है? उच्यते–जीवन्मुक्तोंका मंगलाचरण इतर प्राकृत भेदवादी पुरुषोंकी तरह नहीं होता है, क्योंकि उनको सर्वत्र एक आत्मदृष्टि ही रहती है। सो स्वामिजीने भी भेदका दर्शनरूपी मंगलाचरण द्वितीयश्लोक करके दर्शाया है–

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि।
निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम्॥ २॥

पदच्छेदः ।

येन, इदम्, पूरितम्, सर्वम्, आत्मना, एव, आत्मना, आत्मनि, निराकारम्, कथम्, वन्दे, हि, अभिन्नम्, शिवम्, अव्ययम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस
आत्मना=आत्माकरके
एव=निश्चयसे
आत्मनि=अपनेमें ही
आत्मना=अपने करके
इदम्=यह दृश्यमान
सर्वम्=संपूर्ण जगत्
पूरितम्=पूर्ण हो रहा है तिस
निराकारम्=निराकार आत्माको
कथम्=किस प्रकार
वन्दे=मैं वन्दन करूं
हि=क्योंकि वह
अभिन्नम्=जीवसे अभिन्न है फिर वह कैसा है ?
शिवम्=कल्याणस्वरूप है
अव्ययम्=फिर वह अव्यय है ।

भावार्थः ।

जिस आत्माकरके अर्थात् जिस चेतन ब्रह्मकरके यह दृश्यमान संपूर्ण प्रपंच पूर्ण होरहा है अर्थात् संपूर्ण प्रपंचके भीतर और बाहर वही आत्मा व्यापक होकर स्थित है वह जगत् भी जिस चेतनमें शुक्ति और रजतकी तरह कल्पित होकर स्थित है, वास्तवमें नहीं है उस निराकार आत्माको हम कैसे वन्दना करैं अर्थात् उसकी वन्दना करती ही नहीं बनती है, क्योंकि वन्दना उसकी की जाती है जिसका कि, अपनेसे भेद होता है उसका तो भेद नहीं है किन्तु वह अभिन्न है । " अयमात्मा ब्रह्म " यह अपना आत्मा ही ब्रह्म है इत्यादि अनेक श्रुतियां इस जीवात्माको ही ब्रह्मरूप करके कथन करती हैं, फिर यह आत्मा कैसा है ? शिवरूप है अर्थात् कल्याणस्वरूप है फिर वह अव्यय है अर्थात् नाशसे भी रहित है । तात्पर्य यह है कि जब ब्रह्मात्मा अपनेसे भिन्न ही नहीं है अर्थात् अपना आत्मा ही ब्रह्मरूप है तब वन्दना कैसे बन सकती है ? किन्तु कभी नहीं, इसवास्ते इस ग्रन्थके आदिमें अभेदचिंतनरूप ही मंगल किया है ॥ २ ॥

ननु-ब्रह्म चेतन है, जगत् जड है और जड चेतनका अभेद किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है इसीसे अभेदचिंतनरूपी मंगल भी नहीं बनता है ?

पञ्चभूतात्मकं विश्वं मरीचिजलसन्निभम् ।
कस्याप्यहो नमस्कुर्यामहमेको निरञ्जनः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

पञ्चभूतात्मकम्, विश्वम्, मरीचिजलसन्निभम्, कस्य, अपि, अहो, नमस्कुर्याम्, अहम्, एकः, निरञ्जनः ॥

पदार्थः ।

पञ्चभूतात्मकम्=पांच भूतोंका समुदायरूप ही	अहो=इति खेदे
विश्वम्=यह जगत् है और	कस्य=किसको
मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाके जलके सदृश मिथ्या भी है	अहम्=मैं
अपि=निश्चयकरके	नमस्कुर्याम्=नमस्कार करूं, क्योंकि
	एकः=मैं एक ही हूं
	निरञ्जनः=मायामलसे रहित भी हूं,

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जितना दृश्यमान जगत् है सो मृगतृष्णाके जलकी तरह मिथ्या है अर्थात् जैसे मृगतृष्णाका जल वास्तवमें नहीं होता है और भ्रम करके प्रतीत होता है तैसे यह जगत् भी वास्तवमें नहीं है किन्तु अज्ञानकरके अज्ञानी पुरुषोंके सच्चा प्रतीत होता है परन्तु जिसका अज्ञान दूर होगया है उसको मिथ्या प्रतीत होता है। जब कि चेतनसे भिन्न जगत् सब मिथ्या है और मैं एक ही द्वैतसे रहित मायामलसे रहित शुद्ध हूँ तब फिर नमस्कार किसको करूं। नमस्कार तो अपनेसे भिन्न सत्यवस्तु चेतनको किया जाता है। सो अपनेसे भिन्न दूसरा चेतन तो है नहीं और जगत् सब मिथ्या असत्यरूप है। मिथ्या जड़ वस्तुको तो नमस्कार करना बनता नहीं है और एकमें भी यह व्यवहार नहीं बनता है इसवास्ते अभेदका चिंतनरूप मंगल सिद्ध होता है ॥ ३ ॥

आत्मैव केवलं सर्वं भेदाभेदो न विद्यते ।
अस्ति नास्ति कथं ब्रूयां विस्मयः प्रतिभाति मे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

आत्मा, एव, केवलम्, सर्वम्, भेदाभेदः, न, विद्यते, अस्ति, नास्ति, कथम्, ब्रूयाम्, विस्मयः, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः।

आत्मा=आत्मा ही	नास्ति=नहीं है
एव=निश्चयकरके	कथम्=किस प्रकार
केवलम्=केवल है और	ब्रूयाम्=मैं कहूँ
सर्वम्=सर्वरूप भी है तिसमें	विस्मयः=आश्चर्यरूप
भेदाभेदः=भेद और अभेद	मे=मेरेको
न विद्यते=विद्यमान नहीं है	प्रतिभाति=प्रतीत होता है
अस्ति=है और	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—संपूर्ण ब्रह्माण्डमें एक आत्मा ही केवल सत्यरूप है, आत्मासे भिन्न दूसरा कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है किन्तु मिथ्या है और सर्व रूप आत्मा ही है, क्योंकि कल्पित पदार्थकी सत्ता अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती है इसवास्ते सम्पूर्ण विश्व आत्मासे भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व चक्षु इन्द्रिय करके दिखाई पडता है यदि अभिन्न हो तब आत्माकी तरह कदापि दिखाई न पडे और दिखाई भी पडता है इसवास्ते अनिर्वचनीय है। जिसका सत्य असत्यरूपसे कुछ भी निर्वचन न हो सके उसीका नाम अनिर्वचनीय है। जैसे शुक्तिमें रजत, आकाशमें नीलता, रज्जुमें सर्प यह सब जैसे अनिर्वचनीय हैं क्योंकि सत्य होवें तो अधिष्ठानके ज्ञानसे इनका नाश न हो और यदि असत्य होवें तो इनकी प्रतीति न हो परन्तु इनकी प्रतीति होती है और इनका नाश भी होता है इसी प्रकार जगत्की भी प्रतीति होती है और नाश भी इसका होता है इस वास्ते यह अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय पदार्थका अपने अधिष्ठानके साथ भेद अभेद भी नहीं कहा जाता है, क्योंकि सत्यरूप आनन्दरूप ज्ञानरूप चेतन अधिष्ठान ब्रह्मके साथ असद्रूप दुःखरूप जडरूप प्रपञ्चका अभेद कदापि नहीं हो सकता है और भेद भी नहीं होसकता है, क्योंकि सत्य असत्यके अभेदमें कोई

भी दृष्टान्त नहीं मिलता है इसवास्ते यह जगत् नास्ति और अस्ति दोनों रूपोंसे नहीं कहा जाता है। इसी वास्ते विस्मयकी तरह अर्थात् आश्चर्यकी तरह यह जगत् हमको प्रतीत होता है अर्थात् विना हुए मृगतृष्णाकी तरह प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

ननु, दत्तात्रेयजीका सिद्धान्त क्या है?—

वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञानविज्ञानमेव च।
अहमात्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

वेदान्तसारसर्वस्वम्, ज्ञानविज्ञानम्,एव, च, अहम्, आत्मा, निराकारः, सर्वव्यापी, स्वभावतः ॥

पदार्थः।

वेदान्तसार-सर्वस्वम् =वेदान्तका जो सार अद्वैत है वही हमारा सर्वस्व है	अहम्=मैं ही
च एव=और निश्चय करके	आत्मा=आत्मा हूँ और
ज्ञानवि-ज्ञानम् =वही हमारा ज्ञान विज्ञान भी है	निराकार=निराकार भी हूँ
	स्वभावतः=स्वभावसे ही मैं
	सर्वव्यापी=सर्वव्यापी भी हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वेदान्तका सारभूत जो अद्वैत ब्रह्मका चिन्तन है वही हमारा सर्वस्व है और वही हमारा ज्ञान विज्ञान भी है अर्थात् परोक्ष तथा अपरोक्ष ज्ञान भी हमारा वही है और मैं ही व्यापकरूप आत्मा हूँ और निराकार भी हूँ। अणु, ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ आदि आकारोंसे रहित हूँ और स्वभावसे ही मैं सर्वव्यापी भी हूँ ॥ ५॥

यो वै सर्वात्मको देवो निष्कलो गगनोपमः।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः।

यः, वै, सर्वात्मकः, देवः, निष्कलः, गगनोपमः, स्वभावनिर्मलः, शुद्धः, सः, एव, अहम्, न, संशयः ॥

पदार्थः।

यः=जो	स्वभाव- निर्मलः=स्वाभावसे ही निर्मल है
सर्वात्मकः=सर्वरूप	शुद्धः=शुद्ध है
देवः=देव है	स एव=सोई निश्चयकरके
वै=निश्चयकरके	अहम्=मैं हूँ
निष्कलः=निरवयव है	संशयः=संशय इसमें
गगनो- पमः=आकाशकी तरह अडोल है	न=नहीं है।

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो सर्वरूप प्रकाशमान देव है सो निरवयव है और गगन जो आकाश है उसकी उपमावाला भी है अर्थात् जैसे आकाश किसी प्रकारसे भी चलायमान नहीं होता है वैसे वह देव भी अर्थात् प्रकाशस्वरूप ब्रह्म भी चलायमान नहीं होता है और स्वभावसे ही वह निर्मल है, स्वच्छ और शुद्ध भी है सोई निर्मल शुद्ध चेतन ब्रह्म मैं हूँ इसमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

अहमेवाव्ययोऽनन्तः शुद्धविज्ञानविग्रहः।
सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापि वर्तते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः।

अहम्, एव, अव्ययः, अनन्तः, शुद्धविज्ञानविग्रहः, सुखम्, दुःखम्, न, जानामि, कथम्, कस्य, अपि, वर्त्तते ॥

पदार्थः।

अहम्=मैं ही	सुखम्=सुखको और
एव=निश्चयकरके	दुःखम्=दुःखको
अव्ययः=नाशसे रहित हूँ	न जानामि=म नहीं जानता हूँ
अनन्तः=अनन्त भी हूँ और	कथम्=किस प्रकार
शुद्धविज्ञा- नविग्रहः=शुद्ध विज्ञान स्वरूप भी हूँ	कस्य=किसको
	अपि=निश्चयकरके
	वर्तते=वर्तते हैं .

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने अनुभवको कहते हैं—मैं ही अव्यय हूँ अर्थात् नाशसे रहित हूँ, अनन्त हूँ, फिर मैं शुद्धज्ञानस्वरूप हूँ अर्थात् मायामलसे रहित शुद्ध हूँ और ज्ञानस्वरूप हूँ फिर मैं सुख और दुःखको भी नहीं जानता हूँ। तात्पर्य यह है कि, जिसका शरीरादिकोंके साथ अध्यास होता है वही शरीरादिकोंके धर्म जो कि सुखदुःखादिक हैं उनको जानता है अर्थात् दूसरोंके धर्मोंको अपनेमें मानता है,क्योंकि उसका अज्ञान अभी नष्ट नहीं हुआ है और देहादिकोंमें हमारा अध्यास भी नहीं रहा है, अध्यासके नष्ट होजानेसे देहादिकोंमें हमारी अहंता और ममता भी नहीं रही है। अहं—ममताके नाश होजानेसे विषयइन्द्रियोंके सम्बन्धसे जन्य जो सुख दुःख हैं उनको भी मैं नहीं जानता हूँ, सुखदुःखादिक किस प्रकार किसको होते हैं किसमें वर्तते हैं क्योंकि जीवन्मुक्त विद्वान्की दृष्टिमें केवल ब्रह्मके सिवाय दूसरा कोई भी नहीं होता है ॥ ७॥

न मानसं कर्म शुभाशुभं मे
न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे ।
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे
ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम् ॥

पदच्छेदः ।

न, मानसम्, कर्म, शुभाशुभम्, मे, न, कायिकम्, कर्म, शुभाशुभम्, मे, न, वाचिकम्, कर्म, शुभाशुभम्, मे, ज्ञानामृतम्, शुद्धम्, अतीन्द्रियः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मानसम्=मानस
कर्म=कर्म जितने कि
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ हैं
मे न=मेरेको नहीं लगते हैं

कायिकम्=शारीरिक
कर्म=कर्म जो कि
शुभाशुभम्=शुभ अशुभ हैं
मे न=मेरेको नहीं लगते हैं

वाचिकम्=वाणीकृत
कर्म=कर्म भी
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ
मे न=मेरे नहीं है, क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
शुद्धम्=शुद्ध और
अतीन्द्रियः=इन्द्रियोंका अविषय
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

मनुस्मृतिमें कायिक वाचिक मानसिक ये तीन तरहके कर्म लिखे हैं, शरीरके जितने कि अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका नाम कायिक है और वाणीकरके जितने अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका नाम वाचिक है और मनकरके जितने अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका नाम मानसिक है । शरीरकरके जो कर्म होते हैं उनका फल शरीर ही भोगता है, वाणी करके जो कर्म होते हैं उनका फल वाणी ही भोगती है, मनकरके जो अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका फल पुरुष मनकरके ही भोगता है, क्योंकि अज्ञानी पुरुषोंका इनके साथ अध्यास होता है इसवास्ते वह शरीरादिकोंके कर्मोंको अपनेमें मानते हैं, ज्ञानवान् जीवन्मुक्तका इनके साथ अध्यास नहीं रहता है इसवास्ते वह इनके कर्मोंको अपनेमें नहीं मानता है किन्तु वह अपनेको इनसे असंग चिद्रूप मानता है । सो दत्तात्रेयजी कहते हैं जिसवास्ते ज्ञानस्वरूप अमृतरूप शुद्ध और इन्द्रियोंके हम अविषय हैं इसीवास्ते कायिक, वाचिक, मानसिक यह तीन प्रकारके कर्म भी हमारे नहीं हैं किन्तु देहादिकोंके हैं । किन्तु हम इनके साक्षी द्रष्टा हैं । ननु—जबतक शरीर विद्यमान है, ज्ञानी भी खानपानादिक और गमनागमनादिक कर्मोंको करता है तब फिर यह कथन नहीं बनता है कि हमारे ये कर्म नहीं हैं ? उच्यते—जो अपनेमें कर्मोंको मानता है या जिसको शुभ अशुभ कर्मोंका ज्ञान होता है उसीको कर्मोंका फल भी मिलता है । जो न मानता है और न उसको शुभ अशुभ कर्मोंका ज्ञान ही है उसको फल भी नहीं होता है, जैसे बालक और पागल अपनेमें न तो कर्मोंको मानते हैं और न उनको शुभ अशुभ कर्मोंके स्वरूपका ही ज्ञान है इसी वास्ते उनको कर्मोंका फल भी नहीं होता है । इसी प्रकार जीवन्मुक्त ज्ञानवान्‌को भी कायिक वाचिक और मानसिक कर्मोंका फल कुछ भी नहीं होता है, क्योंकि एक तो वह अपनेमें मानता नहीं है,

द्वितीय आत्मानन्दमें वह सर्वकाल मग्न रहता है इसवास्ते उसको उनका ज्ञान भी नहीं । इसी तात्पर्यको लेकरके दत्तात्रेयजीने भी कहा है ॥ ८ ॥

मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम् ।
मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वै, गगनाकारम्, मनः, वै, सर्वतोमुखम्, मनः, अतीतम्, मनः, सर्वम्, न, मनः,परमार्थतः ॥

पदार्थः ।

मनः=मन ही	मनः=मनसे आत्मा
वै=निश्चयकरके	अतीतम्=अतीत है
गगनाकारम्=गगनके आकारवाला	मनः=मन ही
मनः=मन ही [है	सर्वम्=संपूर्ण विश्व है
वै=निश्चयकरके	परमार्थतः=परमार्थसे
सर्वतो=सब ओरको	मनः=मन भी
मुखम्=मुख है	न=सत्य नहीं है

भावार्थः ।

जीवोंका मन जो है सोई गगनके आकारवाला है अर्थात् जिस कालमें मन संकल्पोंको करने लगता है तब संपूर्ण आकाशमें भी व्याप्त हो जाता है फिर मन कैसा है, सर्व ओर मुखवाला है, क्योंकि जिस तरफको संकल्प करता है उधरको ही बेधडक चला जाता है, कोई भी इसकी रुकावट नहीं करसकता है इस वास्ते मनही संपूर्ण विश्वरूप भी है क्योंकि संपूर्ण जगत् इसीका बनाया है वह मन भी परमार्थसे सत्यरूप नहीं है और आत्मा चेतन मनसे भी अतीत और सूक्ष्म है इस वास्ते वही सत्यरूप है ॥ ९ ॥

अहमेकमिदं सर्वं व्योमातीतं निरन्तरम् ।
पश्यामि कथमात्मानं प्रत्यक्षं वा तिरोहितम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एकम्, इदम्, सर्वम्, व्योमातीतम्, निरन्तरम्, पश्यामि, कथम्, आत्मानम्, प्रत्यक्षम्, वा, तिरोहितम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	एकम्=मैं एक ही हूं और
आत्मानम्=आत्माको	इदम्=यह दृश्यमान
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष	सर्वम्=सर्वरूप भी हूं और
वा=अथवा	निरन्तरम्=निरन्तर
तिरोहितम्=तिरोहित	व्योमातीतम्=आकाशसे भी सूक्ष्म हूँ ।
कथम्=किस प्रकार	
पश्यामि=देखूं, क्योंकि	

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं--हम आत्माको प्रत्यक्ष अर्थात् अपरोक्ष और तिरोहित अर्थात् परोक्ष कैसे देखें, क्योंकि वह आत्मा एक है और देखना जो होता है सो भेदको लेकर अपनेसे भिन्नका ही होता है जब कि आत्मासे भिन्न दूसरी वस्तु ही कोई नहीं है तब देखना कैसे हो सकता है। ननु-यद्यपि आत्मा एक भी है तथापि जगत् दृश्यमान तो उससे भिन्न हैं इस वास्ते जगत्का देखना तो बन जावेगा ? उच्यते-यह सम्पूर्ण जगत् भी आत्मरूप ही है क्योंकि कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती है इसीपर स्वामीजी कहते हैं-वह निरन्तर आत्मा एक ही है और आकाशसे भी अति सूक्ष्म है । इसी अर्थको श्रुति भी कहती है-**"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन"** वह ब्रह्म चेतन एक ही द्वैतसे रहित है इस ब्रह्ममें जो कि नानारूप करके जगत् प्रतीत होता है सो वास्तवमें नहीं है ॥ १० ॥

त्वमेवमेकं हि कथं न बुध्यसे
समं हि सर्वेषु विमृष्टमव्ययम् ।

सदोदितोऽसि त्वमखण्डितः प्रभो
दिवा च नक्तं च कथं हि मन्यसे ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, एवम्, एकम्, हि, कथम्, न, बुध्यसे, समम्, हि, सर्वेषु, विमृष्टम्, अव्ययम्, सदा, उदितः, असि, त्वम्, अखण्डितः, प्रभो, दिवा, च, नक्तम्, च, कथम्, हि, मन्यसे ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू	सदा=सर्वकाल
एवं=निश्चय करके	उदितः=प्रकाशमान
एकं हि=एक ही है	असि=है और
कथम्=क्यों अपनेको	अखण्डितः=भेदसे रहित है
न बुध्यसे=नहीं जानता है	च=और फिर तू
सर्वेषु=सम्पूर्ण शरीरोंमें	दिवा=दिनको
समम्=बराबर तू है	च=और
विमृष्टम्=विचार किया गया है	नक्तम्=रात्रिको
अव्ययम्=नाशसे रहित है	कथं हि=किस प्रकार
प्रभो=हे प्रभो	मन्यसे=मानता है
त्वम्=तूही	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपनेको ही कहते हैं—हे प्रभो ! एक ही ब्रह्मचेतन आत्माको क्यों नहीं जानते हो ? वह कैसा है—सम्पूर्ण प्राणियोंमें सम है अर्थात् तुल्य ही है विमृष्ट अर्थात् विचार किया गया है फिर यह कैसा है अव्यय है नाशसे रहित है सो तुम ही हो फिर तुम सर्वकाल उदित हो अर्थात् प्रकाशमान हो, फिर तुम भेदसे रहित हो, स्वयं स्वप्रकाश होनेपर दिन और रात्रिको तुम कैसे मानते हो, क्योंकि स्वयंप्रकाशमें दिन और रात्रि बन नहीं सकते हैं ॥ ११ ॥

आत्मानं सततं विद्धि सर्वत्रैकं निरन्तरम् ।
अहं ध्याता परं ध्येयमखण्डं खण्डयते कथम्॥१२॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, सततम्, विद्धि, सर्वत्र, एकम्, निरन्तरम्, अहम्, ध्याता, परम्, ध्येयम्, अखण्डम्, खण्डयते, कथम् ॥

पदार्थः ।

एकम्=एक ही	ध्याता=ध्यानका कर्ता हूँ
आत्मानम्=आत्माको	परम्=आत्मा
सततम्=निरन्तर	ध्येयम्=ध्यानका कर्म है इस प्रकार
सर्वत्र=सर्वत्र	अखण्डम्=भेदसे रहित
निरन्तरम्=एकरस	कथम्=किस प्रकार
विद्धि=तुम जानो	खण्ड्यते=भेद कहते हो ?
अहम्=मैं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अधिकारियोंके प्रति कहते हैं—हे अधिकारी जनो ! सर्व तुम एकरस एक ही आत्मा चेतनको ज्योंका त्यों जानो, जब कि, सर्वत्र भेदसे रहित एक ही आत्मा है तब फिर उस एकमें यह भेद कैसे बनता है, जो मैं ध्याता हूँ अर्थात् ध्यानका कर्ता हूँ और आत्मा ध्येय है अर्थात् ध्यानका कर्म है, तो क्यों भेदमें ही सब व्यवहार होता है अभेदमें नहीं होता है। यदि कहो बुद्धि आत्माका ध्यान करता है आत्मा अपना ध्यान नहीं करता है तो हम कहते हैं कि, बुद्धि जड है, जड पदार्थमें ध्यान करनेकी शक्ति ही नहीं है। यदि कहो बुद्धिरूपी उपाधिमें स्थित होकरके आप ही अपना ध्यान करता है सो यह कथन भी नहीं बनता, क्योंकि उपाधि सब आप ही मिथ्या है और कल्पित है वह मिथ्यावस्तु सत्यवस्तुका वास्तवसे भेद भी कदापि नहीं कर सकती है इस वास्ते भेदकी कल्पना सब मिथ्या है, अभेदमें भेदबुद्धि करना इसीका नाम अज्ञान है ॥ १२ ॥

न जातो न मृतोऽसि त्वं न ते देहः कदाचन ।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः ॥१३॥

पदच्छेदः ।

न, जातः, न, मृतः, असि, त्वम्, न, ते, देहः, कदाचन, सर्वम्, ब्रह्म, इति, विख्यातम्, ब्रवीति, बहुधा, श्रुतिः ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू	सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्
न जातः=न तो उत्पन्न हुआ	ब्रह्म=ब्रह्मरूप ही है
असि=है और	इति=इस प्रकार
न मृतः=न मरता है	विख्यातम्=प्रसिद्ध है और
न ते=न तो तुम्हारा	बहुधा=बहुतसी
देहः=देह ही	श्रुतिः=श्रुति भी
कदाचन=कभी है	ब्रवीति=ऐसे ही कथन करती है।

भावार्थः ।

हे शिष्य ! वास्तवसे तो न तू कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता ही है अर्थात् यह जन्म मरण तुम्हारेमें नहीं है क्योंकि तुम एक रस व्यापक हो और तुम्हारा यह देह भी नहीं है क्योंकि वेद आत्माको " अकायम् " अर्थात् शरीरसे रहित कहता है और (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मरूप है । इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रोंमें यह बात प्रसिद्ध है और बहुतसी श्रुतियां भी इसी वार्ताको कहती हैं ॥ १३ ॥

स बाह्याभ्यन्तरोऽसि त्वं शिवः सर्वत्र सर्वदा ।
इतस्ततः कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ॥१४॥

पदच्छेदः ।

सः, बाह्याभ्यन्तरः, असि, त्वम्, शिवः, सर्वत्र, सर्वदा, इतः, ततः, कथम्, भ्रान्तः, प्रधावसि, पिचाशवत् ॥

पदार्थः।

स बाह्या-भ्यन्तरः =सो जो चेतन बाह्य और आभ्यन्तर है वह	त्वम् असि=तू ही है
शिवः=कल्याणस्वरूप	इतः ततः=इधर उधर
सर्वत्र=सब स्थानोंमें	भ्रान्तः=भ्रान्त होकर
सर्वदा=सर्वकाल विद्यमान है सो	पिशाचवत्=पिशाचकी तरह
	कथम्=क्या तू
	प्रधावसि=दौडता फिरता है।

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस चेतन ब्रह्मका पीछे निरूपण किया है जो एक है भेदसे रहित है सोई चेतन सबके बाहर और भीतर भी है और कल्याण-स्वरूप भी है और सर्वत्र एकरस सर्वदा विद्यमान भी है, सो तुम ही हो, जब कि शुद्धस्वरूप चेतन तुम ही हो तब फिर उसकी प्राप्तिके वास्ते पिशाचकी तरह तुम इधर उधर क्या दौडते फिरते हो, किन्तु मत इधर उधर दौडो. अपनेमें ही विचार करके उसको जानो ॥ १४ ॥

संयोगश्च विभागश्च वर्तते न च ते न मे।
न त्वं नाहं जगन्नेदं सर्वमात्मैव केवलम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः।

संयोगः, च, विभागः, च, वर्तते, न, च, ते, न, मे, न, त्वम्, न, अहम्, जगत्, न, इदम्, सर्वम्, आत्मा, एव, केवलम् ॥

पदार्थः।

संयोगः=संयोग	न च=नहीं
च=और	वर्तते=वर्तते हैं
विभागः=विभाग	च=और
ते=तुम्हारेमें	मे=मेरेमें भी
	न=नहीं वर्तते हैं

त्वम्=तुम भी और
अहम्=मैं भी
न=नहीं हैं और
इदम्=यह दृश्यमान
जगत्=जगत् भी
न=वास्तव नहीं है
केवलम्=केवल
आत्मा=आत्मा ही
एव=निश्चयकरके
सर्वम्=सर्वरूप है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे मुमुक्षुजन ! संयोग और विभाग तुम्हारेमें नहीं है और मेरेमें भी नहीं है और तुम हम यह भेद भी एक आत्मामें नहीं बनता फिर यह दृश्यमान जगत् भी वास्तवसे रज्जुमें सर्पकी तरह नहीं है किन्तु सर्वरूप केवल आत्मा ही है आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु स्वरूपसे सत्य नहीं है ॥ १५ ॥

शब्दादिपञ्चकस्यास्य नैवासि त्वं न ते पुनः ।
त्वमेव परमं तत्त्वमतः किं परितप्यसे ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

शब्दादिपञ्चकस्य, अस्य, न, एव, असि, त्वम्, न, ते, पुनः, त्वम्, एव, परमम्, तत्त्वम्, अतः, किम्, परितप्यसे ।

पदार्थः ।

अस्य=इस
शब्दादिपञ्चकस्य=शब्दादिपञ्चकका
एव=निश्चयकरके
त्वम्=तू
न असि=नहीं है और
पुनः=फिर वह
ते=तुम्हारे भी
न=नहीं है
त्वम्=तूही
एव=निश्चयकरके
परमम्=परम
तत्त्वम्=तत्त्व हो
अतः=इसी हेतुसे
किम्=किसवास्ते
परितप्यसे=तुम संतप्त होते हो !

भाषार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तको ही उपदेश करते हैं—यह जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांच विषय हैं, इनके साथ तुम्हारा और तुम्हारे साथ इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि ये सब असद्रूप मिथ्या हैं और तुम सद्रूप चेतन हो, मिथ्या और सत्यका वास्तवसे कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता है और तुम ही परमतत्त्वसार वस्तु भी हो इस वास्ते क्यों संतप्त होते हो ॥ १६ ॥

जन्म मृत्युर्न ते चित्तं बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ ।
कथं रोदिषि रे वत्स नामरूपं न ते न मे ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

जन्म, मृत्युः, न, ते, चित्तम्, बन्धमोक्षौ, शुभाशुभौ, कथम्, रोदिषि, रे, वत्स; नामरूपम्, न, ते, न, मे ॥

पदार्थः ।

जन्म मृत्युः } जन्म और मरण
चित्तम्=चित्तके धर्म हैं
ते न=तुम्हारे नहीं हैं
बन्धमोक्षौ=बन्ध और मोक्ष तथा
शुभाशुभौ=शुभ और अशुभ भी सब चित्तके धर्म हैं
रे वत्स=हे वत्स !
कथम्=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
नामरूपम्=नाम और रूप भी
ते न=तुम्हारे नहीं हैं
मे न=मेरे भी नहीं हैं ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे वत्स ! पैदा होना और मरना ये सब चित्तके धर्म हैं, तुम्हारे नहीं हैं अर्थात् यह सब तुम्हारेमें नहीं हैं और बन्ध मोक्ष तथा शुभ अशुभ जितने कर्म हैं ये भी सब चित्तके ही धर्म हैं तुम्हारे नहीं हैं और नाम रूप भी चित्तके धर्म हैं तुम्हारे और हमारे नहीं हैं क्योंकि हम तो चित्तके साक्षी हैं ॥ १७ ॥

अहो चित्त कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ।
अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात्सुखी भव॥१८॥

पदच्छेदः ।

अहो, चित्त, कथम्, भ्रान्तः, प्रधावसि, पिशाचवत्, अभिन्नं, पश्य, च, आत्मानम्, रागत्यागात्, सुखी, भव ॥

पदार्थः ।

अहो=बडा खेद है	अभिन्नम्=भेदसे रहित
चित्त=हे चित्त !	आत्मानम्=आत्माको
भ्रान्तः=भ्रान्त हुआ	पश्य=तुम देखो और
कथम्=किस प्रकार	रागत्यागात्=रागका त्याग करके
पिशाचवत्=पिशाचकी तरह	सुखी भव=तुम सुखी होजाओ।
प्रधावसि=दौडता फिरता है ?	

भावार्थः ।

हे चित्त ! बडा खेद है तुम भ्रान्त होकर पिशाचकी तरह आत्माको अपनेसे भिन्न जानकरके वनों और पर्वतोंमें पडे खोजते फिरते हो यह तुम्हारी बडी भूल है । तुम आत्माको अभिन्न करके अर्थात् भेदसे रहित देखो और विषयोंमें रागका त्याग करके सुखी हो जाओ क्योंकि जब तक राग है तबतक ही दुःख है, रागका अभाव होजानेसे दुःखका भी अभाव होजाता है ॥ १८ ॥

त्वमेव तत्त्वं हि विकारवर्जितं
निष्कम्पमेकं हि विमोक्षविग्रहम् ।
न ते च रागो ह्यथवा विरागः
कथं हि सन्तप्यसि कामकामतः ॥ १९॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, एव, तत्त्वम्, हि, विकारवर्जितम्, निष्कम्पम्, एकम्, हि, विमोक्षविग्रहम्, न, ते, च, रागः, हि, अथवा, विरागः, कथम्, हि, सन्तप्यसि, कामकामतः ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू ही
एव=निश्चयकरके
तत्त्वम्=आत्मस्वरूप है और
हि=निश्चयकरके
विकारवर्जितम्=विकारसे भी तू रहित है
निष्कम्पम्=निष्कम्प और
एकम् हि=एक ही
विमोक्षविग्रहम्=मोक्षस्वरूपभी तू है
च=और
ते=तुम्हारे
रागः=राग
वा=अथवा
विरागः=विराग भी
न=नहीं है
कामकामतः=तो फिर कामोंकी कामनासे
हि=निश्चय करके
कथम्=किस प्रकार
संतप्यसि=सन्तप्त होता है ?

भावार्थः ।

तुम ही चेतन आत्मस्वरूप षड्विकारोंसे रहित हो और निष्कम्प हो अर्थात् किसी देवता विशेषकरके कम्पायमान होनेके योग्य भी तुम नहीं हो किन्तु अचल हो और विशेष करके तुम ही मोक्षस्वरूप भी हो । जिसवास्ते तुम मुक्तरूप हो इसवास्ते तुम्हारे राग और विरागका भी कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि राग और विराग बन्धवालेमें ही रहते हैं, फिर तुम कामोंकी कामनाकरके क्यों सन्तप्त होते हो ॥ १९ ॥

वदन्ति श्रुतयः सर्वा निर्गुणं शुद्धमव्ययम् ।
अशरीरं समं तत्त्वं तन्मां विद्धि न संशयः ॥२०॥

पदच्छेदः ।

वदन्ति, श्रुतयः, सर्वाः, निर्गुणम्, शुद्धम्, अव्ययम्, अशरीरम्, समम्, तत्त्वम्, तत्, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

सर्वाः=सम्पूर्ण
श्रुतयः=श्रुतियां आत्माको
निर्गुणम्=निर्गुण ही
वदन्ति=कथन करती हैं और उसीको
शुद्धम्=शुद्ध
अव्ययम्=नाशसे रहित
अशरीरम्=शरीरसे रहित
समम्=सबमें समरूप और
तत्त्वम्=तत्त्व कथन करती है
तत्=सोई
माम्=मेरेको
विद्धि=तुम जानो
न संशयः=इसमें संशय नहीं है।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सम्पूर्ण श्रुतियाँ आत्माको निर्गुण अर्थात् सत्त्व रज, तम इन तीनों गुणोंसे रहित कथन करती हैं और मायामलसे भी रहित कथन करती हैं, नाशसे भी रहित और शरीरसे भी रहित तथा सबमें समरूप करके ही आत्माको कथन करती हैं। सो पूर्वोक्त विशेषणोंकरके युक्त जो आत्मा है सो तू हे चित्त ! मेरेको ही जान इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार अपने चित्तको अपना अनुभव कहते हैं ॥ २० ॥

साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम् ।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसंभवः ॥२१॥

पदच्छेदः ।

साकारम्, अनृतम्, विद्धि, निराकारम्, निरन्तरम्, एतत्तत्त्वोपदेशेन, न, पुनः, भवसम्भवः ॥

पदार्थः ।

साकारम्=साकारको
अनृतम्=मिथ्या
विद्धि=तू जान और
निराकारम्=निराकारको
निरन्तरम्=सद्रूप जान
एतत्तत्त्वोपदेशेन=इसी तत्त्वके उपदेशसे
पुनः=फिर
भवसम्भवः=संसारका होना
न=नहीं होवेगा ।

भावार्थः।

ब्रह्माण्डके भीतर जितने साकार पदार्थ दिखाई पड़ते हैं इन सबोंको तुम मिथ्या जानो और जो कि सबको सत्ता देनेवाला निराकार चेतन है उसको तुम सद्रूप करके जानो यही यथार्थ उपदेश है। इसके धारण करनेसे फिर जन्ममरणरूपी संसार जीवको कदापि नहीं होता है ॥ २१ ॥

एकमेव समं तत्त्वं वदन्ति हि विपश्चितः ॥
रागत्यागात्पुनश्चित्तमेकानेकं न विद्यते ॥ २२ ॥

पदच्छेदः।

एकम्, एव, समम्, तत्त्वम्, वदन्ति, हि, विपश्चितः, रागत्यागात्, पुनः, चित्तम्, एकानेकम्, न, विद्यते ॥

पदार्थः।

विपश्चितः=विद्वान् जन
एव हि=निश्चय करके
एकम्=एक ही
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको
समम्=समरूप
वदन्ति=कथन करते हैं

रागत्यागात्=रागके त्याग देनेसे
पुनः=फिर
चित्तम्=चित्त
एकानेकम्=द्वैत अद्वैतको भी
न विद्यते=नहीं जानता है।

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—विपश्चित् जो ज्ञानवान् हैं सो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें एक ही आत्मतत्त्वको समरूप करके कथन करते हैं। जो आत्मा सर्वत्र एक है और सबमें सम है अर्थात् प्राणिमात्रमें तुल्य ही है, विषयोंमें राग करके ही जीवोंका अनेक आत्मा भान होरहे हैं। जब चित्त रागका त्याग कर देता है तब उसे अनेक अर्थात् द्वैत अद्वैतका भान नहीं होता है किन्तु आत्मा ही ज्योंका त्यो एकरस अपनी महिमामें स्थित हो जाता है ॥ २२ ॥

अनात्मरूपं च कथं समाधि-
रात्मस्वरूपं च कथं समाधिः।

अस्तीति नास्तीति कथं समाधि-
मौक्षस्थरूपं यदि सर्वमेकम् ॥ २३ ॥

अनात्मरूपम्, च, कथम्, समाधिः, आत्मस्वरूपम्, च, कथम्, समाधिः, अस्ति, इति, नास्ति, इति, कथम्, समाधिः, मोक्षस्वरूपम्, यदि, सर्वम्, एकम् ॥

पदार्थः ।

अनात्मरूपम्=अनात्मरूपको
समाधिः=समाधि
कथम्=कैसे हो सकती है
च=और
आत्मस्वरूपम्=आत्मस्वरूपकी
कथम्=किस प्रकार
समाधिः=समाधि होती है
च=और
अस्ति इति=है इस प्रकार
नास्ति इति=नहीं है इस प्रकार
कथं समाधिः=कैसे समाधि हो सकती है
मोक्षस्वरूपम्=मोक्षस्वरूप
यदि=जो
सर्वम्=सब
एकम्=एक ही है तब कैसे समाधि होती है।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–संसारमें दो ही पदार्थ हैं, एक तो आत्मा-दूसरे अनात्मा। सो दोनोंमेंसे एकमें भी समाधि व्यवहार नहीं बनता है। समाधि नाम एकाग्रताका है सो जो कि अनात्मरूप जड पदार्थ है उसमें तो समाधि किसी प्रकारसे भी नहीं बनती है क्योंकि उसको तो किसी प्रकारका ज्ञान ही नहीं है और जो कि चेतन आत्मा है वह शुद्ध है और ज्योंका त्यों विक्षेपादिकोंसे रहित अपनी महिमामें स्थित है उसमें भी समाधि नहीं बनती क्योंकि जो कि पहले एकाग्र नहीं उसीको एकाग्र होनेकी इच्छा होती है सो आत्मामें यह बात नहीं है और जो पदार्थ सदैव विद्यमान है उसमें भी समाधि नहीं बन सकती है और जो कि नास्ति है अर्थात् तीनों कालोंमें विद्यमान नहीं है उसमें तो समाधि

संभावना मात्र भी नहीं हो सकती हैं और फिर जो आत्माकी नित्य शुद्ध मुक्तस्वरूप सर्वत्र पूर्ण और एक ही है अर्थात् द्वैतसे रहित है उसमें तो समाधिकी संभावनामात्र भी नहीं बनती है ॥ २३ ॥

विशुद्धोऽसि समं तत्त्वं विदेहस्त्वमजोऽव्ययः ।
जानामीह न जानामीत्यात्मानं मन्यसे कथम्॥२४॥

पदच्छेदः ।

विशुद्धः, असि, समम्, तत्त्वम्, विदेहः, त्वम्, अजः, अव्ययः, जानामि, इह, न, जानामि, इति, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू	आत्मानम्=आत्माको
विशुद्धोऽसि=विशेषकरके शुद्ध है	जानामि=मैं जानतां हूँ
समम्=एकरस	न जानामि=मैं आत्माको नहीं जानता हूँ
तत्त्वम्=आत्मतत्त्व है	
विदेहः=विदेह है तू	
अजः=जन्मसे रहित है	इति=इस प्रकार
अव्ययः=नाशसे रहित है	कथम्=कैसे
इह=लोकमें	मन्यसे=तू मानता है ?

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे चित्त ! अथवा शिष्य ! तू शुद्धस्वरूप है माया-मलसे रहित है और सर्वत्र एकरस सम भी है फिर तू विदेह है अर्थात् वास्तवमें तुम्हारा देहके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि तू अज अर्थात् जन्मसे रहित है इसी वास्ते अव्यय भी है अर्थात् नाशसे भी रहित है। जब ऐसा तेरा स्वरूप है तब फिर तू कैसे कहता है कि मैं आत्माको जानता हूँ, मैं आत्माको नहीं जानता हूँ, क्योंकि इस प्रकारका तेरा कथन युक्त नहीं है ॥ २४ ॥

ननु—इस वार्ताको कौन कहता है कि, तू मैं अज अव्यय हूँ ! उच्यते:—

तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च स्वात्मा हि प्रतिपादितः ।
नेति नेति श्रुतिर्ब्रूयादनृतं पाञ्चभौतिकम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्त्वमस्यादिवाक्यैः, च, स्वात्मा, हि; प्रतिपादितः, नेति, नेति, श्रुतिः, ब्रूयात्, अनृतम्, पाञ्चभौतिकम् ॥

पदार्थः ।

तत्त्वमस्यादिवाक्यैः="तत्त्वमसि" आदि-वाक्योंसे
हि=निश्चयकरके
स्वात्मा=अपना आत्मा ही
प्रतिपादितः=प्रतिपादन किया है
नेति नेति=नेति नेति इस प्रकार
श्रुतिः=श्रुति
ब्रूयात्=कथन करती है
पाञ्चभौतिकम्=पाञ्चभौतिक प्रपञ्च
अनृतम्=सब मिथ्या है ।

भावार्थः ।

वेदने " तत्त्वमसि " आदि वाक्यों करके अपना आत्मा ही प्रतिपादन किया है और श्रुति भी " नेति नेति " अर्थात् यह जितना दृश्यमान जगत् है सो वास्तवसे ब्रह्ममें नहीं है ऐसे कहती है और जितना पाञ्चभौतिक जगत् है यह सब मिथ्या है ॥ २५ ॥

आत्मन्येवात्मना सर्वं त्वया पूर्णं निरन्तरम् ।
ध्याता ध्यानं न ते चित्तं निर्लज्जं ध्यायते कथम् २६

पदच्छेदः ।

आत्मनि, एव, आत्मना, सर्वम्, त्वया, पूर्णम्, निरन्तरम्, ध्याता, ध्यानम्, न, ते, चित्तम्, निर्लज्जम्, ध्यायते, कथम् ।

पदार्थः ।

त्वया=तुम्हारे	ध्यानम्=ध्यान
आत्मना=आत्माकरके	ते न=तुम्हारे नहीं हैं
आत्मनि=आत्मामें	निर्लज्जम्=निर्लज्ज
निरन्तरम्=निरन्तर ही	चित्तम्=चित्त
सर्वम्=सब	कथम्=कैसे
पूर्णम्=पूर्ण है	ध्यायते=ध्यान करता है ?
ध्याता=ध्यानवाला और	

भावार्थः ।

तुम्हारे करके तुम्हारेमें अर्थात् व्यापक तुम्हारे आत्मामें निरन्तर एकरस सम्पूर्ण यह जगत् पूर्ण होरहा है, दूसरा तो कोई भी तुम्हारेसे विना नहीं है । जब कि एक ही चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक है तब फिर मैं ध्यानका कर्ता हूँ, आत्मा ध्येय है, यह व्यवहार कैसे बनता है किन्तु किसी तरहसे भी नहीं बनता है । फिर लज्जासे रहित चित्त ध्यान कैसे करता है ? क्योंकि एकमें तो ध्यान बनता ही नहीं है ॥ २६ ॥

शिवं न जानामि कथं वदामि
शिवं न जानामि कथं भजामि ।
अहं शिवश्चेत्परमार्थतत्त्वं
समस्वरूपं गगनोपमं च ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

शिवम्, न, जानामि, कथम्, वदामि, शिवम्, न, जानामि, कथम्, भजामि, अहम्, शिवः, चेत्, परमार्थतत्त्वम्, समस्वरूपम्, गगनोपमम्, च ॥

पदार्थः ।

शिवम्=कल्याणरूपको
न जानामि=मैं नहीं जानता हूं
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं उसको कहूँ
शिवम्=शिवको
न जानामि=मैं नहीं जानता हूँ
कथम्=किस प्रकार
भजामि=कैसे भजूं

चेत्=यदि
अहम्=मैं ही
शिवः=कल्याणरूप हूं
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थस्वरूप भी हूं
समस्वरूपम्=समस्वरूप भी हूँ
च=और
गगनोपमम्=आकाशके तुल्य भी हूं।

भावार्थः ।

कल्याणरूप ब्रह्मको मैं नहीं जानता हूं अर्थात् ज्ञानेंद्रियों करके मैं उसके स्वरूपको नहीं विषय कर सकता हूं तो फिर मैं कैसे उसके स्वरूपको कहूं ? जब कि वह किसी भी इंद्रिय करके जाना नहीं जाता है तब फिर उसका भजन मैं कैसे करूं ? क्योंकि विना जानेका भजन हो नहीं सकता है। यदि वेद हमको ही शिवरूप करके कथन करता है और मैं ही शिवरूप परमार्थ स्वरूप और आकाशके तुल्य अचल हूं तब भी फिर जानना और भजन नहीं बन सकता है क्योंकि जो चेतन सबको जाननेवाला है उसका जानना किस करके होसकता है ? किन्तु किसी करके भी नहीं हो सकता है ॥ २७ ॥

नाहं तत्त्वं समं तत्त्वं कल्पनाहेतुवर्जितम् ।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं स्वसंवेद्यं कथं भवेत् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

न, अहम्, तत्त्वम्, समम्, तत्त्वम्, कल्पनाहेतुवर्जितम्, ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तम्, स्वसंवेद्यम्, कथम्, भवेत् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तम्=ग्राह्य और ग्राहक व्यवहारसे रहित हूं
तत्त्वम्=तत्त्व	
न=नहीं हूँ और	स्वसंवेद्यम्=स्वसंवेद्य भी
समम्=सम	
तत्त्वम्=तत्त्व भी नहीं हूं	कथम्=कैसे
कल्पनाहेतुवर्जितम्=कल्पना और हेतुसे भी रहित हूं	भवेत्=होवे ?

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं भिन्नतत्त्व और समतत्त्व भी नहीं हूं और कल्पना तथा कल्पनाके कारणसे भी रहित हूं । और ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) तथा ग्राहक (ग्रहण करनेवाला) के व्यवहारसे भी रहित हूँ क्योंकि एकमें ग्राह्यग्राहक व्यवहार ही नहीं बनता है तब फिर स्वसंवेद्यता कैसे बनेगी किन्तु नहीं बनेगी ॥ २८ ॥

अनन्तरूपं नहि वस्तु किञ्चित्
तत्त्वस्वरूपं न हि वस्तु किञ्चित् ।
आत्मैकरूपं परमार्थतत्त्वं
न हिंसको वापि न चाप्यहिंसा ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

अनन्तरूपम्, नहि, वस्तु, किञ्चित्, तत्त्वस्वरूपम्, नहि, वस्तु, किञ्चित्, आत्मा, एकरूपम्, पारमार्थतत्त्वम्, न, हिंसकः, वा, अपि, न, च, अपि, अहिंसा ॥

पदार्थः ।

अनन्तरूपम्=ब्रह्म चेतन अनन्तरूप है उससे भिन्न	नहि=नहीं है
	तत्त्वस्वरूपम्=वह ब्रह्म ही वास्तवरूप भी है उससे भिन्न
वस्तु किंचित=किञ्चित् वस्तु भी सत्य रूप	वस्तु किञ्चित्=सद्रूप वस्तु कोई
	नहि=नहीं है, वह

आत्मा=आत्मा ब्रह्म
एकरूपम्=एक रूप ही है और
परमार्थ-तत्त्वम्=परमार्थसे तत्त्वस्वरूप भी है
वा अपि=अथवा निश्चय करके

न हिंसकः=न तो कोई हिंसक है
अपि=निश्चय करके
अहिंसा=अहिंसा भी
न च=नहीं है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्माका अनन्तरूप है अर्थात् उसका अन्त नहीं मिलता है कहांसे कहांतक है, उससे भिन्न और कोई भी वस्तु अनन्त नहीं है किन्तु परिच्छिन्न है, अथवा वह आत्मा अनन्त है अर्थात् नाशसे रहित है और सब वस्तु नाशसे रहित नहीं है किन्तु नाशवान् हैं और आत्मा सदैव एकरूपसे ही रहता है और वही वास्तविक तत्त्व भी है। आत्मासे भिन्न और कुछ भी नहीं है इसवास्ते न तो कोई हिंसक अर्थात् हिंसाका कर्ता है और न अहिंसा वास्तवसे है क्योंकि द्वैतको लेकर के अहिंसा और हिंसकका व्यवहार हो, जब कि द्वैत ही नहीं है तो फिर अहिंसा हिंसकका व्यवहार कैसे होसके, किन्तु कदापि नहीं होसकता है॥२९॥

घटे भिन्ने घटाकाशं सुलीनं भेदवर्जितम् ।
शिवेन मनसा शुद्धो न भेदः प्रतिभाति मे ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

घटे, भिन्ने, घटाकाशम्, सुलीनम्, भेदवर्जितम्, शिवेन, मनसा, शुद्धः, न, भेदः, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

घटे भिन्ने=घटके नाश होनेपर
घटाकाशम्=घटाकाश
सुलीनम्=महाकाशमें लीन होजाता है
भेदवर्जितम्=भेदसे रहित होजाताहै
शिवेन=शुद्ध
मनसा=मनकरके

शुद्धः=शुद्ध प्रतीत होता है इसवास्ते
मे=मेरेको
भेदः=आत्माका भेद भी
न=नहीं
प्रतिभाति=प्रतीत होता है ।

भावार्थः।

जबतक घट बना है तबतक घटाकाश यह व्यवहार भी हो जाता है जब घटका नाश हो जाता है तब घटाकाश यह व्यवहार भी नहीं होता है, क्योंकि घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है। इसी प्रकार जबतक लिंगशरीररूपी उपाधि विद्यमान है तबतक ही जीवव्यवहार भी होता है, आत्मज्ञान करके अज्ञानके नाश होनेपर अज्ञानका कार्य जो लिंगशरीररूपी उपाधि है उसके नाश होनेपर जीवात्मा भी परमात्मामें लीन होजाता है, अर्थात् फिर भेदव्यवहार नहीं होता है और अशुद्ध मनवालेको अशुद्ध भान होता है। शुद्ध मनकरके आत्मा भी पुरुषको शुद्ध प्रतीत होता है। सो दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिसवास्ते शुद्धमन करके शुद्ध आत्माको हमने जान लिया है इसवास्ते आत्माका भेद भी हमको नहीं भान होता है ॥ ३० ॥

न घटो न घटाकाशो न जीवो जीवविग्रहः।
केवलं ब्रह्म संविद्धि वेद्यवेदकवर्जितम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः।

न, घटः, न, घटाकाशः, न, जीवः, जीवविग्रहः, केवलम्, ब्रह्म, संविद्धि, वेद्यवेदकवर्जितम् ॥

पदार्थः।

न घटः=घट नहीं है
घटाकाशः=घटाकाश भी
न=नहीं है
न जीवः=जीव भी नहीं है
जीवविग्रहः=जीवका जीवित्व भी नहीं है
केवलम्=केवल
ब्रह्म=ब्रह्मचेतनको
संविद्धि=तू सम्यक् जान ? कैसा ब्रह्म,
वेद्यवेदकवर्जितम्=जन्यज्ञानके विषयसे है और जन्यज्ञानसे रहित है

भावार्थः।

जब कि एकरस भेदसे रहित ब्रह्म चेतन ही वास्तवसे सद्रूप है तब उपाधिरूप घट भी नहीं है घटके अभाव होनेसे वास्तवसे घटाकाश भी नहीं है,

इसी प्रकार अन्तःकरणरूपी उपाधिके अभावसे जीव भी नहीं है, क्योंकि जीवनमें अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनका है सो अन्तःकरणके मिथ्या होनेसे जीवका विग्रह अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट जीवका स्वरूप भी फिर नहीं रहता है किन्तु केवल अद्वैतसे भले प्रकार तू ब्रह्मको जान- जो कि विषय विषयीभावसे भी रहता है ॥ ३१ ॥

सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मानं सततं ध्रुवम् ।
सर्वं शून्यमशून्यं च तन्मां विद्धि न संशयः॥३२॥

पदच्छेदः ।

सर्वत्र, सर्वदा, सर्वम्, आत्मानम्, सततम्, ध्रुवम्, सर्वम्, शून्यम्, अशून्यम्, च, तत्, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

आत्मानम्=आत्माको ही	शून्यम्=शून्य जान
सर्वत्र=सर्वत्र	च=और आत्माको
सर्वदा=सर्वकाल	अशून्यम्=शून्यसे रहित जान
सर्वम्=सर्वरूप	तत्=सो आत्मा
सततम्=निरन्तर	माम्=मेरेको ही
ध्रुवम्=नित्य	विद्धि=तू जान
विद्धि=तू जान और	न संशयः=इसमें संशय नहीं है।
सर्वम्=सर्व प्रपंचको	

भावार्थः ।

सर्वकाल सर्वत्र सर्वरूप एकरस और नित्य आत्माको ही तुम जानो क्योंकि यह जितना दृश्यमान जगत् है सो सब स्वरूपसे शून्य है अर्थात् वास्तवसे असद्रूप है, और वह आत्मा अशून्य है शून्यसे रहित शून्यका भी वह साक्षी है। दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे शिष्य ! सो आत्मा तुम मुझको ही जानो इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ३२ ॥

वेदा न लोका न सुरा न यज्ञा
वर्णाश्रमौ नैव कुलं न जातिः ।

न धूममार्गौ न च दीप्तिमार्गौ
ब्रह्मैकरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः।

वेदाः, न, लोकाः, न, सुराः, न, यज्ञाः, वर्णाश्रमौ, न, एव, कुलम्, न, जातिः न, धूममार्गः, न, च, दीप्तिमार्गः, ब्रह्मैकरूपम्, परमार्थतत्त्वम् ॥

पदार्थः।

वेदाः=वास्तवसे वेद भी
न=नहीं हैं
लोकाः=लोक भी
न=नहीं हैं
सुराः=देवता भी
न=नहीं हैं
यज्ञाः=यज्ञ भी
न=नहीं हैं
वर्णाश्रमौ=वर्णाश्रम भी
न=नहीं हैं
एव=निश्चयकरके
कुलम्=कुल भी कोई
न=नहीं है
जातिः=जाति भी
न=नहीं है
धूममार्गः=धूममार्ग भी
न=नहीं है
दीप्तिमार्गः=अग्निमार्ग भी
न च=नहीं है
ब्रह्मैकरूपम्=ब्रह्म ही केवल एकरूप
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे तत्त्व वस्तु है।

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजीका तात्पर्य यह है कि, जैसे सुषुप्तिकालमें बाहरका जितना प्रपञ्च है इसका अभाव हो जाता है और जाग्रत् अवस्थामें सब प्रपञ्च ज्योंका त्यों बना रहता है इसी प्रकार चतुर्थी भूमिकावाले ज्ञानीकी दृष्टिमें तो सम्पूर्ण वेद शास्त्र और यज्ञादिक कर्मरूप प्रपञ्च सब बना रहता है। परन्तु जीवन्मुक्त छठी और सप्तमी अवस्थावालेकी दृष्टिमें वेद, लोक, देवता और उत्तरायण दक्षिणायन आदि कुछ भी नहीं रहता है, किन्तु परमार्थसे सद्रूप ब्रह्म ही उसकी दृष्टिमें रहता है उसीकी दृष्टिका यह निरूपण है ॥ ३३ ॥

व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तं त्वमेकः सफलो यदि ।
प्रत्यक्षं चापरोक्षं च ह्यात्मानं मन्यसे कथम् ॥३४॥

पदच्छेदः ।

व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तम्, त्वम्, एकः, सफलः, यदि, प्रत्यक्षम्, च, अपरोक्षम्, च, हि, आत्मानम्, मन्यसे कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि
त्वम्=तू
व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तम्=व्याप्य और व्यापकभावसे रहित है
एकः=एक ही
सफलः=फलके सहित है
हि=निश्चय करके
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
च=और
अपरोक्षम्=अपरोक्ष
आत्मानम्=आत्माको
कथम्=कैसे
मन्यसे=तू मानता है।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तको अग्रणी करके सर्व मुमुक्षुओंके प्रति उपदेश करते हैं—हे शिष्यरूपी चित्त ! तू एक ही सबमें फलके सहित है अर्थात् जीवन्मुक्तिरूपी फलके सहित है, व्याप्य और व्यापकभावसे भी रहित है तब फिर तू आत्माको प्रत्यक्ष और अपरोक्ष कैसे मानता है ? यह व्यवहार तो किसी प्रकार एक ही अपने आत्मामें नहीं बन सकता है और बन्ध मोक्ष व्यवहार भी नहीं बनता है ॥ ३४ ॥

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

अद्वैतम्, केचित्, इच्छन्ति, द्वैतम्, इच्छन्ति, च, अपरे, समं, तत्त्वम्, न, विन्दन्ति, द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥

पदार्थः।

केचित्=कोई एक विद्वान्	च=और वे सब
अद्वैतम्=अद्वैतकी	समं तत्त्वम्=समतत्त्वको
इच्छन्ति=इच्छा करते हैं	न=नहीं
अपरे=और कोई	विन्दन्ति=जानते हैं जो कि
द्वैतम्=द्वैतकी	द्वैताद्वैतविवर्जितम्=द्वैताद्वैतसे रहित है
इच्छन्ति=इच्छा करते हैं	

भावार्थः।

कोई एक आधुनिक मुमुक्षु अथवा आधुनिक वेदान्ती अद्वैतकी ही इच्छा करते हैं परन्तु अद्वैतमें उनका पूरा २ विश्वास नहीं है क्योंकि भक्तोंके सामने तो बडा भारी अद्वैत ज्ञान छाँटते हैं परन्तु जब मरनेका समय आजाता है तब गंगा और काशीमें मरनेके वास्ते दौडते हैं, तिस कालमें अपने भक्तोंसे कहते हैं कि, हमको गंगा या काशी लेचलो जिससे वहांपर हमारे शरीरका त्याग हो, बाजे २ नवीन वेदान्ती हरिद्वार और काशी आदि तीर्थोंमें रहकर भी बरसातके दिनोंमें भी वहींकी नदियोंका मैला जल पीते हैं और उन्हींमें स्नान करके रोगी भी हो जाते हैं तब भी वह अपने हठका त्याग नहीं करते हैं, जड जलादिकोंसे अपने कल्याणको चाहते हैं अद्वैतपर उन मूर्खोंका विश्वास नहीं है उन्हींपर कहा है कि, कोई एक मूर्ख वेदान्ती केवल अद्वैतकी इच्छामात्र ही करते हैं, विश्वास नहीं करते हैं, और कोई एक वैष्णव और आचारी वगैरह मतोंवाले द्वैतकी ही इच्छा करते हैं जो मोक्षावस्थामें भी हम जुदा रहकर विषयभोगोंको भोगते रहें परन्तु वह द्वैतके असली स्वरूपको नहीं जानते हैं इसवास्ते मिथ्या जगत्को वह सत्य मानते हैं और तिलक छापरूपी पाखंडोंको धर्म मानते हैं, जीव ईश्वरके यथार्थ रूपको तो वह जानते ही नहीं हैं इसवास्ते वह भी केवल द्वैतमात्रकी इच्छा करते हैं, अपने कल्याणकी इच्छाको वह नहीं करते हैं इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों ही असली तत्त्वको नहीं जानते हैं वह तत्त्व कैसा है ? द्वैत और अद्वैतसे रहित है, क्योंकि ब्रह्मचेतनसे अतिरिक्त यदि दूसरा कोई सत्यपदार्थ हो तब तो द्वैत है और अद्वैत भी दूसरेकी अपेक्षा करके ही कहा जाता है सो ब्रह्मसे भिन्न जब कि दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है तब द्वैताद्वैतसे भी वर्जित है ॥३५॥

श्वेतादिवर्णरहितं शब्दादिगुणवर्जितम् ।
कथयन्ति कथं तत्त्वं मनोवाचामगोचरम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतादिवर्णरहितम्, शब्दादिगुणवर्जितम्, कथयन्ति, कथम्, तत्त्वम्, मनोवाचाम्, अगोचरम् ॥

पदार्थः ।

श्वेतादिवर्णरहितम्=श्वेतादि वर्णोंसे रहित	अगोचरम्=अविषयको
शब्दादिगुणवर्जितम्=शब्दादि गुणोंसे भी रहित	कथम्=किस प्रकार
	तत्त्वम्=तत्त्व
मनोवाचाम्=मन और वाणीके	कथयन्ति=कथन करते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जिसमें कि श्वेत, पीत आदि वर्ण होते हैं और शब्दादिक गुण होते हैं वही मन और वाणीका विषय होता है अर्थात् उसीको मन और वाणी कथन करते हैं और जो कि निर्गुण ब्रह्म है उसमें तो कोई भी गुण नहीं है अर्थात् श्वेत, पीतादि वर्णभी सब उसमें नहीं हैं और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये गुण भी उसमें नहीं हैं तब फिर तिसको तत्त्वरूप करके कैसे कथन करते हैं अर्थात् तत्त्वरूप करके तिसका कथन भी नहीं बनता है ॥ ३६ ॥

यदाऽनृतमिदं सर्वं देहादि गगनोपमम् ।
तदा हि ब्रह्म संवेत्ति न ते द्वैतपरम्परा ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, अनृतम्, इदम्, सर्वम्, देहादि, गगनोपमम्, तदा, हि, ब्रह्म, संवेत्ति, न, ते, द्वैतपरम्परा ।

पदार्थः।

यदा=जिस कालमें	तदा=उसी कालमें
इदम्=इस दृश्यमान	हि=निश्चय करके
सर्वम्=सम्पूर्ण प्रपञ्चको	ब्रह्म=ब्रह्मको
अनृतम्=मिथ्या जानता है	संवेत्ति=सम्यक् जानता है
देहादि गग- नोपमम् =शरीरादिकोंको आकाशके तुल्य शून्य जानता है	ते=तुम्हारेको तब
	द्वैतपरम्परा=द्वैतकी परम्पराका भी
	न=भान नहीं होवेगा

भावार्थः।

जिस कालमें विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण जगत्को मिथ्या जानलेता है और शरीरादिकोंको आकाशके तुल्य शून्य जान लेता है उसी कालमें ब्रह्मको भी यह भले प्रकार जान जाता है तब द्वैतकी परम्पराका भी भान तिसको नहीं होता है ॥ ३७ ॥

परेण सहजात्मापि ह्यभिन्नः प्रतिभाति मे।
व्योमाकारं तथैवैकं ध्याता ध्यानं कथं भवेत्॥३८॥

पदच्छेदः।

परेण, सहजात्मा, अपि, हि, अभिन्नः, प्रतिभाति, मे, व्योमाकारम्, तथा, एव, एकम्, ध्याता, ध्यानम्, कथम्, भवेत् ॥

पदार्थः।

परेण=परब्रह्मके	व्योमाकारम्=व्यापक है
सहजात्मा=साथ अनादि आत्मा	तथा एव=तैसे ही निश्चय करके
अपि हि=निश्चय करके	एकम्=एक भी है तब फिर
मे=मुझको	ध्याता=ध्यानका कर्ता और
प्रतिभाति=भान होता है फिर कैसा वह है	ध्यानम्=ध्येयाकारवृत्ति
अभिन्नः=ब्रह्मसे अभिन्न है और	कथम्=कैसे
	भवेत्=होवे

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे ब्रह्म चेतन अनादि है तैसें जीव चेतन भी अनादि है और जीव ब्रह्मका अभेद भी हमको भान होता है। फिर वह ब्रह्म चेतन एक है और आकाशकी तरह व्यापक भी है । जब कि चेतन सर्वत्र एकही है तब फिर एकमें ध्याता और ध्यानका व्यवहार कैसे हो सकता है ? किंतु कदापि नहीं. क्योंकि ध्याता ध्यानका व्यवहारभेदको ही लेकरके होता है अभेद दृष्टिको लेकरके नहीं होसकता है। ननु—ज्ञानी लोगभी एकान्तमें बैठकर ध्यान करते हैं और उनको अभेद निश्चय भी है तब फिर आप कैसे कहते हैं कि, ध्याता ध्यानका व्यवहार नहीं होता है ॥ उच्यते—ज्ञानी दो प्रकारके हैं, एक तो चतुर्थभूमिकावाले जो कि आचार्य्य कहेजाते हैं, दूसरी पांचवीं, छठी, सप्तमी इन तीन भूमिकावाले जीवन्मुक्त कहे जाते हैं सो दोनोंमें जो कि चतुर्थ भूमिकावाले हैं वह चित्तके विक्षेपकी निवृत्तिके वास्ते और जिज्ञासुओंकी अन्तर्मुखप्रवृत्ति करानेके वास्ते ध्यानको करते हैं और जो कि जीवन्मुक्त हैं उनके चित्तोंमें विक्षेप नहीं है । अतएव उनकी दृष्टिमें ध्याता ध्यानका व्यवहार भी नहीं है सो उन्हीं जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिको लेकरके दत्तात्रेयजीने कहा है ॥ ३८ ॥

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ।
एतत्सर्वं न मे किञ्चिद्विशुद्धोऽहमजोऽव्ययः ॥३९॥

पदच्छेदः ।

यत्, करोमि, यत्, अश्नामि, यत्, जुहोमि, ददामि, यत्, एतत्, सर्वम्, न, मे, किञ्चित्, विशुद्धः, अहम्, अजः, अव्ययः ॥

पदार्थः ।

यत्=जो कुछ	यत्=जो कुछ
करोमि=मैं करता हूँ	जुहोमि=मैं हवन करता हूं
यत्=जो कुछ	यत्=जो कुछ
अश्नामि=मैं भक्षण करता हूँ	ददामि=मैं देता हूँ

एतत्=यह
सर्वम्=सम्पूर्ण
मे=मेरा
किञ्चित्=किञ्चित्भी
न=नहीं है क्योंकि
अहम्=मैं
विशुद्धः=शुद्धस्वरूप हूं
अजः=जन्मसे रहित हूँ
अव्ययः=नाशसे रहित हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कर्म मैं करता हूँ फिर जो कुछ कि मैं खाता पीता हूँ, और जो कि हवन करता हूँ, जो कुछ देता हूं यह सब कुछ मैं नहीं करता हूं क्योंकि ये सब इन्द्रियोंके धर्म हैं सो इन्द्रिय सब अपने २ धर्मोंको करती हैं। मेरा इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है मैं तो शुद्ध हूं, अज अर्थात् जन्मसे रहित हूँ, नाशसे भी रहित हूँ ॥ ३९ ॥

सर्वं जगद्विद्धि निराकृतीदं सर्वं जगद्विद्धि विकारहीनम्। सर्वं जगद्विद्धि विशुद्धदेहं सर्वं जगद्विद्धि शिवैकरूपम् ॥ ४० ॥

पदच्छेदः।

सर्वम्, जगत्, विद्धि, निराकृति, इदम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, विकारहीनम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, विशुद्धदेहम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, शिवैकरूपम् ॥

पदार्थः।

सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्को
निराकृति=आकारसे रहित
विद्धि=तू जान
इदम्=इस दृश्यमान
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्को
विकारहीनम्=विकारसे रहित
विद्धि=तू जान
सर्वम्=संपूर्ण

जगत्=जगत्को
विशुद्धदेहम्=ब्रह्मका शरीर
विद्धि=तू जान
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्को
शिवैकरूपम्=कल्याणस्वरूप
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे चित्त ! संपूर्ण जगत्को तू निराकार ही जान क्योंकि, कल्पित वस्तु साकार नहीं होती है । जिसवास्ते यह जगत् सब ब्रह्ममें कल्पित है इसवास्ते निराकार है और फिर निराकार वस्तु विकारी भी नहीं होती है इसीवास्ते संपूर्ण इस जगत्को विकारसे रहित जान और इस जगत्को विशुद्ध देह अर्थात् शुद्धस्वरूप तथा कल्याणस्वरूप भी तू जान, क्योंकि शुद्धस्वरूप और कल्याणस्वरूप ब्रह्म कल्पित जगत् भिन्न नहीं है ॥ ४० ॥

तत्त्वं त्वं हि न संदेहः किं जानाम्यथ वा पुनः ।
असंवेद्यं स्वसंवेद्यमात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, त्वम्, त्वम्, हि, न, संदेहः, किम्, जानामि, अथवा, पुनः, असंवेद्यम्, स्वसंवेद्यम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
तत् त्वम्=सो तू है
त्वम् तत्=तू सो है
संदेहः=इसमें संदेह
न=नहीं है
अथवा=अथवा
पुनः=फिर और
किम्=क्या
जानामि=मैं जानूँ
आत्मानम्=आत्माको
असंवेद्यम्=असंवेद्य
स्वसंवेद्यम्=स्वसंवेद्य
कथम्=कैसे तू
मन्यसे=मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सो ब्रह्म तू है और तू ही सो ब्रह्म है इसमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं है क्योंकि वेद भगवान् आप ही इस वार्ताको स्पष्टरूपसे कहता है तो क्या फिर तुम आत्माको असंवेद्य किसीसे भी नहीं जानने योग्य है और (स्वसंवेद्य अपनेसे ही जानने योग्य) ही कैसे मानते हो तात्पर्य यह है कि, जब एक ही चेतन आत्मा ब्रह्म सर्वत्र है तब फिर उपर्युक्त सब व्यवहार किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है ॥ ४१ ॥

मायाऽमाया कथं तात छायाऽच्छाया न विद्यते ।
तत्त्वमेकमिदं सर्वं व्योमाकारं निरञ्जनम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ।

माया, अमाया, कथम्, तात, छाया, अच्छाया, न, विद्यते, तत्, त्वम्, एकम्, इदम्, सर्वम्, व्योमाकारम्, निरञ्जनम् ॥

पदार्थः ।

तात=हे तात
माया=माया और
अमाया=अमाया
कथम्=कैसे है
छाया=छाया और
अच्छाया=अच्छाया
न=नहीं
विद्यते=विद्यमान है

तत्=सो
त्वम्=तू
एकम्=एक ही है
इदम्=यह
सर्वम्=संपूर्ण जगत्
व्योमाकारम्=आकाशके तुल्य आकारवाला
निरञ्जनम्=निरञ्जन ही है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि चेतन निराकार निरवयव एक ही है तब फिर माया और अमाया, छाया और अच्छाया यह सब व्यवहार कैसे

होसकता है? सो ब्रह्म चेतन एक ही है और वह तू ही है। यह जितना कि दृश्यमान जगत् है, सो सब आकाशके तुल्य आकारवाला है अर्थात् ब्रह्मरूप है और वह ब्रह्म मायामलसे रहित है ॥ ४२ ॥

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः इति मे निश्चिता मतिः ॥४३॥

पदच्छेदः ।

आदिमध्यान्तमुक्तः, अहम्, न, बद्धः, अहम्, कदाचन, स्वभावनिर्मलः, शुद्धः, इति, मे, निश्चिता, मतिः ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	स्वभावनिर्मलः=स्वभावसे ही निर्मल हूँ
आदिमध्यान्तमुक्तः=आदि, मध्य और अन्तसे रहित हूँ और	शुद्धः=शुद्ध हूँ
अहम्=मैं	इति=इस प्रकारकी
कदाचन=कभी	मे=मेरी
बद्धः=बद्ध	निश्चिता=निश्चित
न=नहीं हूँ	मतिः=बुद्धि है
अहम्=मैं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जो वस्तु कि अपनी उत्पत्तिसे पहले न हो किन्तु उत्पत्तिसे पीछे हो वह आदिवाली कही जाती है और जो उत्पत्तिसे पहले और नाशसे उत्तर न हो वही मध्यवाली और अन्तवाली भी कही जाती है सो आत्मा ऐसा नहीं है किन्तु आदि, मध्य, अन्त तीनोंसे रहित अर्थात् न तिसका कोई आदि है, न मध्य है, न अन्त है, किन्तु एकरस ज्योंका त्यों है सो मेरा स्वरूप है इसवास्ते मैं कदापि बद्ध नहीं होता हूँ और स्वभावसे ही निर्मल हूँ,शुद्ध हूँ ऐसा मेरा निश्चय है ॥४३॥

महदादि जगत्सर्वं न किञ्चित्प्रतिभाति मे।
ब्रह्मैव केवलं सर्वं कथं वर्णाश्रमस्थितिः॥ ४४॥

पदच्छेदः।

महदादि, जगत्, सर्वम्, न, किञ्चित्, प्रतिभाति, मे, ब्रह्म, एव, केवलम्, सर्वम्, कथम्, वर्णाश्रमस्थितिः॥

पदार्थः।

महदादि=महत्तत्त्व आदिसे लेकर	ब्रह्म=ब्रह्म ही
सर्वम्=संपूर्ण	एव=निश्चय करके
जगत्=जगत्	केवलम्=केवल
किञ्चित्=किञ्चित् भी	सर्वम्=सर्वरूप है
मे=मुझको	वर्णाश्रमस्थितिः=वर्णाश्रमकी स्थिति
प्रतिभाति=भान	कथम्=कैसे हो सकती है
न=नहीं होता है	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, महत्तत्त्व आदिसे लेकर जितने तत्त्वकारण सांख्यके मतमें हैं और उन संपूर्ण तत्त्वोंका कार्यरूप जितना यह जगत् है सो सब मेरेको किञ्चित् भी प्रतीत नहीं होता है क्योंकि केवल द्वैतसे रहित आनन्दरूप ब्रह्म ही हमको सर्वत्र ज्योंका त्यों भान होता है जब कि ब्रह्मसे भिन्न दूसरा कोई भी वस्तु हमको भान नहीं होता तो फिर हमारी दृष्टिमें वर्णाश्रमकी स्थिति अर्थात् विभाग भी कैसे सिद्ध होवे॥ ४४॥

जानामि सर्वथा सर्वमहमेको निरन्तरम्।
निरालम्बमशून्यं च शून्यं व्योमादिपञ्चकम्॥४५॥

पदच्छेदः।

जानामि, सर्वथा, सर्वम्, अहम्, एकः, निरन्तरम्, निरालम्बम्, अशून्यम्, च, शून्यम्, व्योमादिपञ्चकम्॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
सर्वम्=सबको
सर्वथा=सर्व प्रकारसे
जानामि=जानता हूँ
अहम्=मैं
एक=एक ही हूँ
निरंतरम्=निरन्तर हूं
निरालम्बम्=निरालम्ब हूँ
अशून्यम्=शून्यसे रहित हूँ
च=और
शून्यम्=शून्य
व्योमादि- पञ्चकम् =आकाशादि पांच हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं सर्वथा संपूर्ण जगत् और आकाशादि पांच भूतोंको शून्यरूप जानता हूँ, और मैं अपनेको शून्यतासे रहित शून्यका साक्षी जानता हूँ, और मैं एक ही हूँ, और निरन्तर हूँ, अर्थात् एकरस हूँ, आलम्बसे भी रहित हूँ ॥ ४५ ॥

न षण्ढो न पुमान्न स्त्री न बोधो नैव कल्पना ।
सानन्दो वा निरानन्दमात्मानं मन्यसे कथम्॥४६॥

पदच्छेदः ।

न, षण्ढः, न, पुमान्, न, स्त्री, न, बोधः, न एव, कल्पना, सानन्दः, वा, निरानन्दम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

न षण्ढः=आत्मा न नपुंसक है.
न पुमान्=न पुरुष है
न स्त्री=न स्त्री है
न बोधः=न ज्ञान है
एव=निश्चयकरके
न कल्पना=कल्पना भी नहीं है
सानन्दः=आनन्दके सहित
वा=अथवा
निरानन्दम्=आनन्दसे रहित
आत्मानम्=आत्माको
कथम्=किस प्रकार
मन्यसे=तुम मानते हो

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–आत्मा नपुंसक नहीं है, और पुरुष तथा स्त्री भी नहीं है, और वृत्तिज्ञान भी नहीं है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, और कल्पनारूप भी नहीं है किन्तु कल्पनाका भी साक्षी है, फिर आत्मा आनन्दके सहित भी नहीं है किन्तु आनन्दरूप है और आनन्दसे रहित भी नहीं है तो फिर हे शिष्य ! आत्माको तुम कैसे मानते हो ? यदि तुम पुंनपुंसकादिक रूप करके आत्माको मानते हो तो ऐसा मानना तुम्हारा मिथ्या है ॥ ४६ ॥

ननु–हम स्त्री पुरुषादिक रूपोंसे तो आत्माको भिन्न ही मानते हैं परंतु तिसको अशुद्ध मानकर उसके शोधनका यत्न करते हैं। उच्यते–ऐसा कथन भी ठीक नहीं है–

षडंगयोगान्न तु नैव शुद्धं
मनोविनाशान्न तु नैव शुद्धम्।
गुरूपदेशान्न तु नैव शुद्धं
स्वयं च तत्त्वं स्वयमेव शुद्धम् ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः।

षडंगयोगात्, न, तु, न, एव, शुद्धम्, मनोविनाशात्, न, तु, नैव, शुद्धम्, गुरूपदेशात्, न, तु, एव, शुद्धम्, स्वयम्, च, तत्त्वम्, स्वयम्, एव, शुद्धम् ॥

पदार्थः।

षडंगयोगात् =षडंगयोगसे भी आत्मा
एव=निश्चयकरके
शुद्धम्=शुद्ध
न तु नैव=नहीं होता २

मनोविनाशात्=मनके नाश होनेसे भी आत्मा
शुद्धम्=शुद्ध
न तु नैव=नहीं होता २

गुरूपदेशात्=गुरुके उपदेशसे भी आत्मा
शुद्धम्=शुद्ध
न तु नैव=नहीं होता २
स्वयम्=आप ही आत्मा
तत्त्वम्=सारवस्तु है
च=और
स्वयम्=आप ही
एव=निश्चयकरके
शुद्धम्=शुद्ध वस्तु है

भावार्थः ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–षट् अंगोंके सहित योगाभ्यासके करनेसे भी आत्माकी शुद्धि नहीं होती है। ननु–मनके नाश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है। उच्यते–नहीं होती है २। ननु–गुरुके उपदेशसे आत्माकी शुद्धि होती है। उच्यते–नहीं होती है २। ननु–तो फिर आत्माकी शुद्धि किस उपायके करनेसे होती है। उच्यते–आत्मा स्वतः शुद्ध है, जो वस्तु स्वरूपसे ही शुद्ध है, उसको जो अशुद्ध मानते हैं वे मूर्ख कहे जाते हैं और संसारमें इस प्रकार कोई भी नहीं कहता है कि मेरा आत्मा अशुद्ध है किन्तु मूर्खसे मूर्ख भी यही कहता है कि, मेरा मन बडा अशुद्ध है इसीवास्ते मनके निरोधका ही सब लोग साधन पूछते हैं, आत्माके निरोधका और आत्माकी शुद्धिका साधन न तो कोई पूछता है और न कहीं लिखा ही है इसवास्ते आत्मा नित्य शुद्ध स्वरूप है ॥ ४७ ॥

न हि पञ्चात्मको देहो विदेहो वर्तते न हि ।
आत्मैव केवलं सर्वं तुरीयं च त्रयं कथम् ॥ ४८ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, पञ्चात्मकः, देहः, विदेहः, वर्त्तते, न, हि आत्मा, एव, केवलम्, सर्वम्, तुरीयम्, च, त्रयम्, कथम् ॥

पदार्थः।

पञ्चात्मकः=पाञ्चभौतिक	आत्मा=आत्मा ही
देहः=देह भी	एव=निश्चयकरके
हि=निश्चय करके	केवलम्=केवल है
न=नहीं है	सर्वम्=सर्वरूप भी है
विदेहः=देहसे रहित भी	तुरीयम्=तुरीय
हि=निश्चय करके	च=और
न=नहीं	त्रयम्=तीन अवस्था
वर्तते=वर्तता है	कथम्=कैसे हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मा पाञ्चभौतिकरूपी देह नहीं है क्योंकि देह जड है, आत्मा चेतन है, और विदेह अर्थात् देहसे रहित भी नहीं है, क्योंकि संपूर्ण देहोंमें पूर्ण होकरके स्थित है और आत्मा ही केवल सद्रूप है, सर्वरूप भी है आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है। जब कि आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है तब फिर तीन अवस्था और तुरीय अवस्था कैसे बनती हैं॥ ४८॥

न बद्धो नैव मुक्तोऽहं न चाहं ब्रह्मणः पृथक्।
न कर्ता न च भोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जितः॥४९॥

पदच्छेदः।

न, बद्धः, न, एव, मुक्तः, अहम्, न, च, अहम्, ब्रह्मणः, पृथक्, न कर्ता, न, च, भोक्ता, अहम्, व्याप्यव्यापकवर्जितः॥

पदार्थः।

अहम्=मैं	एव=निश्चयकरके
बद्धः=बद्ध	न=नहीं हूँ
न च=नहीं हूँ और	अहम्=मैं
मुक्तः=मुक्त भी	ब्रह्मणः=ब्रह्मसे

पृथक्=भिन्न भी
न=नहीं हूँ
न कर्ता=कर्ता भी नहीं हूँ
अहम्=मैं
भोक्ता=भोक्ता भी
न च=नहीं हूँ और
व्याप्यव्यापकवर्जितः=मैं व्याप्य और व्यापकभावसे भी रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं बद्ध नहीं हूँ फिर मैं मुक्त भी नहीं हूँ क्यों कि स्वयंप्रकाश द्वैतसे रहित आत्मामें बंध और मोक्षका व्यवहार भी नहीं बनता है फिर मैं ब्रह्मसे भिन्न नहीं हूँ, न मैं कर्ता हूँ, और न मैं भोक्ता हूँ क्योंकि " असङ्गोऽयं पुरुषः "—श्रुति आत्माको असंग बतलाती है, फिर मैं व्याप्यव्यापकभावसे भी रहित हूँ क्योंकि एकमें व्याप्यव्यापकभाव तीनों कालमें नहीं बनता है ॥ ४९ ॥

यथा जलं जले न्यस्तं सलिलं भेदवर्जितम् ।
प्रकृतिं पुरुषं तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ५० ॥

पदच्छेदः ।

यथा, जलम्, जले, न्यस्तम्, सलिलम्, भेदवर्जितम्, प्रकृतिम्, पुरुषम्, तद्वत्, अभिन्नम्, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

यथा=जिस प्रकार
जलम्=जल
जले=जलमें
न्यस्तम्=फेंका हुआ
सलिलम्=जलरूपही
भेदवर्जितम्=भेदसे रहित होजाताहै
तद्वत्=तैसेही
प्रकृतिम्=प्रकृति और
पुरुषम्=पुरुष
मे=मेरेको
अभिन्नम्=अभिन्न
प्रतिभाति=प्रतीत होता है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जिस प्रकार जलमें फेंकाहुआ जल जलरूप ही होजाता है तिसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी मेरेको अभिन्न

रूप करके प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह है कि, लोकमें भी जैसे अग्नि और अग्निकी दाहकशक्तिका भेद किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं होता है इसी प्रकार ब्रह्मचेतनकी शक्तिका भी ब्रह्मचेतनके साथ किसी प्रकारसे भी भेद सिद्ध नहीं होता है. मूर्खलोग भेद मानते हैं, ज्ञानी पुरुष भेद नहीं मानते हैं ॥ ५० ॥

ननु—आत्मा साकार है या निराकार है। उच्यते—

यदि नाम न मुक्तोऽसि न बद्धोऽसि कदाचन।
साकारं च निराकारमात्मानं मन्यसे कथम् ॥५१॥

पदच्छेदः ।

यदि, नाम, न, मुक्तः, असि, न, बद्धः, असि, कदाचन, साकारम्, च, निराकारम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि नाम=यदि यह बात प्रसिद्ध है	आत्मानम्=आत्माको
मुक्तः=मुक्त तू	साकारम्=साकार
न असि=नहीं है और	च=और
कदाचन=कदाचित्	निराकारम्=निराकार
बद्धः=बद्ध भी तू	कथम्=किस प्रकार
न असि=नहीं है तो फिर	मन्यसे=तू मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे मुमुक्षु ! यदि तू मुक्त नहीं है और बद्ध भी नहीं है अर्थात् कदाचित् यदि तेरेमें मुक्त और बद्ध व्यवहार नहीं है तो फिर तू आत्माको साकार और निराकार कैसे मानता है अर्थात् साकार निराकार कथन अज्ञानावस्थामेंही बनता है क्योंकि उस अवस्थामें बद्धसे मोक्षका व्यवहार होता है, जीवन्मुक्त अवस्थामें तो बद्ध मोक्ष व्यवहार ही नहीं है अत एव साकार निराकार कथनभी नहीं बनता है ॥ ५१ ॥

जानामि ते परं रूपं प्रत्यक्षं गगनोपमम् ।
यथा परं हि रूपं यन्मरीचिजलसन्निभम् ॥५२॥

पदच्छेदः ।

जानामि, ते, परम्, रूपम्, प्रत्यक्षम्, गगनोपमम्, यथा, परम्, हि, रूपम्, यत्, मरीचिजलसन्निभम् ॥

पदार्थः ।

ते=तुम्हारे
परम्=परम
रूपम्=रूपको
जानामि=मैं जानता हूं
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
गगनोपमम्=गगनकी उपमावाला है
यथा=जिस प्रकार
परम्=जगत्का
रूपम्=रूप है
यत्=जो कि
मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाके जलकी तरह है वैसा तुम्हारा नहीं है.

भावार्थः ।

तुम्हारे परमरूपको मैं जानता हूँ वह प्रत्यक्ष गगनकी तरह व्यापक है नित्य है और जगत्का स्वरूप मृगतृष्णाके जलकी तरह मिथ्या है। इतना भी तुम्हारे और जगत्के स्वरूपका फरक है ॥ ५२ ॥

न गुरुर्नोपदेशश्च न चोपाधिर्न मे क्रिया ।
विदेहं गगनं विद्धि विशुद्धोऽहं स्वभावतः ॥५३॥

पदच्छेदः ।

न, गुरुः, न, उपदेशः, च, न, च, उपाधिः, न, मे, क्रिया, विदेहम्, गगनम्, विद्धि, विशुद्धः, अहम्, स्वभावतः ॥

पदार्थः।

मे=मेरा
गुरुः=गुरु भी कोई
न=नहीं है
च=और
उपदेशः=उपदेश भी
न=नहीं है और
उपाधिः=उपाधि भी
न च=नहीं है
क्रिया=क्रिया भी कोई
न=नहीं है मुझको
विदेहम्=देहसे रहित
गगनम्=आकाशवत्
विद्धि=तू जान क्योंकि
अहम्=मैं
स्वभावतः=स्वभावसे ही
विशुद्धः=शुद्ध हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरा वास्तवसे गुरु भी कोई नहीं है, जब कि गुरु ही परमार्थ दृष्टिसे नहीं है तब उपदेश कहांसे बन सकता है ? क्योंकि गुरु और शिष्यका व्यवहार भेदको लेकरके ही होता है, सो जिसकी दृष्टिमें भेद ही नहीं रहा है उसकी दृष्टिमें गुरु और शिष्यका व्यवहार भी नहीं रहता है फिर भेदभावनासे रहितकी दृष्टिमें जब कि, उपाधि नहीं है उपाधिकृत क्रिया भी नहीं रहती है । इसीवास्ते कहते हैं हे शिष्य ! हमको देहसे रहित गगनके तुल्य तू व्यापक जान क्योंकि हम स्वभावसेही शुद्ध हैं ॥ ५३ ॥

ननु—तुम तो स्वभावसे ही शुद्ध हो मैं कौन हूं। उच्यते:—

विशुद्धोऽस्यशरीरोऽसि न ते चित्तं परात्परम्।
अहं चात्मा परं तत्त्वमिति वक्तुं न लज्जसे ॥ ५४॥

पदच्छेदः।

विशुद्धः, असि, अशरीरः, असि, न, ते, चित्तम्, परात्परम्; अहम्, च, आत्मा, परम्, तत्त्वम्, इति, वक्तुम्, न लज्जसे ॥

पदार्थः ।

विशुद्धः=विशेषकरके शुद्ध
असि=तू है फिर तू
अशरीर=शरीरसे रहित
असि=है
ते=तुम्हारा
चित्तम्=चित्त भी
न=नहीं है
अहम्=मैं
परात्परम्=पर जो माया उससे भी सूक्ष्म हूँ
च=और मैं
आत्मा=आत्मा हूँ
परम्=परम
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
इति=इस प्रकार
वक्तुम्=कथन करते
न लज्जसे=तू लज्जा नहीं करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—तू भी शुद्ध है और शरीरसे रहित है । तेरा चित्तके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि तू प्रकृतिसे भी अतिसूक्ष्म है, तो फिर यह जो कथन है कि, मैं आत्मा हूँ—परमतत्त्व हूँ, यह भी वास्तवसे नहीं बनता इस वास्ते ऐसे कथन करनेसे भी तू क्या लज्जित नहीं होता ? क्योंकि अद्वैतमें ऐसा कथन नहीं बनता है ॥ ५४ ॥

कथं रोदिषि रे चित्त ह्यात्मैवात्मात्मना भव ।
पिब वत्स कलातीतमद्वैतं परमामृतम् ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, रोदिषि, रे, चित्त, हि, आत्मा, एव, आत्मा, आत्मना, भव, पिब, वत्स, कलातीतम्, अद्वैतम्, परमामृतम् ॥

पदार्थः ।

रे चित्त=हे चित्त
कथम्=क्यों तूं
रोदिषि=रुदन करता है
हि एव=निश्चय करके
आत्मा=तू आत्मारूप
आत्मना=अपने करके
आत्मा=आत्मा
भव=तू होजा
वत्स=हे वत्स !
कलातीतम्=कलासे रहित
अद्वैतम्=अद्वैतरूपी
परमामृतम्=परम अमृतको
पिब=तू पान कर

भावार्थः ।

हे चित्त ! तू किसवास्ते रुदन करता है ? तेरा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तू आत्मस्वरूप है, अनात्मा नहीं है । यदि तूने भ्रमकरके अपनेको अनात्मा मान रखा हो तो फिर तू विचारके द्वारा भ्रमको दूर करके अपने आत्माकरके अर्थात् अपने आत्माके ज्ञानकरके फिर आत्मा होजा अर्थात् अपने स्वरूपमें स्थित होजा । और कल्पनासे रहित परम अद्वैतरूपी अमृतको हे वत्स (प्रिय) ! तू पान कर ॥ ५५ ॥

नैव बोधो न चाबोधो न बोधाबोध एव च ।
यस्येदृशः सदा बोधः स बोधो नान्यथा भवेत् ॥५६॥

पदच्छेदः ।

न, एव, बोधः, न ,च, अबोधः, न, बोधाबोधः, एव, च, यस्य, ईदृशः, सदा, बोधः, सः, बोधः, न, अन्यथा, भवेत् ॥

पदार्थः ।

एव=निश्चयकरके	न च=नहीं है और
बोधः=आत्मज्ञान	यस्य=जिस पुरुषको
न=नहीं है	ईदृशः=इस प्रकारका
अबोधः=अज्ञान भी	सदा=सर्वकाल
न च=नहीं है और	बोधः=ज्ञान है
बोधाबोधः=ज्ञान अज्ञान उभय-रूप भी	सः बोधः=सो ज्ञानस्वरूप है
	अन्यथा=अन्यथा वह
एव=निश्चय करके	न भवेत्=नहीं होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कि, आत्मा अन्तःकरणकी वृत्ति ज्ञानरूप नहीं है और अज्ञानरूपभी नहीं है, और ज्ञान अज्ञान उभयरूप भी नहीं है किन्तु केवल ज्ञानस्वरूप ही है । जिस पुरुषको इस प्रकारका सर्व काल आत्माका ज्ञान है सो पुरुष ज्ञानस्वरूपही है, वह अन्यथा कदापि नहीं होता है ॥ ५६ ॥

ज्ञानं न तर्को न समाधियोगो
न देशकालौ न गुरूपदेशः ।
स्वभावसंवित्तिरहं च तत्त्व-
माकाशकल्पं सहजं ध्रुवं च ॥ ५७ ॥

पदच्छेदः ।

ज्ञानम्, न, तर्कः, न, समाधियोगः, न, देशकालौ, न, गुरूपदेशः, स्वभावसंवित्तिः, अहम्, च, तत्त्वम्, आकाशकल्पम्, सहजम्, ध्रुवम्, च ॥ ५७ ॥

पदार्थः ।

ज्ञानम्=अन्यज्ञान भी मैं
न=नहीं हूँ
तर्कः=तर्करूपभी
न=मैं नहीं हूँ
समाधियोगः=समाधियोगरूप भी
न=मैं नहीं हूं
देशकालौ=देशकालभी
न=मैं नहीं हू
गुरूपदेशः=गुरुका उपदेशरूपभी
न=मैं नहीं हूँ किन्तु
स्वभावसंवित्तिः=स्वभावसे ही ज्ञानस्वरूप
च=और
तत्त्वम्=यथार्थवस्तु
अहम्=मैं हूँ
आकाशकल्पम्=आकाशके सदृश व्यापक
च=और
अन्यथा=अन्यथा वह
न भवेत्=नहीं होता है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी अपने अनुभवको कहते हैं—हम ज्ञान नहीं हैं अर्थात् जो कि इंद्रिय विषयके सम्बन्धसे अंतःकरणकी वृत्तिरूपजन्य ज्ञान है सो मैं नहीं हूँ । और शास्त्रविरुद्ध अथवा शास्त्रसंमतरूप जो कि तर्क है सो भी मैं नहीं हूँ । और चित्तका निरोधरूपी जो योग और समाधि है सो भी मैं नहीं हूँ । और देशकालरूप भी मैं नहीं हूँ । और उपदेशको

करनेवाला गुरुका उपदेशरूप भी मैं नहीं हूँ किन्तु स्वभावसे ही मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, और यथार्थ तत्त्ववस्तु आकाशवत् व्यापक भी मैं हूँ। और स्वभावसे ही मैं नित्य भी हूँ मेरेसे भिन्न अनित्य है॥ ५७॥

न जातोऽहं मृतो वापि न मे कर्म शुभाशुभम्।
विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म बन्धो मुक्तिः कथं मम ॥ ५८॥

पदच्छेदः।

न, जातः, अहम्, मृतः, वा, अपि, न, मे, कर्म, शुभाशुभम्, विशुद्धम्, निर्गुणम्, ब्रह्म, बन्धः, मुक्तिः, कथम्, मम॥

पदार्थः।

अहम्=मैं कभी	विशुद्धम्=शुद्धस्वरूप हूँ
न जातः=उत्पन्न नहीं हुआ हूँ	निर्गुणम्=निर्गुण हूँ
अहम्=मैं कभी	ब्रह्म=ब्रह्म हूँ
न मृतः=मरा नहीं हूँ	मम=मेरा
मे=मुझको	बन्धः=बन्ध
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ	मुक्तिः=मुक्ति
कर्म न=कर्म भी नहीं है क्योंकि मैं	कथम्=कैसे, क्योंकि मैं मुक्तरूप हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो जन्मता है वह अवश्यही मरता है—जो कि जन्मता ही नहीं है वह मरता भी नहीं है, सो जन्ममरण साकार और जड शरीरादिकोंकेही होते हैं, निराकार निरवयव चेतनके नहीं होते हैं। सो मैं निराकार चेतन व्यापक रूप हूँ इसवास्ते मेरे जन्मादिक भी नहीं हैं और शुभ अशुभ कर्म भी सब शरीरादिकोंके धर्म हैं मेरे धर्म नहीं हैं क्योंकि मैं शुद्धस्वरूप निर्गुण ब्रह्म हूँ फिर मेरा बन्ध और मुक्ति कैसे होसकती है? क्योंकि मैं तो नित्य मुक्तरूप हूँ॥ ५८॥

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः ।
अन्तरं हि न पश्यामि स बाह्याभ्यन्तरः कथम् ॥५९॥

पदच्छेदः ।

यदि, सर्वगतः, देवः, स्थिरः, पूर्णः, निरन्तरः, अन्तरम्, हि, न, पश्यामि, सः, बाह्याभ्यन्तरः, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि
देवः=प्रकाशमान आत्मा
सर्वगतः=सर्वगत है
स्थिरः=स्थिर भी है
पूर्णः=पूर्ण भी है
निरन्तरः=एकरस भी है
अन्तरम्=शरीरके भीतर ही तिसको
न पश्यामि=मैं नहीं देखताहूं क्योंकि
सः=सो देव
बाह्याभ्यन्तरः=बाहर और भीतर सर्वत्र है
कथम्=कैसे सर्वत्र न देखूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह प्रकाशमान आत्मा सर्वगत है। अर्थात् सर्वत्र एकरस प्राप्त है. कहीं भी न्यून अधिक नहीं है, और स्थिर भी है अर्थात् अचल भी है, किसी तरहसे भी वह चलायमान नहीं होता है, पूर्ण है, एकरसभी है, और शरीरके भीतर ही मैं तिसको नहीं देखता हूं क्योंकि वह केवल शरीरके भीतर ही नहीं है किन्तु बाहर भीतर सर्वत्र है इस वास्ते बाहर भीतर हम तिसको देखते हैं ॥ ५९ ॥

स्फुरत्येव जगत्कृत्स्नमखण्डितनिरन्तरम् ।
अहो मायामहामोहौ द्वैताद्वैतविकल्पना ॥ ६० ॥

पदच्छेदः ।

स्फुरति, एव, जगत्, कृत्स्नम्, अखण्डितनिरन्तरम्, अहो, मायामहामोहौ, द्वैताद्वैतविकल्पना ॥

पदार्थः।

कृत्स्नम्=सम्पूर्ण
जगत्=जगत्
अखण्डितनिरन्तरम्=अखण्डित निरन्तरही
एव=निश्चय करके
स्फुरति=स्फुरण होता है
अहो=बडा खेद है
मायामहामोहौ=माया और महामोह
द्वैताद्वैतविकल्पना=द्वैत और अद्वैतकी कल्पनाका भी स्फुरण होता है

भावार्थः।

निराकार व्यापक चेतनमें संपूर्ण जगत् अखण्डित अर्थात् प्रवाहरूपसे निरन्तर ही स्फुरण होता है, और माया तथा महामोह भी उसीमें स्फुरण होते हैं, और द्वैत अद्वैतकी कल्पना भी उसीमें स्फुरण होती है, वास्तवसे उसमें यह सब कुछ भी नहीं है ॥ ६० ॥

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा।
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः ॥ ६१ ॥

पदच्छेदः।

साकारम्, च, निराकारम्, न, इति, न, इति, इति, सर्वदा, भेदाभेदविनिर्मुक्तः, वर्तते, केवलः, शिवः ॥

पदार्थः।

साकारम्=स्थूल
च=और
निराकारम्=सूक्ष्म जितना है
इति न=यह सब नहीं है
इति न=यह सब नहीं है
इति=इस प्रकार श्रुति कहती है
सर्वदा=सर्व काल वह
भेदाभेदविनिर्मुक्तः=भेद और अभेदसे रहित
केवलः=केवल
शिवः=कल्याणरूप ही
वर्तते=वर्तता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जितना कि स्थूल और सूक्ष्मरूप जगत् है इस संपूर्ण जगत्का श्रुति निषेध करती है कि, वास्तवसे यह सब ब्रह्ममें सर्व-

कालमें नहीं है वह ब्रह्म केवल है अर्थात् द्वैतसे रहित है और कल्याण-स्वरूप भी है ॥ ६१ ॥

न ते च माता च पिता च बन्धु-
र्न ते च पत्नी न सुतश्च मित्रम् ।
न पक्षपातो न विपक्षपातः
कथं हि सन्तप्तिरियं हि चित्ते ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः ।

न, ते, च, माता, च, पिता, च, बन्धुः, न, ते, च, पत्नी, न, सुतः, च, मित्रम्, न, पक्षपातः, न, विपक्षपातः, कथम्, हि, सन्तप्तिः, इयम्, हि, चित्ते ॥

पदार्थः ।

ते=तुम्हारी
माता=माता
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
पिता=पिता भी नहीं है
च=और तुम्हारा
बन्धुः=संबंधी भी
न=नहीं है
च=और
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
सुतः=पुत्र भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
मित्रम्=मित्र भी
न=नहीं है
पक्षपातः=पक्षपाती भी तुम्हारा कोई
न=नहीं है
विपक्षपातः=विपक्षपाती भी
न=तुम्हारा नहीं है
हि=निश्चय करके
चित्ते=चित्तमें
इयम्=यह
सन्तप्तिः=सन्ताप
कथम्=कैसे करते हो

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे जीव ! न तो वास्तवसे तुम्हारी कोई माता ही है और न कोई तुम्हारा पिता ही है, और न कोई तुम्हारा संबंधी ही है, न तो तुम्हारी स्त्री है, न कोई तुम्हारा पुत्र और मित्र ही है। यह तो सब अपने २ स्वार्थके ही हैं, और तुम्हारा पक्षपाती या विपक्षी भी कोई नहीं है. फिर तुम चित्तमें संतापको क्यों करते हो ? यह तो स्वप्नसृष्टिकी तरह मिथ्या है ॥६२॥

दिवानक्तं न ते चित्ते उदयास्तमयौ न हि।
विदेहस्य शरीरत्वं कल्पयन्ति कथं बुधाः ॥ ६३ ॥

पदच्छेदः।

दिवानक्तम्, न, ते, चित्ते, उदयास्तमयौ, न, हि, विदेहस्य, शरीरत्वम्, कल्पयन्ति, कथम्, बुधाः ॥

पदार्थः।

ते=हे शिष्य ! तुम्हारे
चित्ते=चेतनमें
दिवानक्तम्=दिन और रात्रि भी
न=वास्तवसे नहीं है और
उदयास्तमयौ=उदय और अस्त भी
न हि=तुम्हारा नहीं है
विदेहस्य=देहसे रहितका
शरीरत्वम्=शरीर
बुधाः=बुद्धिमान्
कथम्=कैसे
कल्पयन्ति=कल्पना करते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे जीव ! तुम्हारे चेतनस्वरूपमें दिन और रात्रि नहीं है, और उदय अस्तभाव भी तिसमें नहीं है क्योंकि वह सदैव एकरस ज्योंका त्यों ही रहता है और तुम्हारा चेतन आत्मा भी वास्तवसे देहसे रहित है इसीवास्ते वह शरीरवाला भी कदापि नहीं हो सकता है तब फिर विद्वान् लोग उससे शरीरकी कल्पना कैसे करते हैं ? किन्तु कदापि नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥

नाविभक्तं विभक्तं च न हि दुःखसुखादि च।
न हि सर्वमसर्वं च विद्धि चात्मानमव्ययम् ॥ ६४ ॥

पदच्छेदः ।

न, अविभक्तम्, च, न, हि, दुःखसुखादि, च, न, हि, सर्वम्, असर्वम्, च, विद्धि, च, आत्मानम्, अव्ययम् ॥

पदार्थः ।

अविभक्तम्=विभागसे रहित और	सर्वम्=सर्वरूपता
विभक्तम्=विभागके सहित आत्मा	असर्वम्=असर्वरूपताभी
न=नहीं है	नहि=नहीं है
च=और	च=और
दुःखसुखादि=दुःखसुखादिक भी आत्माके	आत्मानम्=आत्माको
न हि=धर्म नहीं है	अव्ययम्=नाशसे रहित
च=और	विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मामें विभागपना और अविभागपना भी नहीं बनता है क्योंकि यदि निराकार दो आत्मा होवें तब तो विभागादिक भी बने विना उपाधिके निराकार निरवयवका विभाग कभी नहीं हो सकता है और उपाधि सब मिथ्या है इस वास्ते वास्तवसे विभागादिक नहीं बनते हैं। और स्वयंप्रकाश सुखरूप आत्मामें जन्म दुःखसुखादिक भी नहीं बनते हैं। इसी तरह सर्वमिथ्या प्रपंचरूपता अरूपता भी तिसमें नहीं बनती है इसवास्ते तिस आत्माको तू अव्यय जान ॥ ६४ ॥

नाहं कर्ता न भोक्ता च न मे कर्म पुराधुना ।
न मे देहो विदेहो वा निर्ममेति ममेति किम् ॥६५॥

पदच्छेदः ।

न, अहम्, कर्ता, न, भोक्ता, च, न, मे, कर्म, पुरा, अधुना, न, मे, देहः, विदेहः, वा, निर्मम, इति, मम, इति, किम् ॥

पदार्थः।

अहम्=मैं	मे=मेरा
कर्ता=कर्मोंका कर्ता	देहः=देह भी
न=नहीं हूं	न=नहीं है
च=और उनके फलोंका	वा=अथवा
भोक्ता=भोक्ता भी	विदेहः=मैं देहसे रहितभी नहीं हूं
न=नहीं है	निर्ममेति=ममतासे रहित और
मे कर्म=मेरे कर्म	ममेति=ममताके सहित
पुराऽधुना=पूर्व और अब	किम्=कैसे मैं हो सकता हूं
न=नहीं है	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—न तो मैं कर्मोंका कर्ता हूं, और न मैं उनके फलोंको भोक्ता ही हूँ। फिर न तो मेरे पहिले जन्मोंके ही कर्म हैं, और न इसी जन्मके कर्म हैं। जिस कारण पूर्वोत्तर जन्मके मेरा कर्म कोई नहीं है इसीवास्ते मेरा शरीर भी नहीं है और मैं विदेह अर्थात् देहसे रहित भी नहीं हूँ क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है किंतु मैं जीवन्मुक्त हूँ इसीवास्ते ममतासे रहित और ममताके सहित भी मैं नहीं हूँ किन्तु अपने आत्मानन्दमें मग्न हूँ॥६५॥

न मे रागादिको दोषो दुःखं देहादिकं न मे।
आत्मानं विद्धि मामेकं विशालं गगनोपमम्॥६६॥

पदच्छेदः।

न, मे, रागादिकः, दोषः, दुःखम्, देहादिकम्, न, मे, आत्मानम्, विद्धि, माम्, एकम्, विशालम्, गगनोपमम्॥

पदार्थः।

रागादिकः=रागादिक	माम्=मुझको
दोषः=दोष भी	आत्मानम्=आत्मारूप और
मे न=मेरे नहीं है	एकम्=एक
दुःखम्=दुःखरूप	विशालम्=विस्तारवाला
देहादिकम्=देहादिकभी	गगनोपमम्=आकाशके तुल्य
मे न=मेरे नहीं है	विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—राग और द्वेषादिक दोष भी मेरेमें नहीं हैं और दुःखरूप देहादिक भी मेरे नहीं हैं किन्तु मुझको एक और विशाल (अतिविस्तृत) आकाशके सदृश हे शिष्य ! तू जान ॥ ६६ ॥

सखे मनः किं बहुजल्पितेन
सखे मनः सर्वमिदं वितर्क्यम् ।
यत्सारभूतं कथितं मया ते
त्वमेव तत्त्वं गगनोपमोऽसि ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ।

सखे, मनः, किम्, बहुजल्पितेन, सखे, मनः, सर्वम्, इदम्, वितर्क्यम्, यत्, सारभूतम्, कथितम्, मया, ते, त्वम्, एव, तत्त्वम्, गगनोपमः, असि ॥

पदार्थः ।

सखे मनः=हे सखे मन !
बहुजल्पितेन=बहुत कथन करनेसे
किम्=क्या प्रयोजन है
सखे मनः=हे सखे मन !
इदम्=यह जगत्
सर्वम्=सम्पूर्ण
वितर्क्यम्=तर्क करनेके योग्य है
यत्=जो कि
सारभूतम्=सारभूत
मया=मैंने
कथितम्=कथन किया
ते=तुम्हारे प्रति
त्वम्=तू ही
एव=निश्चय करके
तत्=सो है
तत्त्वम्=सो तुम
गगनोपमः=आकाशके तुल्य
असि=है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी अपने मनके प्रति कहते हैं—हे सखे मन ! तुम्हारे प्रति बहुत कथन करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं किन्तु जितना कि यह

दृश्यमान जगत् है सो तर्क करनेके योग्य है और जो कि हमने तुम्हारे प्रति पूर्व सारभूत सिद्धान्त कथन किया है कि ब्रह्मचेतन तुम ही हो सो तुम आकाशके तुल्य निर्लेप और असंग भी हो ॥ ६७ ॥

येन केनापि भावेन यत्र कुत्र मृता अपि ।
योगिनस्तत्र लीयन्ते घटाकाशमिवाम्बरे ॥ ६८ ॥

पदच्छेदः ।

येन, केन, अपि, भावेन, यत्र, कुत्र, मृताः, अपि, योगिनः, तत्र, लीयन्ते, घटाकाशम्, इव, अम्बरे ॥

पदार्थः ।

येन केन=जिस किसी
भावेन=भावसे
अपि=निश्चयकरके
यत्र कुत्र=जहां कहीं
मृताः=मरणको प्राप्त
अपि=भी
योगिनः=ज्ञानवान्
तत्र=उसी ब्रह्ममें ही
लीयन्ते=लीन हो जाते हैं
घटाकाशम्=घटाकाशके
इव=समान
अम्बरे=महाकाशमें लीन होजाता हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञानवान् पुरुष जिस किसी निमित्तसे जहां कहीं प्राणोंका त्याग भी कर देता है, अर्थात् उत्तम मध्यमादि भूमियोंमें शरीरको भी छोड देता है तब भी वह पूर्ण ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है जैसे घटके फूटजानेपर घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है ॥ ६८ ॥

तीर्थे चान्त्यजगेहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन् ।
समकाले तनुं मुक्तः कैवल्यव्यापको भवेत् ॥६९॥

पदच्छेदः ।

तीर्थे, च, अन्त्यजगेहे, वा, नष्टस्मृतिः, अपि, त्यजन्, समकाले, तनुम्, मुक्तः, कैवल्यव्यापकः, भवेत् ॥

पदार्थः ।

तीर्थे=तीर्थमें	समकाले=समकालमें
च=और	तनुम्=शरीरको
अन्त्यजगेहे=चाण्डालके घरमें	त्यजन्=त्यागता
वा=अथवा	मुक्तः=मुक्त हुआ
नष्टस्मृतिः=बेहोश हुआ भी	कैवल्यव्यापकः=व्यापक ब्रह्मरूप
अपि=निश्चयकरके	भवेत्=हो जाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञानवान् जीवन्मुक्त सचेत हुआ २ अथवा अचेत हुआ २ किसी तीर्थमें या चाण्डालके घरमें समकालमें अर्थात् प्रारब्ध कर्मके समाप्त होजानेपर शरीरको त्यागकर मुक्त हुआ भी मुक्तरूप व्यापक चेतन-ब्रह्ममें ही मिलजाता है, लोकान्तरको या देहान्तरको नहीं प्राप्त होजाता है इसी अर्थको श्रुति भी कहती है "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" तिस ज्ञान-वान्के प्राण लोकान्तरमें या देहान्तरमें गमन नहीं करते हैं किन्तु "अत्रैव समवलीयन्ते" इसी लोकमें अपने कारणमें लीन हो जाते हैं और विद्वान्का आत्मा ब्रह्मचेतनमें लीन हो जाता है अर्थात् ब्रह्मके साथ तिसका अभेद हो जाता है फिर तिसका जन्म नहीं होता है ॥ ६९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च द्विपदादिचराचरम् ।
मन्यन्ते योगिनः सर्वं मरीचिजलसन्निभम् ॥७०॥

पदच्छेदः ।

धर्मार्थकाममोक्षान्, च, द्विपदादिचराचरम्, मन्यन्ते, योगिनः, सर्वम्, मरीचिजलसन्निभम् ॥

पदार्थः ।

धर्मार्थकाममोक्षान्=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष	सर्वम्=सबको
च=और	योगिनः=ज्ञानी लोग
द्विपदादिचराचरम्=द्विपद आदि जितने चर अचर हैं	मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाके जलके सदृश
	मन्यन्ते=मानते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंका और संसारमें जितने दोपांव तथा चार पांववाला इत्यादिक जंगम जीव हैं और जितने कि वृक्षादिक स्थावर हैं इन सबको ज्ञानीलोग मृगतृष्णाके जलके तुल्य मानते हैं अर्थात् मिथ्या मानते हैं इसीवास्ते इनमेंसे किसीसे भी वह गतिको नहीं चाहते हैं ॥ ७० ॥

अतीतानागतं कर्म वर्तमानं तथैव च ।
न करोमि न भुञ्जामि इति मे निश्चला मतिः ॥७१॥

पदच्छेदः ।

अतीतानागतम्, कर्म, वर्तमानम्, तथा, एव, च, न, करोमि, न, भुञ्जामि, इति, मे, निश्चला, मतिः ॥

पदार्थः ।

अतीतानागतम्=भूत और भविष्यत् कर्मोंको और
तथा=तैसे ही
एव=निश्चय करके
वर्तमानम्=वर्तमान
कर्म=कर्मको
अहम्=मैं
न करोमि=नहीं करता हूं और
न भुञ्जामि=इनके फलको भी मैं नहीं भोगता हूं
इति=इस प्रकारकी
मे=मेरी
निश्चला=स्थिर
मतिः=बुद्धि है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं— भूत, भविष्यत् और वर्तमान ये तीन प्रकारके कर्म हैं उनमें जो पूर्वके जन्मोंमें कर्म किये गये हैं वह भूत कर्म कहाते हैं और जो भविष्यत् जन्मोंमें किये जायंगे वह भविष्यत् कर्म कहेजाते हैं, जो वर्तमान जन्ममें किये जाते हैं वह वर्तमान कर्म कहेजाते हैं । इनको मैं न करता हूं और न इनके फलका भोक्ता हूं । ऐसी मेरी स्थिर बुद्धि है । तात्पर्य यह है कि जिसका कर्मादिकोंमें अध्यास है वही अपनेको कर्त्ता

मानकर दुःखको प्राप्त होता है, और जिसका अध्यास निवृत्त होगया है वह अपनेको न तो कर्ता मानता है और न दुःखको प्राप्त होता है, इसी वास्ते वह जीवन्मुक्त भी कहा जाता है। इसीमें दत्तात्रेयजीका तात्पर्य है ॥ ७१ ॥

शून्यागारे समरसपूत-
स्तिष्ठन्नेकः सुखमवधूतः ।
चरति हि नग्नस्त्यक्त्वा गर्वं
विन्दति केवलमात्मनि सर्वम् ॥ ७२ ॥

पदच्छेदः ।

शून्यागारे, समरसपूतः, तिष्ठन्, एकः, सुखम्, अवधूतः, चरति, हि, नग्नः, त्यक्त्वा, गर्वम्, विन्दति, केवलम्, आत्मनि, सर्वम् ॥

पदार्थः ।

शून्यागारे=शून्य मन्दिरमें	त्यक्त्वा=त्याग करके
समरसपूतः=समतारूपी रसकरके पवित्र हुआ	नग्नः=नग्न
एकः=अकेला	हि=निश्चयकरके
अवधूतः=अवधूत	चरति=विचरताभी है
सुखम्=सुखपूर्वक	केवलम्=केवल
तिष्ठन्=स्थिर होता है	आत्मनि=आत्मामें
गर्वम्=अहंकारको	सर्वम्=सबको
	विन्दति=जानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जीवन्मुक्त अवधूत समदृष्टिवाला हुआ २ शून्य मन्दिरमें पवित्र होकर स्थित होता है। अर्थात् निर्जन देशमें ही रहता है, और सर्व पदार्थोंमें अहंकारका त्याग करके ही विचरते हैं। इसीवास्ते वह सुखी अपने आत्मामें ही सर्व प्रपञ्चको कल्पित देखता है ॥ ७२ ॥

त्रितयतुरीयं नहि नहि यत्र विन्दति केवलमात्मनि तत्र। धर्माधर्मौ नहि नहि यत्र बद्धो मुक्तः कथमिह तत्र ॥ ७३ ॥

पदच्छेदः।

त्रितयतुरीयम्, नहि, नहि, यत्र, विंदति, केवलम्, आत्मनि, तत्र, धर्माधर्मौ, नहि, नहि, यत्र, बद्धः, मुक्तः, कथम्, इह, तत्र ॥

पदार्थः।

यत्र=जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें	यत्र=जिस जीवनन्मुक्ति अवस्थामें
त्रितय-तुरीयम् }=जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चारों	धर्माधर्मौ=धर्माधर्म भी
नहि नहि=नहीं है नहीं है	नहि नहि=नहीं है नहीं है
तत्र=तिसी जीवन्मुक्ति अवस्थामें	तत्र=तिस अवस्थामें
आत्मनि=आत्मामें ही	बद्धः=यह बद्ध है
केवलम्=ब्रह्मानन्दकोही	मुक्तः=यह मुक्त है
विन्दति=लभता है फिर	इह=यहां
	कथम्=यह व्यवहार कैसे होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चारों अवस्था नहीं हैं उसी अवस्थामें जीवन्मुक्त अपने आत्मामें ब्रह्मानन्दको प्राप्त होता है फिर जिस अवस्थामें धर्म अधर्म भी नहीं हैं उस अवस्थामें यह बद्ध है और यह मुक्त है यह व्यवहार कैसे हो सकता है ? ॥ ७३ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि मंत्रं छन्दो लक्षणं नहि नहि तंत्रम्। समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपितमेतत्परमवधूतः ॥ ७४ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, मन्त्रम्, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तन्त्रम्, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपितम्, एतत्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

समरस-मग्नः=आत्मरसमें जो कि मग्न है	छन्दः=छन्द
भावितपूतः=चित्तसे शुद्ध है ऐसा जो कि	लक्षणम्=रूप
अवधूतः=अवधूत है वह	तन्त्रम्=तंत्रको
मन्त्रम्=मन्त्रको	नहि नहि=नहीं लभता २
विन्दति=लभता है	एतत्=इस
विन्दति=लभता है	परम्=परब्रह्मको ही
नहि नहि=नहीं लभता २	प्रलपितम्=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जीवन्मुक्त जो कि अवधूत पदवीको प्राप्त हो गया है सो उस पदवीको प्राप्त होकर किसी मन्त्रविशेषको नहीं प्राप्त होता है और न किसी छन्दरूपी तन्त्रको ही लभता है किन्तु वह परब्रह्मको ही लभता है अर्थात् अपने आत्मासे भिन्नको ब्रह्म वह नहीं जानता है किन्तु अपने आत्मा-काही चिन्तन करता है कैसा वह अवधूत है ? अन्तःकरणसे पवित्र है और एकरस आत्मानन्दमेंही मग्न है ॥ ७४ ॥

सर्वशून्यमशून्यं च सत्यासत्यं न विद्यते ।
स्वभावभावतः प्रोक्तं शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्मसंवित्त्युपदेशो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वशून्यम्, अशून्यम्, च, सत्यासत्यम्, न, विद्यते, स्वभावभावतः, प्रोक्तम्, शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ॥

पदार्थः ।

सर्वशून्यम्=संपूर्ण जगत् शून्यरूप है
च=और
अशून्यम्=आप शून्यसे रहित है
सत्यासत्यम्=सत्य और असत्यभी
न विद्यते=तिसमें विद्यमान नहीं है
स्वभावभावतः=स्वभावसे ही भावरूप
प्रोक्तम्=कहा है
शस्त्रसंवित्तिपूर्वकम्=शास्त्रके ज्ञान पूर्वक कहा है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--उस आत्मा ब्रह्ममें सम्पूर्ण जगत् शून्यकी तरह है और आप वह शून्यसे रहित है किन्तु शून्यका भी साक्षी है । उस चेतन आत्मामें सत्य असत्य ये दोनों भी विद्यमान नहीं हैं । और शास्त्रीय ज्ञानपूर्वक स्वभावसे ही तिसको विद्वानोंने भावरूप करके कथन किया है ॥ ७५ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्द-विरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अवधूत उवाच ।

बालस्य वा विषयभोगरतस्य वापि
मूर्खस्य सेवकजनस्य गृहस्थितस्य ।
एतद्गुरोः किमपि नैव न चिन्तनीयं
रत्नं कथं त्यजति कोऽप्यशुचौ प्रविष्टम् ॥१॥

पदच्छेदः ।

बालस्य, वा, विषयभोगरतस्य, वा, अपि, मूर्खस्य, सेवकजनस्य, गृहस्थितस्य, एतत्, गुरोः, किम्, अपि, नैव, न, चिन्तनीयम्, रत्नम्, कथम्, त्यजति, कः, अपि, अशुचौ, प्रविष्टम् ॥

पदार्थः ।

बालस्य=बालकको
वा=अथवा
विषयभोगरतस्य=विषयभोगमें प्रीतिवालेको
अपि=निश्चय करके
मूर्खस्य=मूर्खको
सेवकजनस्य=सेवकजनको
गृहस्थितस्य=गृहमें स्थितको
एतत्=इन
गुरोः=गुरुओंसे
किम्=कुछभी
अपि=निश्चय करके
नैव लभ्यते=लाभ नहीं होता है
न चिंतनीयं=ऐसा चिंतन नहीं करना
अशुचौ=अपवित्र कीच आदिमें
प्रविष्टम्=गिरे हुए
रत्नम्=रत्नको
कथम्=कैसे
कोऽपि=कोई भी
त्यजति=त्याग कर देता है?

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—बालकगुरुसे, विषयीगुरुसे, मूर्खगुरुसे, सेवकगुरुसे, गृहस्थीगुरुसे अर्थात् इस तरहके जो गुरु हैं उनसे कुछ भी लाभ नहीं होता है ऐसा चिन्तन मत करो किन्तु उनमें भी कोई न कोई गुण अवश्य होवेगा उसी गुणका ग्रहण करके उनका त्याग कर देओ क्योंकि अपवित्र कीच आदिमें जो हीरा पडा होता है उस हीरेका कौन पुरुष त्याग कर देता है अर्थात् हीरेका ग्रहण करके जैसे कीचका सब कोई त्याग करता है तैसे ही जिस किसीसे भी गुण मिलजावे उसीसे गुणको ग्रहण कर लेओ ॥ १ ॥

नैवात्र काव्यगुण एव तु चिन्तनीयो
ग्राह्यः परं गुणवता खलु सार एव ॥

सिन्दूरचित्ररहिता भुवि रूपशून्या
पारं न किं नयति नौरिह गन्तुकामान् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, एव, अत्र, काव्यगुणः, एव, तु, चिन्तनीयः, ग्राह्यः, परम्, गुणवता, खलु, सारः, एव, सिन्दूरचित्ररहिता, भुवि, रूपशून्या, पारम्, न, किम्, नयति, नौः, इह, गन्तुकामान् ॥

पदार्थः ।

अत्र=गुरुमें
काव्यगुणः=काव्यके गुण
एव तु=निश्चयकरके
नैव=नहीं
चिन्तनीयः=चिन्तन करने चाहिये
खलु=निश्चय करके
गुणवता=गुणवान्से
परम=परम
सारः=सारवस्तुका
एव=ही
ग्राह्यः=ग्रहण करना योग्य है
भुवि=पृथिवीतलमें
सिन्दूरचित्ररहिता=सिंदूरकी चित्रकारीसे रहित और
रूपशून्या=रूपसे शून्य
नौः=नौका
पारम्=पारको
गन्तुकामान्=जानेकी कामनावालोंको
इह=इस संसारमें
किम्=क्या
न नयति=पारको नहीं प्राप्त करती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, किसी भी गुरुमें काव्यादिक गुणोंका चिन्तन नहीं करना कि गुरुने काव्य, कोशादिकोंको पढा है. वा नहीं पढा है. किन्तु गुणोंवाले गुरुमें जो सारवस्तु हो उसीका ग्रहण करलेना और सब असार वस्तुका त्याग कर देना उचित है. इसीमें एक दृष्टान्त कहते हैं- इस लोकमें जैसे सिन्दूरके-चित्रोंवाली नौका नदीसे पार कर देती है तैसे ही सिन्दूरके चित्रोंसे रहित भी नौका नदीसे पार करदेती है । इसी प्रकार सारभूत गुणकी आकांक्षा करे चाहो. उत्तम जातिवालेसे मिले

चाहो कनिष्ठ जातिवालेसे मिले वह गुण ही संसारसे पार करदेता है दत्तात्रेयजीका यह तात्पर्य है कि, लकीरके फकीर मत बनो । कानमें फँक लगवाकर किसीकेभी पशु मत बनो, किन्तु गुणग्राही बनो और उत्तम गुणोंको धारण करो, क्योंकि विना ज्ञान वैराग्यादि गुणोंके धारण करनेसे पुरुष बन्धनसे नहीं छुटता है ॥ २ ॥

प्रयत्नेन विना येन निश्चलेन चलाचलम् ।
ग्रस्तं स्वभावतः शान्तं चैतन्यं गगनोपमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

प्रयत्नेन, विना, येन, निश्चलेन, चलाचलम्, ग्रस्तम्, स्वभावतः, शान्तम्, चैतन्यम्, गगनोपमम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस	ग्रस्तम्=ग्रसा है
निश्चलेन=निश्चलकरके	स्वभावतः=स्वभावसे ही
प्रयत्नेन=प्रयत्नसे	शान्तम्=शान्तरूप है
विना=विनाही	चैतन्यम्=चैतन्यस्वरूप है
चलाचलम्=चल अचल सब वह चेतन	गगनोपमम्=आकाशकी उपमावाला है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस निश्चय आत्मा चेतनकरके विना प्रयत्नही संपूर्ण चल और अचलरूप जगत् ग्रसा है, वह स्वभावसे ही शान्त है आकाशकी तरह स्थिर और व्यापक है सो चेतन मैं ही हूँ ॥ ३ ॥

अयत्नाच्चालयेद्यस्तु एकमेव चराचरम् ।
सर्वगं तत्कथं भिन्नमद्वैतं वर्तते मम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अयत्नात्, चालयेत्, यः, तु, एकम्, एव, चराचरम्, सर्वगम्, तत्, कथम्, भिन्नम्, अद्वैतम्, वर्तते, मम ॥

पदार्थः।

तु=पुनः फिर	सर्वंगम्=वह सर्वगत है
यः=जो	अद्वैतम्=अद्वैत है
एकम्=एकही	मम=मुझसे
एव=निश्चय करके	भिन्नम्=भिन्न
अयत्नात्=बिनाही यत्नसे	तत्=सो
चराचरम्=चर अचरको	कथम्=कैसे
चालयेत्=चलायमान करता है	वर्तते=वर्तता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कि जो एक ही व्यापक चेतन विना प्रयत्नके ही संपूर्ण चर अचर जगत्को चलायमान करता है वह सर्वगत भी है, सो मेरेसे भिन्न अद्वैतरूप हो करके कैसे वर्तता है? अर्थात् नहीं वर्तता है। तात्पर्य यह है कि, यदि भिन्न होकर अद्वैतरूपसे वर्ते तब तो द्वैतकी प्राप्ति हो जावेगी। इसवास्ते वह भिन्न होकर अद्वैतरूपसे नहीं वर्तता है, किन्तु अभिन्न होकरही वह अद्वैतरूपसे वर्तता है ॥ ४ ॥

अहमेव परं यस्मात्सारासारतरं शिवम्।
गमागमविनिर्मुक्तं निर्विकल्पं निराकुलम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

अहम्, एव, परम्, यस्मात्, सारासारतरम्, शिवम्, गमागमविनिर्मुक्तम्, निर्विकल्पम्, निराकुलम् ॥

पदार्थः।

अहम्=मैंही	शिवम्=कल्याणस्वरूप हूँ
एव=निश्चय करके	गमागमविनिर्मुक्तम्=और गमनागमनसे भी रहित हूँ और
यस्मात्=जिस प्रकृतिसे	निर्विकल्पम्=निर्विकल्प हूँ
परम्=सूक्ष्म हूँ और	निराकुलम्=कुलसे रहित हूँ
सारासारतरम्=सारअसारसे भी रहित हूं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं ही प्रकृतिसे सूक्ष्म हूं, सार असारसे रहित हूँ, कल्याणरूप हूँ, गमनागमनसे रहित हूँ, और विकल्पसे भी रहित हूँ, अर्थात् मेरेमें द्वैत, अद्वैतका विकल्प भी नहीं बनता है, और कुलसे भी रहित हूँ॥५॥

सर्वावयवनिर्मुक्तं तदहं त्रिदशार्चितम् ।
संपूर्णत्वान्न गृह्णामि विभागं त्रिदशादिकम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वावयवनिर्मुक्तम्, तत्, अहम्, त्रिदशार्चितम्, संपूर्णत्वात्, न, गृह्णामि, विभागम्, त्रिदशादिकम् ॥

पदार्थः ।

तत् अहम्=सो मैं	सम्पूर्णत्वात्=सम्यक् पूर्ण होनेसे
सर्वावयवनिर्मुक्तम्=संपूर्ण अवयवोंसे रहित हूँ और	त्रिदशादिकम्=देवतादिकोंके
त्रिदशार्चितम्=देवताओंसे भी पूजित हूँ	विभागम्=विभागको
	न गृह्णामि=मैं ग्रहण नहीं करता हूँ

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—कि, सो सच्चिदानन्दरूप मैं निरवयव हूँ, अर्थात् अवयवरहित हूँ और सब देवताभी मेरा पूजन करते हैं । सबमें पूर्ण होनेसे देवता आदिकोंमें भी मैं ही हूँ. इसी वास्ते देवताओंके साथ भी मेरा विभाग अर्थात् भेद नहीं है किन्तु अभेद ही है ॥ ६ ॥

प्रमादेन न सन्देहः किं करिष्यामि वृत्तिमान् ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते बुद्बुदाश्च यथा जले ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

प्रमादेन, न, सन्देहः, किम्, करिष्यामि, वृत्तिमान्, उत्पद्यन्ते, विलीयन्ते, बुद्बुदाः, च, यथा, जले ॥

पदार्थः।

प्रमादेन=प्रमादकरके
वृत्तिमान्=अन्तःकरणकी वृत्तियों-[वाला
किम्=क्या
करिष्यामि=मैं करता हूँ? किन्तु नहीं
यथा=जिस प्रकार
जले=जलमें
बुद्बुदाः=बुलबुले
उत्पद्यन्ते=उत्पन्न होते हैं
च=और
विलीयन्ते=लय होजाते हैं इसी प्रकार अन्तःकरणकी वृत्तियां भी उत्पन्न होती हैं। लय होती हैं
न संदेहः=इसमें संदेह नहीं है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--अन्तःकरणकी वृत्तियोंको मैं प्रमादकरके उत्पन्न नहीं कर्ता हूँ, किन्तु जैसे जलमें बुलबुले आपसे आप उत्पन्न होते हैं, और फिर उसीमें लय होजाते हैं, इसी प्रकार अन्तःकरणकी वृत्तियां भी आपसे आप उत्पन्न होती हैं, और फिर उसीमें लय भी हो जाती हैं, इसमें किसी तरहका संदेह नहीं है मैं तो इनका साक्षी हूँ ॥ ७ ॥

महदादीनि भूतानि समाप्यैवं सदैव हि।
मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु कटुकेषु च ॥ ८ ॥
कटुत्वं चैव शैत्यत्वं मृदुत्वं च यथा जले।
प्रकृतिः पुरुषस्तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

महदादीनि, भूतानि, समाप्य, एवम्, सदा, एव, हि, मृदुद्रव्येषु, तीक्ष्णेषु, गुडेषु, कटुकेषु, च, कटुत्वम्, च, एव, शैत्यत्वम्, मृदुत्वम्, च, यथा, जले, प्रकृतिः, पुरुषः, तद्वत्, अभिन्नम्, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः।

महदादीनि=महत्तत्त्व आदि
भूतानि=भूतोंको
सदैव=सब काल
हि=निश्चयकरके
एवम्=इस प्रकार
समाप्य=समाप्त करै
मृदुद्रव्येषु=मृदुद्रव्योंमें
च=और
तीक्ष्णेषु=तीक्ष्ण द्रव्योंमें
गुडेषु=गुडमें
कटुकेषु=कटुद्रव्योंमें
कटुत्वम्=कटुरस
चैव=और निश्चय करके
शैत्यत्वम्=शीतता
च और
मृदुत्वम्=कोमलता
यथा=जिस प्रकार
जले=जलमें भिन्न प्रतीत होते हैं
तद्वत्=तैसे ही
प्रकृतिः=प्रकृति और
पुरुषः=पुरुष
मे=मुझको
अभिन्नम्=अभेदही
प्रतिभाति=भान होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे मृदु अर्थात् कोमल द्रव्योंमें कोमलता उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है, और मिरचा आदिक तीक्ष्णद्रव्योंमें तीक्ष्णता, और मधुर गुडादिक द्रव्योंमें माधुर्यता, और नीमादिक कटुद्रव्योंमें कटुता उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है इसी प्रकार जैसे जलमें शीतता और कोमलता जलसे भिन्न करके प्रतीत नहीं होती है अर्थात् अपने २ द्रव्यके गुण अपने २ द्रव्यमें ही लीन हो जाते हैं, इसी प्रकार महत्तत्त्वसे आदि लेकर स्थूलभूतोंपर्यन्त इनको भी अपने कारणोंमें लय करके बाकी जो संपूर्ण तत्त्वोंका कारणीभूत प्रकृति है, उसका भी पुरुषके साथ हमको भेद किसी प्रकारसे भी प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि प्रकृतिको चेतनकी शक्ति माना है शक्तिका शक्तिवालेसे भेद किसी प्रकारसे भी नहीं होसकता है। जैसे अग्निकी शक्ति अग्निसे भिन्न होकर प्रतीत नहीं होती है किन्तु कार्यद्वारा अनुमान की जाती है। इसी प्रकार चेतनकी शक्ति भी चेतनसे भिन्न नहीं भान होती है, किन्तु चेतनसे तिसका भेद नहीं है अर्थात् चेतनरूपही है ॥ ८–९ ॥

सर्वाख्यारहितं यद्वत्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं परम् ।
मनोबुद्धीन्द्रियातीतमकलङ्कं जगत्पतिम् ॥ १० ॥

ईदृशं सहजं यत्र अहं तत्र कथं भवेत्।
त्वमेव हि कथं तत्र कथं तत्र चराचरम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः।

सर्वाख्यारहितम्, यद्वत्, सूक्ष्मात्, सूक्ष्मतरम्, परम्, मनोबुद्धीन्द्रियातीतम्, अकलंकम्, जगत्पतिम्, ईदृशम्, सहजम्, यत्र, अहम्, तत्र, कथम्, भवेत्, त्वम्, एव, हि, कथम्, तत्र, कथम्, तत्र, चराचरम् ॥

पदार्थः।

यद्वत्=जिसवास्ते
सर्वाख्या-रहितम् } आत्मा सम्पूर्ण संज्ञासे रहित है इसीवास्ते
सूक्ष्मात्=सूक्ष्मसेभी
सूक्ष्मतरम्=अतिसूक्ष्म है
परम्=उत्कृष्ट है
मनोबुद्धी-न्द्रियातीतम् } मन बुद्धी और इंद्रियोंकाअविषयहै फिर
अकलंकम्=कलंकसे रहित है
जगत्पतिम्=जगत्का पति है
ईदृशम्=इस प्रकारके गुण
सहजम्=स्वभावसे
यत्र=जिसमें विद्यमान है
तत्र=तिसमें
अहम्=मैं
कथम्=किस प्रकार
भवेत्=कहना बनता है और
कथम्=कैसे बनता है और
त्वम् एव हि=तू निश्चयकरके
कथम्=कैसे बनता है और
तत्र=तिसमें फिर
चराचरम्=चर अचर
कथम्=कैसे बनता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह ब्रह्मचेतन जिसवास्ते सम्पूर्ण नामादिक संज्ञासे रहित है, इसीवास्ते वह सबसे सूक्ष्म जो कि प्रकृति है, उससे भी अतिसूक्ष्म और श्रेष्ठ है, और मन बुद्धि तथा इन्द्रियोंका भी वह विषय नहीं है फिर वह कलंकसे अर्थात् उपाधिसे भी रहित है, सम्पूर्ण जगत्का स्वामी है। इस प्रकारका जिसका स्वभावसे ही स्वरूप है तिस चेतन आत्मामें "अहम्" मैं और "त्वम्" तू यह कथन किस प्रकारसे बनता है?

अर्थात् अहम् त्वम् आदि भेदोंका कथन तिसमें नहीं बनता है। और यह चराचररूप जगत् भी तिसमें कैसा बनता है किन्तु किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है ॥ १० ॥ ११ ॥

गगनोपमं तु यत्प्रोक्तं तदेव गगनोपमम् ।
चैतन्यं दोषहीनं च सर्वज्ञं पूर्णमेव च ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

गगनोपमम्, तु, यत्, प्रोक्तम्, तत्, एव, गगनोपमम्, चैतन्यम्, दोषहीनम्, च, सर्वज्ञम्, पूर्णम्, एव, च ॥

पदार्थः ।

तु यत्=पुनः जो कि
गगनोपमम्=आकाशकी उपमा-[वाला
प्रोक्तम्=कथन किया है
तत् एव=सोई निश्चय करके
गगनोपमम्=गगनकी उपमावाला है
चैतन्यम्=वह चेतन है
दोषहीनम्=दोषोंसे हीन है
च=और
सर्वज्ञम्=सर्वज्ञभी है
च एव=और निश्चय करके
पूर्णम्=पूर्ण भी है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि गगनकी उपमावाला कहा है वही गगनकी उपमावाला है, उससे भिन्न दूसरा गगन कोई भी गगनकी उपमावाला नहीं है, सो चेतनसे भिन्न दूसरा चेतनभी उपमावाला नहीं है । सो चेतन है दोषसे रहित है, वही सर्वज्ञ और पूर्ण भी है ॥ १२ ॥

पृथिव्यां चरितं नैव मारुतेन च वाहितम् ।
वारिणा पिहितं नैव तेजोमध्ये व्यवस्थितम् ॥१३॥

पदच्छेदः ।

पृथिव्याम्, चरितम्, न, एव, मारुतेन, च, वाहितम्, वारिणा, पिहितम्, नैव, तेजोमध्ये, व्यवस्थितम् ॥

पदार्थः ।

पृथिव्याम्=पृथिवीमें वह चेतन
गतिम्=गमन
खलु=निश्चयकरके
न=नहीं करता है
मारुतेन=मारुत जो है सो
वाहितम्=वाहन तिसको
न च=नहीं करता है

वारिणा=जलकरके
पिहितम्=आच्छादित वह
नैव=नहीं है और
तेजोमध्ये=तेजके मध्यमें
व्यवस्थितम्=स्थितभी है, और तेज तिसको जला भी नहीं सकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मा पृथिवीमें चलता नहीं वायु उसको ले नहीं जा सकता न पानी ही उसको ढक सकता है। वह तेजके बीच स्थित रहता है ॥ १३ ॥

आकाशं तेन संव्याप्तं न तद्व्याप्तं च केनचित् ।
स बाह्याभ्यन्तरं तिष्ठत्यवच्छिन्नं निरन्तरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

आकाशम्, तेन, संव्याप्तम्, न, तत्, व्याप्तम्, च, केनचित्, सः, बाह्याभ्यन्तरम्, तिष्ठति, अवच्छिन्नम्, निरन्तरम् ॥

पदार्थः ।

तेन=तिस चेतन करके
आकाशम्=आकाश
संव्याप्तम्=सम्यक् व्याप्त है
च तत्=और सो चेतन
केनचित्=किसीप्रकारके भी
न व्याप्तम्=नहीं व्याप्त है

सः=सो व्यापक चेतन
अवच्छिन्नम्=व्यवधानसे रहित
निरन्तरम्=एक रस
बाह्याभ्यन्तरम्=सबके बाहर और भीतर
तिष्ठति=स्थित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनसे आकाश अच्छे प्रकारसे व्याप्त है पर वह किसीसे व्याप्त नहीं है, वह सर्वव्यापक बाहर भीतर सर्वत्र

व्यवधानसे रहित सदा स्थित रहता है, आकाशका कोई अन्त नहीं पासकता यह इतना मालूम पड़ता है कि, इसकी कोई सीमा नहीं है, कि कहांतक यह है । इसका अनुमान भी नहीं होसकता ऐसा आकाश भी उस परमात्मासे व्याप्त है अर्थात् सर्वत्र आत्मा ही है ॥ १४ ॥

सूक्ष्मत्वात्तददृश्यत्वान्निर्गुणत्वाच्च योगिभिः ।
आलम्बनादि यत्प्रोक्तं क्रमादालम्बनं भवेत् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

सूक्ष्मत्वात्, तत्, अदृश्यत्वात्, निर्गुणत्वात्, च, योगिभिः, आलम्बनादि, यत्, प्रोक्तम्, क्रमात्, आलम्बनम्, भवेत् ॥

पदार्थः ।

योगिभिः=योगियोंने	क्रमात्=क्रमसे
यत्=जो चेतनका	भवेत्=होता है
आलम्बनादि=आलम्बनादि	तत्सूक्ष्मत्वात्=तिस सूक्ष्म होनेसे
प्रोक्तम्=कहा है सो	अदृश्यत्वात्=अदृश्य होनेसे
आलम्बनम्=आलम्बन	निर्गुणत्वात्=निर्गुण होनेसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—योगियोंने अर्थात् जीवन्मुक्त ज्ञानवानोंने जिस चेतन ब्रह्मका आश्रयण करना कहा है सो एकवारगी नहीं होता है किन्तु क्रमसेही होता है । प्रथम स्थूलपदार्थमें मनका निरोध किया जाता है फिर धीरे २ उससे सूक्ष्ममें फिर उससे सूक्ष्ममें इस रीतिसे धीरे २ तिसका साक्षात्कार होकर ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति भी हो जाती है क्योंकि वह चेतन अति सूक्ष्म है अदृश्य है निर्गुण है इस वास्ते इसका आलंबन एकवारगी नहीं होता है, किन्तु क्रमसे और युक्तिसे होता है ॥ १५ ॥

योगियोंने जो आलम्बनका क्रम कहा है सो क्रम अब इस श्लोकमें दिखाते हैं—

सतताऽभ्यासयुक्तस्तु निरालम्बो यदा भवेत् ।
तल्लयाल्लीयते नान्तर्गुणदोषविवर्जितः ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

सतताभ्यासयुक्तः, तु, निरालम्बः, यदा, भवेत्, तल्लयात्, लीयते, न, अन्तः, गुणदोषविवर्जितः ॥

पदार्थः ।

यदा तु=जिस कालमें पुनः
सतताभ्यासयुक्तः=निरन्तर अभ्यास करके युक्त हुआ २
निरालम्बः=निरालम्ब
भवेत्=होताहै और
अन्तः=भीतरसे
गुणदोषविवर्जितः=गुण और दोषोंसे रहित होताहै तिसी कालमें
तल्लयात्=चित्तके लय करनेसे
लीयते=लय हो जाता है
न=विना इसके नहीं होता

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो पुरुष प्रथम निरालम्ब होकर अर्थात् किसी भी देवता आदिकको आश्रयण न करके केवल चेतनको आश्रयण करके निरन्तर ही अभ्यास करके युक्त होता है और अविद्याकृत गुणों और दोषोंसे रहित होजाता है तब इसका चित्त लय होजाता है चित्तके लय होजानेसे स्वयं भी ब्रह्ममें ही लीन होजाता है १६॥

विषविश्वस्य रौद्रस्य मोहमूर्च्छाप्रदस्य च ।
एकमेव विनाशाय ह्यमोघं सहजामृतम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

विषविश्वस्य, रौद्रस्य, मोहमूर्च्छाप्रदस्य, च, एकम्, एव, विनाशाय, हि, अमोघम्, सहजामृतम् ॥

पदार्थः ।

विषविश्वस्य=विषरूपी विषयके
विनाशाय=नाशके लिये
एव हि=निश्चयकरके
एकम्=एक
अमोघम्=अमोघ और
सहजामृतम्=सहज ही अमृत है फिर कैसा वह विषय है
रौद्रस्य=बडा भयानक
च=और
मोहमूर्च्छाप्रदस्य=मोह तथा मूर्च्छाको देनेवाला है

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जगत्‌रूपी एक बडाभारी विष है. यह विष भयानक और मोहमूर्च्छाके देनेवाला भी है । इसके नाशके लिये एक ही अमोघ अर्थात् यथार्थ और सहज ही अमृत है, सो आत्मज्ञानरूपी एक अमृत है क्योंकि विना आत्मज्ञानके यह विष दूर नहीं होता है ॥ १७ ॥

अब उसी अमृतको दिखाते हैं:—

भावगम्यं निराकारं साकारं दृष्टिगोचरम् ।
भावाभावविनिर्मुक्तमन्तरालं तदुच्यते ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

भावगम्यम्, निराकारम्, साकारम्, दृष्टिगोचरम्, भावाभावविनिर्मुक्तम्, अन्तरालम्, तत्, उच्यते ॥

पदार्थः ।

निराकारम्=निराकार जो चेतन है सो	भावाभावविनिर्मुक्तम्=भाव अभावसे जो रहित है
भावगम्यम्=चित्तसे ही जानाजाता है और जो कि	तत्=सो
साकारम्=साकार है वह	अन्तरालम्=अन्तराल ही
दृष्टिगोचरम्=दृष्टिका विषय है	उच्यते=कहाजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि निराकार व्यापक चेतन है सो केवल चित्तकरके ही जाना जाता है क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय नहीं है और जो कि साकार है वह दृष्टिका विषय है, इतना ही निराकार साकारका फरक है, फिर जो कि भाव पदार्थसे और अभावरूपसे भी रहित है सो अन्तराल ही कहा जाता है ॥ १८ ॥

बाह्यभावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते ।
अन्तरादन्तरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

बाह्यभावम्, भवेत्, विश्वम्, अन्तः, प्रकृतिः, उच्यते, अन्तरात्, अन्तरम्, ज्ञेयम्, नारिकेलफलाम्बुवत् ॥

पदार्थः ।

बाह्यभावम्=बाहर जितना कि भाव पदार्थ है	अन्तरात्=अन्तर प्रकृतिसे भी
विश्वम्=सो जगत्	अन्तरम्=भीतर
भवेत्=होता है और	ज्ञेयम्=वह ब्रह्म जाननेके योग्य है
अन्तः=बाह्यभावके भीतर	नारिकेलफलाम्बुवत्=जैसे नारिकेल फलके अन्दर जल होता है
प्रकृतिः=प्रकृति	
उच्यते=कही जाती है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—बाहर जो कुछ दिखाता है यह सब स्थूलभाव पदार्थ विश्व कहा जाता है और इसके भीतर इसका कारण जो है उसका नाम प्रकृति है उस सूक्ष्म प्रकृतिके भीतर और प्रकृतिसे भी सूक्ष्म वह चेतन ब्रह्म व्यापक जाननेके योग्य है इसीमें दृष्टान्तको कहते हैं। जैसे नारियलके फलका ऊपरका बकला बडा कडा होता है और तिसके भीतरकी गिरी बकलेसे सूक्ष्म होती है उस गिरिसे भीतर सूक्ष्म उसके जल रहता है। इसी प्रकार दार्ष्टान्तमें भी घटालेना ॥ १९ ॥

भ्रान्तिज्ञानं स्थितं बाह्ये सम्यग्ज्ञानं च मध्यगम् ।
मध्यान्मध्यतरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

भ्रान्तिज्ञानम्, स्थितम्, बाह्ये, सम्यग्ज्ञानम्, च, मध्यगम्, मध्यात्, मध्यतरम्, ज्ञेयम्, नारिकेलफलाम्बुवत् ॥

पदार्थः ।

भ्रान्तिज्ञानम्=भ्रान्तिज्ञान	मध्यगम्=अन्तर है
बाह्ये=बाहरके पदार्थोंमें	मध्यात्=मध्यसे भी
स्थितम्=स्थित है	मध्यतरम्=अतिमध्य
च=और	ज्ञेयम्=जाननेके योग्य है
सम्यग्ज्ञानम्=यथार्थ ज्ञान	नारिकेलफलाम्बुवत्=नारियलके फलके जलकी तरह

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—बाहरके प्रपंचमें तो भ्रांतिज्ञान होता है और उसके अन्तर अर्थात् मध्यमें स्थितका जो ज्ञान है सो समीचीन ज्ञान है जैसे नारियलके फलके भीतर जल रहता है इसी प्रकार उसके भीतर सूक्ष्म आत्मा जाननेके योग्य है उसीके ज्ञानसे जीवन्मुक्त होता है ॥ २० ॥

पौर्णमास्यां यथा चन्द्र एक एवातिनिर्मलः ।
तेन तत्सदृशं पश्येद्द्विधा दृष्टिविपर्ययः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

पौर्णमास्याम्, यथा, चन्द्रः, एकः, एव, अतिनिर्मलः, तेन, तत्सदृशम्, पश्येत्, द्विधा, दृष्टिविपर्ययः ॥

पदार्थः ।

पौर्णमास्याम्=पौर्णमासीमें	तेन=तिसी कारणसे
यथा=जिस प्रकार	तत्सदृशम्=तिस चन्द्रमाके तुल्य ही
एकः=एकही	पश्येत्=आत्माको भी निर्मल देखे
चन्द्रः=चन्द्रमा	द्विधा=दो प्रकारका
एव=निश्चयकरके	दृष्टिविपर्ययः=दृष्टिविपर्यय ज्ञान है
अतिनिर्मलः=अतिनिर्मल होता है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे पूर्णमासीका जो चन्द्रमा है सो एकही अति निर्मल दिखाई पडता है इसी प्रकार आत्मा भी अति निर्मल और एक है चन्द्रमाकी तरह एकही आत्माको शुद्ध देखे । जैसे नेत्रमें रोग होनेसे दो चन्द्रमा देख पडते हैं सो विपर्यय ज्ञान है अर्थात् भ्रमज्ञान है क्योंकि वास्तवमें चन्द्रमा दो नहीं हैं किन्तु एकही है इसी प्रकार संपूर्ण ब्रह्माण्डभरमें आत्माभी एकही है आत्मामें जो द्वैतकी कल्पना है, सो भ्रमज्ञान है ॥ २१ ॥

अनेनैव प्रकारेण बुद्धिभेदो न सर्वगः ।
दाता च धीरतामेति गीयते नामकोटिभिः ॥ २२ ॥

पदच्छेदः।

अनेन, एव, प्रकारेण, बुद्धिभेदः, न, सर्वगः, दाता, च, धीरताम्, एति, गीयते, नामकोटिभिः ॥

पदार्थः।

अनेन=इसी पूर्वोक्त	च=और
प्रकारेण=प्रकारसे	दाता=देनेवाला
एव=निश्चयकरके	धीरताम्=धीरताको
बुद्धिभेदः=ज्ञानका भेद	एति=प्राप्त होता है
सर्वगः=सबगतमें	नामकोटिभिः=कोटि नामों करके
न=नहीं होता है	गीयते=गाया जाता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इसी पूर्वोक्त प्रकार करके सर्वगत चेतनमें किसी-प्रकारसे भी भेदकी कल्पना नहीं बन सकती है। जो विद्वान् जिज्ञासुओंके प्रति उस ब्रह्मचेतनके अभेद ज्ञानका ज्ञान करता है वह धैर्यताको प्राप्त होता है और करोडों नामों करके गायन किया जाता है अर्थात् जिज्ञासुजन तिसकी करोडों नामों करके स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन मूर्खो वा यदि पंडितः।
यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः।

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खः, वा, यदि, पंडितः, यः, तु, सम्बुध्यते, तत्त्वम्, विरक्तः, भवसागरात् ॥

पदार्थः।

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन=गुरुकी बुद्धिकी प्रसन्नताकरके	तु यः=पुनः जो
	तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको
मूर्खः=मूर्ख हो	सम्बुध्यते=जान लेता है वह पुरुष
वा=अथवा	भवसागरात्=संसाररूपी समुद्रसे
यदि=यदि	विरक्तः=विरक्त
पंडितः=पंडित हो	(भवति=विरक्त होजाताता है)

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मूर्ख हो अथवा पंडित हो, गुरुकी कृपासे जो आत्मतत्त्वको यथार्थ रूपसे जानलेता है वह शीघ्रही संसाररूपी समुद्रसे विरक्त अर्थात् उपराम युक्त होकर जन्म मरणसे छूटजाता है, फिर संसार चक्रमें नहीं आता है ॥ २३ ॥

रागद्वेषविनिर्मुक्तः सर्वभूतहिते रतः ।
दृढबोधश्च धीरश्च स गच्छेत्परमं पदम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः, सर्वभूतहिते, रतः, दृढबोधः, च, धीरः, च, सः, गच्छेत्, परमम्, पदम् ॥

पदार्थः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः=जो रागद्वेषसे रहित है
च=और
सर्वभूतहिते रतः=संपूर्ण भूतोंके हितमें प्रीतिवाला है
च=और
दृढबोधः=जिसको दृढबोध है
धीरः=धीर है
सः=विद्वान्
परमम्=परम
पदम्=पदको
गच्छेत्=गमन करता है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—सोई विद्वान् अर्थात् ज्ञानवान् परमपदको प्राप्त होता है जो कि रागद्वेषादिकोंसे रहित है और संपूर्ण भूतोंके हितकीही इच्छा करता है किसीके भी अहितकी जो इच्छा नहीं करता है फिर जिसको आत्माकाभी दृढ बोध है अर्थात् यथार्थ ज्ञान है और धैर्यतावाला भी है वही परमपदको प्राप्त होता है दूसरा नहीं ॥ २४ ॥

घटे भिन्ने घटाकाश आकाशे लीयते यथा ।
देहाभावे तथा योगी स्वरूपे परमात्मनि ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

घटं, भिन्ने, घटाकाशः, आकाशे, लीयते, यथा, देहाभावे, तथा, योगी, स्वरूपे, परमात्मनि ।

पदार्थः ।

घटे भिन्ने=घटके नाश होनेपर	तथा=तैसे ही
यथा=जैसे	देहाभावे=देहके नाश होनेपर
घटाकाशः=घटाकाश	योगी=जीवन्मुक्त
आकाशे=महाकाशमें	परमात्मनि=परमात्माके
लीयते=लय होजाता है	स्वरूपे=स्वरूपमें लीन होजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जबतक घटरूपी उपाधि बनी है तबतक घटाकाशकाभी महाकाशके साथ भेद प्रतीत होता है । उपाधिके नाश होजानेपर जैसे घटाकाशका महाकाशके साथ अभेद होजाता है तैसेही लिंगशरीररूपी उपाधिके नाश होजानेपर ज्ञानवान्का आत्मा भी परमात्मामें ही लीन होजाता है अर्थात् दोनोंका अभेद होजाता है ॥ २५ ॥

उक्तेयं कर्मयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः ।
न चोक्ता योगयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः॥२६॥

पदच्छेदः ।

उक्ता, इयम्, कर्मयुक्तानाम्, मतिः, या, अन्ते, अपि, सा, गतिः, न, च, उक्ता, योगयुक्तानाम्, मतिः, या, अन्ते, अपि, सा, गतिः ॥

पदार्थः ।

कर्मयुक्तानाम्=कर्मियोंके लिये
इयम्=यह
उक्ता=कहा है कि,
या=जैसी
अन्ते=अन्तमें
मतिः=बुद्धि होती है
अपि=निश्चयकरके
सा गतिः=वैसी गति होती है

योगयुक्तानाम्=जीवन्मुक्त ज्ञानियोंके लिये
न च उक्ता=नहीं कहा है
या=जैसी
अन्ते=अन्तमें
अपि=निश्चय करके
मतिः=मति होती है
सा गतिः=सोई गति होती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिस वार्तामें जिसका रात्रिदिन अधिक अभ्यास होता है उसीके दृढ संस्कार तिसके भीतर होते हैं और अन्तसमयमें अर्थात् मरणकालमें भी वही संस्कार उद्भूत होकर उसको उसी गतिको प्राप्त कर देते हैं तात्पर्य यह है कि, जिसका कि जिस वस्तुमें अति प्रेम होता है, स्त्रीमें वा पुत्रमें या धनमें या पशुपक्षी आदिकोंमें अन्तसमयमें भी उसका मन उसी तरफ चला जाता है और वह मरकरके उसी योनिमें जन्मता है सो यह अन्तवाली मतिकी गति कर्मियोंके लिये कही है, जीवन्मुक्त ज्ञानवालोंके लिये यह अन्तवाली मतिकी गति नहीं कही है; क्योंकि योगी लोग तो सर्वदा ब्रह्मके ही चिन्तनमें रहते हैं इसीवास्ते अन्तसमयमें भी उनकी मति ब्रह्मके चिन्तनको ही करती है और वह मरकरके ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं ॥२६॥

या गतिः कर्मयुक्तानां सा च वागिन्द्रियाद्वदेत् ।
योगिनां या गतिः क्वापि ह्यकथ्या भवतार्जिता ॥२७॥

पदच्छेदः ।

या, गतिः, कर्मयुक्तानाम्, सा, च, वागिन्द्रियात्, वदेत्, योगिनाम्, या, गतिः, क्वापि, हि, अकथ्या, भवता, अर्जिता ॥

पदार्थः ।

कर्मयुक्तानाम्=कर्मयोगियोंकी	या गतिः=जो गति
या गतिः=जो गति शास्त्रोंमें कही है	हि=निश्चयकरके
सा=सो गति	भवता=तुमने
वागिन्द्रियात्=वाणी इन्द्रियकरके	अर्जिता=संग्रह की है
वदेत्=कही जाती है	क्वापि=कहीं भी वह
च=और	अकथ्या=कथन करनेके
योगिनाम्=योगियोंकी	योग्य नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कर्मयोगियोंकी जो स्वर्ग और नरककी प्राप्ति-रूपी गति है सो तो शास्त्रोंमें कथन की है और वागिन्द्रिय भी उसको कथन करसकती है । और आत्मज्ञानियोंकी जो गति आपलोगोंने शास्त्रमें देखी है वह मन वाणी करके भी कथन नहीं की जाती है ॥ २७ ॥

एवं ज्ञात्वा त्वमुं मार्गं योगिनां नैव कल्पितम् ।
विकल्पवर्जनं तेषां स्वयं सिद्धिः प्रवर्तते ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, ज्ञात्वा, तु, अमुम्, मार्गम्, योगिनाम्, न, एव, कल्पितम्, विकल्पवर्जनम्, तेषाम्, स्वयम्, सिद्धिः, प्रवर्तते ॥

पदार्थः ।

एवं=इस प्रकारसे	स्वयम्=आपसे आप
तेषाम्=उन पूर्वोक्त	सिद्धिः=सिद्धि
योगिनाम्=योगियोंके	प्रवर्तते=प्रवृत्त होती है
विकल्पवर्जनम्=विकल्पसे रहित	तु=पुनः फिर वह
अमुम्=इस पूर्वोक्त	एव=निश्चयकरके
मार्गम्=मार्गको	न कल्पितम्=कर्मियोंके मार्गकी तरह कल्पित नहीं है
ज्ञात्वा=जानकरके	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–ज्ञानयोगियोंका जो मार्ग पूर्व कहा है सो कर्मियोंके मार्गकी तरह कल्पनासे रहित अर्थात् जैसे कर्मियोंका मार्ग मिथ्या और पुनरावृत्तिवाला है तैसे नहीं है । जो विद्वान् इस प्रकार जानकरके ज्ञानयोगियोंके मार्गमें प्रवृत्त होता है उसमें आपसे आप सिद्धि प्रवृत्त होती है और वह फिर संसारबंधनसे मुक्तभी होजाताहै ॥२८॥

तीर्थे वांत्यजगेहे वा यत्र कुत्र मृतोऽपि वा ।
न योगी पश्यते गर्भं परे ब्रह्मणि लीयते ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

तीर्थे, वा, अन्त्यजगेहे, वा, यत्र, कुत्र, मृतः, अपि, वा, न, योगी, पश्यते, गर्भम्, परे, ब्रह्मणि, लीयते ॥

पदार्थः ।

योगी=आत्मज्ञानी	गर्भम्=गर्भको
तीर्थे=तीर्थमें	न पश्यते=नहीं देखता है
वा=अथवा	अपि=निश्चयकरके
अन्त्यजगेहे=चाण्डालके गृहमें	परे=उत्कृष्ट
वा=अथवा	ब्रह्मणि=ब्रह्ममें ही
यत्र कुत्र=जहाँ कहीं	लीयते=लय भावको प्राप्त होता है
मृतः=मरनेपर	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जीवन्मुक्त ज्ञानवान् चाहे किसी तीर्थपर शरीरका त्याग करदे अथवा चांडालके घरमें शरीरका त्याग करदे अथवा जहाँ कहीं अर्थात् जलमें, थलमें, अन्तरिक्षमें, रास्ता वगैरहमें शरीरका त्याग करदे तो भी वह फिर कर्मी मूर्खकी तरह माताके गर्भमें नहीं आता है, किन्तु ब्रह्ममेंही लीन होजाता है ॥ २९ ॥

सहजमजमचिन्त्यं यस्तु पश्येत्स्वरूपं
घटति यदि यथेष्टं लिप्यते नैव दोषैः ॥

सकृदपि तदभावात्कर्म किञ्चिन्न कुर्यात्
तदपि न च विबद्धः संयमी वा तपस्वी ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

सहजम्, अजम्, अचिन्त्यम्, यः, तु, पश्येत्, स्वरूपम्, घटति, यदि, यथा, इष्टम्, लिप्यते, न, एव, दोषैः, सकृत्, अपि, तदभावात्, कर्म, किंचित्, न, कुर्यात्, तत्, अपि, न, च, विबद्धः, संयमी, वा, तपस्वी ॥

पदार्थः ।

तु=पुनः फिर	नैव=नहीं
यः=जो विद्वान्	लिप्यते=लिप्त होता है
सहजम्=स्वाभाविक	तदभावात्=दोषोंका अभाव होजानेसे
अजम्=जन्मसे रहित	
अचिन्त्यम्=मन वाणीके अविषय	किञ्चित्=किञ्चित्
स्वरूपम्=स्वरूपको	कर्म=कर्मको
सकृत्=एकवार भी	न कुर्यात्=न भी करै
अपि=निश्चय करके	तदपि=तब भी
पश्येत्=देखे और	संयमी=संयमी
यदि=यदि वह	वा=अथवा
यथेष्टम्=यथेष्ट चेष्टाको	तपस्वी=तपस्वी
घटति= करता है तो	विबद्धः=बद्ध
दोषैः=दोषोंकरके	न च=नहीं होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो विद्वान् स्वभावसे ही अज और अचिन्त्य आत्माके स्वरूपको एकवार भी देखलेता है वह यथेष्ट चेष्टाको करनेसे भी अर्थात् शास्त्रसंमत अथवा शास्त्रविरुद्ध चेष्टाके करनेसे भी दोषों करके

कदापि लिपायमान नहीं होता है । जब कि, तिसमें कोई भी दोष नहीं रहता है तब फिर वह यदि किसी भी कर्मको न करै चाहे वह संयमी हो, अथवा तपस्वी हो, फिर वह किसी प्रकारसे भी बंधायमान नहीं होता है ॥ ३० ॥

निरामयं निष्प्रतिमं निराकृतिं
निराश्रयं निर्वपुषं निराशिषम् ।
निर्द्वन्द्वनिर्मोहमलुप्तशक्तिकं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ।

निरामयम्, निष्प्रतिमम्, निराकृतिम्, निराश्रयम्, निर्वपुषम्, निराशिषम्, निर्द्वन्द्वनिर्मोहम्, अलुप्तशक्तिकम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

तम्=विद्वान् तिस
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्तहोता है कैसे आत्माको
ईशम्=जगत्के स्वामीको
शाश्वतम्=नित्यको
निरामयम्=रोगसे रहितको
निष्प्रतिमम्=प्रतिमासे रहितको
निराकृतिम्=निराकृतिको
निराश्रयम्=निराश्रयको
निर्वपुषम्=शरीरसे रहितको
निराशिषम्=इच्छासे रहितको
निर्द्वन्द्वनिर्मोहम्=रागद्वेषसे और मोहसे रहितको
अलुप्तशक्तिकम्=विद्यमान शक्तिवालेको

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–ज्ञानवान् उस आत्माको प्राप्त होता है जो कि सम्पूर्ण जगत्का स्वामी है, ईश्वर है । फिर वह कैसा है ? नित्य है, नाशसे रहित है, रोगसे रहित है, प्रतिमासे अर्थात् मूर्तिसे रहित है, आकार-

क्षेमी रहित है और संसारमें जितने स्थूलपदार्थ हैं ये सब सूक्ष्मप्रकृतिके आश्रित हैं, और प्रकृति चेतन आत्माके आश्रित है, आत्मा निराश्रय है अर्थात् किसीके भी वह आश्रित नहीं है। फिर वह कैसा है? शरीरसे रहित है, इच्छासे रहित है, रागद्वेषादिक और सुखदुःखादिक द्वन्द्वोंसे भी रहित है, मोहसे भी रहित है, और अलुप्तशक्तिक है अर्थात् उसकी शक्ति भी लुप्त नहीं हुई है ॥ ३१ ॥

वेदो न दीक्षा न च मुण्डनक्रिया
गुरुर्न शिष्यो न च यन्त्रसम्पदः ।
मुद्रादिकं चापि न यत्र भासते
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

वेदः, न, दीक्षा, न, च, मुण्डनक्रिया, गुरुः, न, शिष्यः, न, च, यन्त्रसंपदः, मुद्रादिकम्, च, अपि, न, यत्र, भासते, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिसमें	च अपि=और निश्चयकरके
वेदः=वेद और	मुद्रादिकम्=मुद्रा आदिक भी
दीक्षा=दीक्षा भी	यत्र=जिसमें
न=नहीं भान होता है और	न भासते=नहीं ही भासते हैं
मुण्डनक्रिया=मुंडन क्रिया भी	तम्=तिसी
न च=नहीं भान होती है और	ईशम्=ईश्वर
गुरुः=गुरु तथा	आत्मानम्=आत्माको
शिष्यः=शिष्य भी	शाश्वतम्=नित्यको
न=नहीं भासता	उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है
यंत्रसंपदः=यंत्रोंकी संपदाभी है नहीं	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें गुरुशिष्यादि व्यवहार नहीं होता है और जितनी कि, मुंडन आदिक क्रिया हैं और यन्त्र मन्त्र आदिक संपदा हैं वे भी सब प्रतीत नहीं होती हैं और जिस आत्मामें यह गुरु शिष्यादिक व्यवहार सब नहीं भासता है उसी आत्मामे ज्ञानवान् सब मर-करके लय होजाते हैं ॥ ३२ ॥

न शांभवं शाक्तिकमानवं न वा
पिण्डं च रूपं च पदादिकं न वा।
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकं च नो
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥३३॥

पदच्छेदः।

न, शांभवम्, शाक्तिकमानवम्, न, वा, पिण्डम्, च, रूपम्, च, पदादिकम्, न, वा, आरम्भनिष्पत्तिघटादिकम्, च, नो, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः।

शाम्भवम्=उस चेतन आत्मामें शांभवपना भी
न=नहीं है और
शाक्तिकमानवम्=शक्तिक तथा मानवपना भी उसमें नहीं हैं
च वा=और अथवा
पिंडम्=पिण्डभाव भी
न=तिसमें नहीं है
च=और
रूपम् न=रूपभी तिसमें नहीं है और
पदादिकम्=पदादिक भी
न वा=उसमें नहीं है
च=और
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकम्=घटादिकोंका आरम्भ और उत्पत्तिभी
नो=उसमें नहीं है विद्वान्
तम्=उसी चेतन
शाश्वतम्=नित्यको
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होता है

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन आत्मामें शांभव और शाक्तिक आदिक किसी प्रकारका व्यवहार नहीं बनता है और घटादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति आदिक भी वास्तवसे नहीं बनते हैं उसी नित्य आत्माको विद्वान् प्राप्त होता है अर्थात् शरीरका त्याग करके उसीमें लीन होजाताहै ॥ ३३ ॥

यस्य स्वरूपात्सचराचरं जगदु-
त्पद्यते तिष्ठति लीयतेऽपि वा।
पयोविकारादिव फेनबुद्बुदा-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः।

यस्य, स्वरूपात्, सचराचरम्, जगत्, उत्पद्यते, तिष्ठति, लीयते, अपि, वा, पयोविकारात्, इव, फेनबुद्बुदाः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः।

यस्य=जिस आत्माके
स्वरूपात्=स्वरूपसे
सचराचरम्=सहित चर अचरके
जगत्=जगत्
उत्पद्यते=उत्पन्न होता है
तिष्ठति=जिसमें स्थिर हो जाता है
लीयते=फिर लय होजाता है
अपि=वा निश्चयकरके
पयोविकारात्=जलके विकारसे
फेनबुद्बुदाः=फेनबुद्बुदोंकी
इव=तरह होते हैं
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्मा
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस चेतन आत्माके स्वरूपसे सम्पूर्ण चर अचर अर्थात् स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न होता है और उसीमें स्थित होकर फिर तिसीमें लयभावको भी प्राप्त होजाता है, जिसतरह जलसे बुद्बुदे उत्पन्न

होकर फिर जलमें ही लय होजाते हैं एवं उसी नित्यरूप आत्माको विद्वान् भी प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

नासानिरोधो न च दृष्टिरासनं
बोधोऽप्यबोधोऽपि न यत्र भासते ।
नाडीप्रचारोऽपि न यत्र किंचित्
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ।

नासानिरोधः, न,च, दृष्टिः, आसनम्, बोधः,अपि,अबोधः, अपि, न, यत्र, भासते, नाडीप्रचारः, अपि, न, यत्र, किंचित्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
नासानिरोधः=नासानिरोध और
दृष्टिः=दृष्टि
न च=नहीं है और
आसनम्=आसन और
बोधः=ज्ञान भी
अपि=निश्चय करके
अबोधः=अबोध भी
न च=नहीं
भासते=भान होता है
यत्र=फिर जिस आत्मामें
नाडीप्रचारः=नाडियोंका प्रचार भी
अपि=निश्चय करके
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न=नहीं भासता है
तम्=तिसी
ईशम्=ईश
आत्मानम्=आत्मा
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस चेतन व्यापक आत्मामें नासिकाके अग्रमें दृष्टिका निरोध करना नहीं है क्योंकि आत्माके नासिकादिक नहीं हैं तब निरोध कैसे बनता है ? किन्तु कदापि भी नहीं, और फिर बोध अर्थात् ज्ञानवाला भी नहीं है क्योंकि ज्ञानस्वरूप है, और अज्ञानवाला भी नहीं है क्योंकि प्रकाशस्वरूप आत्मामें तमरूप अज्ञान है

भी नहीं सकता है फिर तिसमें नाडियोंका प्रचार भी नहीं है क्योंकि नाडियोंका प्रचार शरीरमें होता है वह शरीर नहीं किन्तु शरीरसे भिन्न है उसी नित्य आत्मामें विद्वान् मरकरके लय होजाता है और फिर जन्म मरणको प्राप्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥

नानात्वमेकत्वमुभत्वमन्यता
अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता ।
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

नानात्वम्, एकत्वम्, उभत्वम्, अन्यता, अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता, मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

तम्=विद्वान् तिस
ईशम्=ईश
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होताहै जो कि
शाश्वतम्=नित्य है और
नानात्वम्=नानात्व
एकत्वम्=एकत्व
उभत्वम्=उभयत्वसे
अन्यता=भेदसे और
अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता=अणु, दीर्घ, महत्त्वसे और शून्यतासे रहित है
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम्=मान मेय और समत्वसे भी वह रहित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन आत्मामें नानारूप जगत् भी वास्तवसे नहीं है और एकत्व भी नहीं है क्योंकि नानात्वकी अपेक्षासे एकत्व होता है अर्थात् पहले नानात्व सिद्ध होले तब पीछे एकत्व सिद्ध हो,

और जो एकत्व सिद्ध होले तब नानात्व सिद्ध हो, इस रीतिसे अन्यो-न्याश्रय दोष आता है । जब कि, नानात्व नहीं, तब एकत्व अर्थसे ही सिद्ध नहीं होता है । इसवास्ते नानात्व एकत्व दोनों उसमें नहीं हैं जब कि वह दोनों नहीं तब अर्थसे ही उभयत्व भी तिसमें नहीं है और जो कोई दूसरा वास्तवसे सत्य हो तब तो तिसका भेद भी उसमें हो जिसवास्ते दूसरा नहीं है इसी वास्ते भेदसे भी रहित है । और मान जो कि प्रमाण और मेय जो कि, विषय है और समभाव जो है इनसे भी वह आत्मा रहित है और अणु, ह्रस्व, दीर्घ और महत्त्व इन परिमाणोंसे भी जो कि वह रहित है उसी ईश्वर आत्माको वह ज्ञानवान् प्राप्त होजाते हैं ॥ ३६ ॥

सुसंयमी वा यदि वा न संयमी
सुसंग्रही वा यदि वा न संग्रही ।
निष्कर्मको वा यदि वा सकर्मक-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

सुसंयमी, वा, यदि, वा, न, संयमी, सुसंग्रही, वा, यदि, वा, न, संग्रही, निष्कर्मकः, वा, यदि, वा, सकर्मकः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

सुसंयमी=ज्ञानवान् सुष्ठु संयमवाला [हो
वा=अथवा
न संयमी=संयमवाला न हो
यदि वा=अथवा
सुसंग्रही=सुष्ठु संग्रह करनेवाला हो
यदि वा=अथवा
न संग्रही=संग्रह करनेसे रहित हो
वा=अथवा

निष्कर्मकः=कर्मसे रहित हो
यदि वा=अथवा
सकर्मकः=कर्मके सहित हो
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
शाश्वतम्=नित्य
आत्मानम्=आत्माको ज्ञानी
उपैति=प्राप्त होजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञानवान् इंद्रियोंका संयम करनेवाला हो अथवा इंद्रियोंका संयम करनेवाला न हो किन्तु विषयोंका भोगनेवाला हो अथवा पदार्थोंको संग्रह करनेवाला हो यदि वह पदार्थोंका संग्रह करनेवाला न हो अथवा कर्मोंको न करनेवाला हो या कर्मोंको करनेवाला हो तब भी वह उसी आत्मानित्यमें ही प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

मनो न बुद्धिर्न शरीरमिन्द्रियं
तन्मात्रभूतानि न भूतपंचकम् ।
अहंकृतिश्चापि वियत्स्वरूपकं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, न, बुद्धिः, न, शरीरम्, इंद्रियम्, तन्मात्रभूतानि, न, भूतपञ्चकम्, अहंकृतिः, च, अपि, वियत्स्वरूपकम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

मनः=मन और
बुद्धिः=बुद्धि भी जिसके
न=नहीं है और
शरीरम्=शरीर तथा
इन्द्रियम्=इन्द्रिय भी
न=जिसके नहीं है
तन्मात्रभूतानि=पंचतन्मात्रारूपी भूत भी
भूतपञ्चकम्=पृथ्वी आदि ५ महाभूत
न=जिसमें नहीं हैं

अहंकृतिः=अहंकार भी
अपि=निश्चयकरके जिसके नहीं हैं
च=और
वियत्स्वरूपकम्=आकाशके तुल्य व्यापक रूपवाला भी है
तम् शाश्वतम्=उस नित्य
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको विद्वान्
उपैति=प्राप्त हो जाता है

भावार्थः ।

जिसके मन और बुद्धि नहीं, शरीर और इन्द्रिय नहीं, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द नहीं, अहंकार भी नहीं, जो आकाशके समान व्यापक है,उस नित्य आत्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ३८ ॥

विधौ निरोधे परमात्मतां गते
न योगिनश्चेतसि भेदवर्जिते ।
शौचं न वाऽशौचमलिङ्गभावना
सर्वं विधेयं यदि वा निषिध्यते ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः ।

विधौ, निरोधे, परमात्मतां गते, न, योगिनः, चेतसि, भेदवर्जिते, शौचम्, न, वा, अशौचम्, अलिंगभावना, सर्वम्, विधेयम्, यदि, वा, निषिध्यते ॥

पदार्थः ।

भेदवर्जिते=भेदसे रहित
परमात्मतांगते=परमात्मताको [प्राप्त
योगिनः=योगीके
चेतसि=चित्तमें
विधौ निरोधे=विधि और निरोध
न भवतः=नहीं होते हैं
शौचम्=पवित्रता
वा=अथवा
न अशौचम्=अपवित्रता भी नहीं होती है और
अलिङ्गभावना=चिह्नकी भावना भी नहीं होती है
यदि वा=अथवा
सर्वम्=सम्पूर्ण
विधेयम्=विधेयका भी
निषिध्यते=निषेध हो जाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिन ज्ञानवान् योगियोंका चित्त भेदसे रहित परमात्माके स्वरूपमें ही लीन होगयाहै उनके वास्ते विधि और निषेध

नहीं होता है तथा पवित्रता और अपवित्रता भी उनके लिये नहीं है और उनका चिह्न भी कोई नहीं होता है अथवा कर्मियोंके लिये जिन विधियोंका विधान किया है उन सब विधियोंका योगीके लिये निषेध हो जाता है ॥ ३९ ॥

मनो वचो यत्र न शक्तमीरितुं
नूनं कथं तत्र गुरूपदेशता ।
इमां कथामुक्तवतो गुरोस्त-
द्युक्तस्य तत्त्वं हि समं प्रकाशते ॥ ४० ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्म-
संवित्त्युपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वचः, यत्र, न, शक्तम्, ईरितुम्, नूनम्, कथम्, तत्र, गुरूपदेशता, इमाम्, कथाम्, उक्तवतः, गुरोः, तद्युक्तस्य, तत्त्वम्, हि, समम्, प्रकाशते ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
मनः वचः=मन और वाणी
ईरितुम्=कथन करनेको
शक्तम्=समर्थ
न=नहीं है
नूनम्=निश्चयकरके
तत्र=तिस आत्मामें
गुरूपदेशता=गुरु और उपदेश व्यवहार
कथम्=कैसे बन सकता है
इमाम्=इस
कथाम्=कथाको
उक्तवतः=कथन करनेवाले और
तद्युक्तस्य=तिस आत्मामें जुडे हुए
गुरोः=गुरुको
हि=निश्चयकरके
समम्=सम एकरस
तत्त्वम्=आत्मतत्त्व
प्रकाशते=प्रकाशमान होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन ब्रह्मको मन वाणी भी कथन करनेको समर्थ नहीं होती है अतएव वह चेतन आत्मा मन वाणीका विषय ही नहीं है तब फिर गुरुके उपदेशकी गम्य कहां है ? किन्तु कहीं भी नहीं है । इस चेतन ब्रह्मकी कथाको निरूपण करनेवाला जो कि तिसी चेतन आत्मामें जुडा हुआ गुरु है तिस गुरुको वह आत्मतत्त्व सम ही प्रकाशमान होता है ॥ ४० ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां परमहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अवधूत उवाच ।

गुणविगुणविभागो वर्तते नैव किञ्चि-
द्रतिविरतिविहीनं निर्मलं निष्प्रपञ्चम् ।
गुणविगुणविहीनं व्यापकं विश्वरूपं
कथमहमिह वन्दे व्योमरूपं शिवं वै ॥१॥

पदच्छेदः ।

गुणविगुणविभागः, वर्त्तते, न, एव, किञ्चित्, रतिविरतिविहीनम्, निर्मलम्, निष्प्रपञ्चम्, गुणविगुणविहीनम्, व्यापकम्, विश्वरूपम्; कथम्, अहम्, इह, वन्दे, व्योमरूपम्, शिवम्, वै॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
एव=निश्चयकरके
किञ्चित्=किञ्चित् भी
गुणविगुणविभागः=गुण और निर्गुण विभाग
वर्तते=वर्तता
न=नहीं है एवंभूत
शिवम्=कल्याणरूपके
व्योमरूपम्=आकाशवत् व्यापकके
इह=इस ग्रन्थमें
अहम्=मैं
कथम्=किसी प्रकार

वन्दे=वन्दनाको करूं ? कैसा वह है

रतिविरति- विहीनम् } =रति और विरतिसे रहित है

निर्मलम्=निर्मलको

निष्प्रपंचम्=प्रपंचसे रहितको और

गुणविगुण- विहीनम् } =सगुण निर्गुणतासे भी रहितको

व्यापकम्=सर्वत्र व्यापकको

विश्वरूपम्=विश्वरूपको कैसे मैं वन्दना करूं ?

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस चेतन आत्मामें सगुण और निर्गुण विभाग नहीं है और रति जो प्रेम विरति जो कि उपरामता यह भी नहीं है क्योंकि रति विरति भी भेदको ले करके होते हैं। इसीसे वह निर्मल है मायामलसे भी रहित है और प्रपंचसे भी वह रहित है क्योंकि प्रपंच सब मायाका कार्य है जब कि, उसमें माया ही वास्तवसे नहीं है तब प्रपंच कैसे होसकता है ? और सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंके विभागसे भी वह रहित है, व्यापक है, विश्वरूप भी है, कल्याणस्वरूप भी है, और हमारा अपना आत्मा भी है, उसको हम कैसे वन्दना करें ? वंदना भी भेदको लेकरके होती है, एकमें वन्दना भी नहीं बनती है ॥ १ ॥

श्वेतादिवर्णरहितो नियतं शिवश्च
कार्यं हि कारणमिदं हि परं शिवश्च ।
एवं विकल्परहितोऽहमलं शिवश्च
स्वात्मानमात्मनि सुमित्र कथं नमामि ॥२॥

पदच्छेदः।

श्वेतादिवर्णरहितः, नियतम्, शिवः, च, कार्यम्, हि, कारणम्, इदम्, हि, परम्, शिवः, च, एवम्, विकल्परहितः, अहम्, अलम्, शिवः, च, स्वात्मानम्, आत्मनि, सुमित्र, कथम्, नमामि ॥

पदार्थः ।

सुमित्र=हे सुमित्र ।
अहम्=मैं
स्वात्मानम्=अपने आत्माको
आत्मनि=अपने आत्मामें
कथम्=किस प्रकार
नमामि=नमस्कार करूँ
श्वेतादिवर्णरहितः=श्वेतपीतादि वर्णोंसे भी रहित हूँ
नियतम्=नित्य
शिवः=कल्याणरूप हूँ
च हि=और निश्चयकरके
इदम्=यह
कार्यम्=कार्य है यह
कारणम्=कारण है
परम्=यह श्रेष्ठ है
च और
शिवः=यह कल्याण है
एवम्=इस प्रकारके
विकल्परहितः=विकल्पोंसे भी मैं रहित हूँ फिर
अलम्=परिपूर्ण
च शिवः=और कल्याणरूप हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सुमित्र ! मैं शिवरूप हूँ अर्थात् कल्याणस्वरूप हूँ और श्वेतपीतादिवर्णोंसे रहित हूँ, कार्यकारणरूपी जगत्से भी मैं रहित हूँ और फिर मैं शुद्धस्वरूप हूँ तब फिर अपने आत्माको अपने आत्मामें मैं कैसे नमस्कार करूँ ? क्योंकि नमस्कारका करना भेदको लेकरके ही होता है अभेदको लेकरके नहीं होता है ॥ २ ॥

निर्मूलमूलरहितो हि सदोदितोऽहं
निर्धूमधूमरहितो हि सदोदितोऽहम् ।
निर्दीपदीपरहितो हि सदोदितोऽहं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मूलमूलरहितः, हि, सदा, उदितः, अहम्, निर्धूमधूमरहितः, हि, सदा, उदितः, अहम्, निर्दीपदीपरहितः,

हि, सदा, उदितः, अहम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहं हि=मैं निश्चय करके	निर्दीपदीपरहितः=निर्दीप हूँ और दीपकसे रहित हूँ
निर्मूलमूलरहितः=निर्मूल हूँ और मूल कारणसे रहित हूँ	हि=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल ही मैं	सदा=सर्वकाल
उदितः=उदित हूँ फिर मैं	अहम्=मैं
निर्धूमधूमरहितः=निर्धूम और धूमसे रहित	उदितः=उदित हूँ फिर कैसा हूँ
हि=निश्चयकरके	ज्ञानामृतम्=ज्ञानामृत और
सदा=सर्वकाल	समरसम्=समरस
अहम् उदितः=मैं उदित हूँ	गगनोपमः अहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस हेतुसे मैं निर्मूल हूँ अर्थात् मेरा मूलकारण कोई भी नहीं है और मैं भी किसीका मूलकारण नहीं हूँ अर्थात् अज्ञान मेरेमें नहीं रहता है और जिस हेतुसे निर्धूम हूँ इसीवास्ते मैं अज्ञानसे भी रहित हूँ, फिर जिस हेतुसे निर्दीप हूँ अर्थात् दीपक मेरेको प्रकाश नहीं करसकता है मैं दीपसे रहित स्वयंप्रकाश हूँ और सदैव उदित हूँ ज्ञानस्वरूप अमृतरूप समरस अर्थात् एकरस सर्वत्र ज्योंका त्यों आकाशकी उपमावाला मैं हूँ । मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ३ ॥

निष्कामकाममिह नाम कथं वदामि
निःसंगसंगमिह नाम कथं वदामि ।
निःसारसाररहितं च कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कामकामम्, इह, नाम, कथम्, वदामि, निःसंगसंगम्, इह, नाम, कथम्, वदामि, निःसारसाररहितम्, च, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्काम-कामम् =कामनासे रहितको कामनावाला
नाम=प्रसिद्ध
इह=इस लोकमें
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
निःसंग-संगम् =संगसे रहितको संगवाला
इह=इस लोकमें
नाम=प्रसिद्ध
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
च=और
निःसारसार-रहितम् =निःसारको सारसे रहित
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप और
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—निष्काम आत्माको कामनावाला मैं कैसे कहूँ । फिर जो कि निःसंग है अर्थात् असंग है उसको संगवाला संबंधवाला मैं कैसे कहूं ? फिर जो कि निःसार है अर्थात् सारसे रहित है उसको मैं सारवाला कैसे कहूं ? किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृत और समरस अर्थात् एकरस आकाशकी उपमावाला हूं ॥ ४ ॥

अद्वैतरूपमखिलं हि कथं वदामि
द्वैतस्वरूपमखिलं हि कथं वदामि ।
नित्यं त्वनित्यमखिलं हि कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

अद्वैतरूपम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि, द्वैतस्वरूपम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि, नित्यम्, तु, अनित्यम्, अखिलम्, हि कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

अद्वैतरूपम्=अद्वैतरूप	तु=पुनः
अखिलम्=संपूर्ण प्रपंचको	नित्यम्=नित्य और
हि=निश्चय करके	अनित्यम्=अनित्य
अहम्=मैं	अखिलम्=संपूर्णको
कथम्=किस प्रकार	कथम्=कैसे
वदामि=कथन करूं	वदामि=कहूँ
अखिलम्=संपूर्ण जगत्को मैं	अहम्=मैं
द्वैतरूपम्=द्वैतरूप	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप हूं
हि=निश्चय करके	
अहम्=मैं	समरसम्=एकरस हूं
कथम्=किस प्रकार	गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
वदामि=कथन करूं	हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सम्पूर्ण प्रपंचोंको अद्वैतरूप करके कैसे कहूँ क्यों कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे वह द्वैतरूप करके दिखाता है और द्वैतरूपकरके भी मैं नहीं कहसकता हूँ क्यों कि सुषुप्ति और मोक्ष अवस्थामें इसका अभाव हो जाता है अर्थात् तिस कालमें द्वैत नहीं रहता है। फिर मैं संपूर्ण जगत्को नित्य और अनित्य कैसे कहूँ ? क्यों कि यदि नित्य हो तब तो इसका नाश कभी भी न होवे और नाश तो जरूर होता है। इस वास्ते नित्य नहीं है और अनित्य भी नहीं है, यदि अनित्य हो तब दृष्टिका गोचर न हो वंध्या पुत्रकी तरह, और दृष्टिका गोचर भी होता है । इस-

वास्ते नित्य और अनित्य भी इसको किसी प्रकारसे भी मैं नहीं कहसकता हूं किन्तु यह संपूर्ण प्रपंच अनिर्वचनीय है और मैं ज्ञानरूपी अमृत एकरस आकाशकी उपमावाला अर्थात् आकाशकी तरह व्यापक हूं ॥ ५ ॥

स्थूलं हि नो नहि कृशं न गतागतं हि
आद्यन्तमध्यरहितं न परापरं हि ।
सत्यं वदामि खलु वै परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

स्थूलम्, हि, नः, न, हि, कृशम्, न, गतागतम्, हि, आद्यन्तमध्यरहितम्, न, परापरम्, हि, सत्यम्, वदामि, खलु, वै, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

नः=हमारा आत्मा
हि=निश्चय करके
स्थूलम्=स्थूल
न हि=नहीं है और
कृशम्=कृश तथा
न गतागतम्=गमनागमनवाला भी नहीं है
आद्यंतमध्यरहितम्=आदि अन्त और मध्यसे भी रहित है
हि=निश्चयकरके
न परापरम्=पर अपररूप भी नहीं
खलु=निश्चयकरके
सत्यम्=सत्यको ही
वदामि=मैं कहता हूं
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्वस्वरूप मैं हूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हूं और
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हमारा जो आत्मा है सो स्थूल नहीं है और कृश भी नहीं अर्थात् अणु भी नहीं है और गमनागमनवाला भी नहीं है और

आदि मध्य तथा अन्तवाला भी नहीं है अर्थात् उत्पत्ति स्थिति और लय-वाला भी नहीं है किन्तु उत्पत्ति आदिकोंसे रहित है और पर अपरवाला भी नहीं है क्योंकि व्यापक है यह वार्ता मैं सत्य कहता हूं क्योंकि मैं परमार्थतत्त्वरूप हूं और ज्ञानरूप अमृत हूं समरस भी हूं गगनकी उपमा-वाला भी मैं हूं ॥ ६ ॥

संविद्धि सर्वकरणानि नभोनिभानि
संविद्धि सर्वविषयांश्च नभोनिभांश्च ।
संविद्धि चैकममलं न हि बन्धमुक्तं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

संविद्धि, सर्वकरणानि, नभोनिभानि, संविद्धि, सर्वविषयान्, च, नभोनिभान्, च, संविद्धि, च, एकम्, अमलम्, न, हि, बन्धमुक्तम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सर्वकरणानि } संपूर्ण करणोंको
नभोनिभानि=आकाशके तुल्य शून्य
संविद्धि=सम्यक् तू जान
च=और
सर्वविषयान्=संपूर्ण विषयोंको
नभोनिभान्=आकाशके तुल्य शून्य ही
संविद्धि=सम्यक् तू जान
च=और
एकम्=एक आत्माको
अमलम्=शुद्ध मलसे रहित
संविद्धि=सम्यक् तू जान कैसे आत्माको
बन्धमुक्तम्=बंध और मोक्ष जिसमें
न हि=नहीं है सो आत्मा
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशवत्
अहम्=मैं ही हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जितने कि इंद्रिय हैं ये सब वास्तवसे आकाशके तुल्य शून्य हैं ऐसे तू जान और संपूर्ण विषय भी आकाशकी तरह शून्य हैं, ऐसे ही तू जान और एक आत्माको ही अमल अर्थात् मायामलसे रहित तू जान कैसा वह आत्मा है ? बन्ध और मुक्तिसे रहित है सोई मैं हूं, फिर मैं कैसा हूं ज्ञानस्वरूप अमृतरूप हूं और एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ ७ ॥

दुर्बोधबोधगहनो न भवामि तात
दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनो न भवामि तात ।
आसन्नरूपगहनो न भवामि तात
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

दुर्बोधबोधगहनः, न, भवामि, तात, दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनः, न, भवामि, तात, आसन्नरूपगहनः, न, भवामि, तात, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

दुर्बोधबोधगहनः = दुर्बोध आत्माका जो वृत्तिज्ञान है सो बडा गम्भीर है
तात = हे तात सो
न भवामि = मैं नहीं हूं
तात = हे तात
दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनः = दुर्लक्ष्यका लक्ष्य भी गंभीर है सो
न भवामि = मैं नहीं हूं
तात = हे तात
आसन्नरूपगहनः = अतिसमीप भी तिसका बडा गंभीर है
न भवामि = मैं आसन्न भी नहीं हूं
ज्ञानामृतम् = ज्ञानरूपी अमृत मैं हूं
समरसम् = एकरस हूं
गगनोपमोऽहम् = आकाशकी उपमा-वाला हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे तात ! हे प्रिय ! वह आत्मा बडा ही दुर्बोध है अर्थात् बडे कष्टसे उसका बोध होता है सो बोध भी वृत्तिज्ञान है सो मैं नहीं हूँ क्योंकि वह मिथ्या है फिर वह आत्मा दुर्लक्ष्य है अर्थात् किसी भी इन्द्रियकरके वह लक्ष्य नहीं होता है क्योंकि वडा गहन है सो उस दुर्लक्ष्यका जो कि लक्ष्य अर्थात् जानना है वह भी मैं नहीं हूँ फिर तिसका रूप मनवुद्धिके अतिसमीप भी है तबभी तिसका जानना कठिन है क्योंकि वह मन आदिकोंका विषय नहीं है इसवास्ते मैं तिसके अतिसमीप भी नहीं हूँ किन्तु मैं वही ज्ञानरूपी अमृत हूँ और एक रस गगनकी उपमावाला हूँ मेरेसे वह भिन्न नहीं है ॥ ८ ॥

निष्कर्मकर्मदहनो ज्वलनो भवामि
निर्दुःखदुःखदहनो ज्वलनो भवामि ।
निर्देहदेहदहनो ज्वलनो भवामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

निष्कर्मकर्मदहनः, ज्वलनः, भवामि, निर्दुःखदुःखदहनः, ज्वलनः, भवामि, निर्देहदेहदहनः, ज्वलनः, भवामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

अहम्=मैं
निष्कर्मकर्मदहनः=कर्मोंसे रहित हूँ तब भी कर्मोंका दाहक
ज्वलनः=अग्नि
भवामि=मैं हू
निर्दुःखदुःखदहनः=मैं दुःखसे रहित हूँ तबभी दुःखको दाहक
ज्वलनः=अग्नि
भवामि=मैं हू
निर्देहदेहदहनः=देहसे रहित हूँ तब भी देहसे रहित करनेमें
ज्वलनः=अग्निरूप
भवामि=मैं हूँ फिर मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत हूँ
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--मैं कर्मोंसे रहित हूँ और कर्मोंके जलानेमें जलती हुई अग्नि मैं हूँ, फिर मैं सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित भी हूँ, तब भी दुःखोंके जलानेमें मैं अग्निरूप हूँ, फिर मैं शरीरसे रहित भी हूँ, तब भी जन्ममरणके हेतु जो लिंगशरीर और कारण--शरीर हैं उनके जलानेमें मैं जलती हुई अग्निरूप हूँ, फिर मैं ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस और आका-शवत् व्यापक भी हूँ ॥ ९ ॥

निष्पापपापदहनो हि हुताशनोऽहं
निर्धर्मधर्मदहनो हि हुताशनोऽहम् ।
निर्बन्धबन्धदहनो हि हुताशनोऽहं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

निष्पापपापदहनः, हि, हुताशनः, अहम्, निर्धर्मधर्मदहनः, हि, हुताशनः, अहम्, निर्बन्धबन्धदहनः, हि, हुताशनः, अहम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्पापपापदहनः = पापसे रहित पापके दाह करनेमें
अहम् = मैं
हि = निश्चयकरके
हुताशनः = अग्निरूप हूँ
निर्धर्मधर्मदहनः = धर्मसे रहित हो करके भी धर्मके दाह करनेमें
हि = निश्चयकरके
हुताशनः = अग्निरूप
अहम् = मैं हूँ
निर्बन्धबन्धदहनः = बन्धसे रहित हूँ और बन्धके दाह करनेमें
हि = निश्चयकरके
हुताशनः = अग्निरूप
अहम् = मैं हूँ
ज्ञानामृतम् = ज्ञानस्वरूपअमृतरूप हूँ
समरसम् = एकरस [हूँ
गगनोपमोऽहं = गगनकी उपमावाला

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं पापोंसे रहित हूँ और पापोंके दाह करनेमें अग्निरूप भी हूँ अर्थात् जैसे अग्नि लकडियोंको जलाकरके भस्म कर देती है तैसे मैं भी पापोंको जलाकरके भस्म करदेता हूँ, फिर मैं धर्मसे भी रहित हूँ और धर्मअधर्मके जलानेमें अग्निरूप भी हूँ, फिर मैं बन्धसे रहित भी हूँ तब भी बन्धके जलानेमें मैं अग्निरूप हूँ और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक भी हूँ ॥ १० ॥

निर्भावभावरहितो न भवामि वत्स
निर्योगयोगरहितो न भवामि वत्स।
निश्चित्तचित्तरहितो न भवामि वत्स
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः।

निर्भावभावरहितः, न, भवामि, वत्स, निर्योगयोगरहितः, न, भवामि, वत्स, निश्चित्तचित्तरहितः, न, भवामि, वत्स, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

वत्स=हे वत्स
निर्भावभावरहितः=निर्भाव होकरके भी भावसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ
वत्स=हे वत्स
निर्योगयोगरहितः=निर्योग होकरके भी योगसे रहित
न भवामि=नहीं हूँ
वत्स=हे वत्स
निश्चित्तचित्तरहितः=चित्तसे रहित होकरके भी चित्तसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत मैं हूँ
समरसम्=समरस भी मैं हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं निर्भाव हूँ अर्थात् प्रेम मेरा किसी भी पदार्थमें नहीं है परन्तु प्रेमसे रहित भी मैं नहीं हूँ किन्तु प्रेमरूप ही हूँ। फिर मैं

योगसे रहित हूँ क्योंकि योग नाम है चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका सो मैं निरोधरूप नहीं हूँ परन्तु निरोधरूपी योगसे रहित भी मैं नहीं हूँ क्योंकि मेरेमेंही सम्पूर्ण जगत्का लयरूपी निरोध होता है । हे वत्स ! मैं निश्चित्त हूँ अर्थात् चित्तसे रहित हूँ अर्थात् वास्तवसे मेरा चित्तसाथ कोई भी संबंध नहीं है तब भी म चित्तसे रहित नहीं हूँ क्योंकि संपूर्ण चित्त मेरेमेंही कल्पित है हे वत्स ! मैं ज्ञानरूप अमृतरूप समरस आकाशकी उपमावाला हूँ ॥ ११ ॥

निर्मोहमोहपदवीति न मे विकल्पो
निःशोकशोकपदवीति न मे विकल्पः ।
निर्लोभलोभपदवीति न मे विकल्पो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मोहमोहपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, निःशोकशोकपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, निर्लोभलोभपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्मोहमोह पदवी } =मोहसे रहित अथवा मोहवाला
इति=इस प्रकारका
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है
निःशोक-शोकपदवी } =शोकसे रहित या शोकवाला
इति=इस प्रकारका भी
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है
निर्लोभ-लोभपदवी } =लोभसे रहित या लोभवाला
इति=इस प्रकारका भी
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत मैं हूँ
समरसम्=एकरस भी हूँ
गगनोप-मोऽहम् } =आकाशका व्यापक भी हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं मोहसे रहित हूँ, या मोहवाला हूँ, इस प्रकारका विकल्प भी मेरेमें नहीं युक्त है। फिर मैं शोकवाला हूँ, या शोकसे रहित हूँ, इस प्रकारका विकल्प भी मेरेमें नहीं युक्त है फिर मैं लोभवाला हूँ या लोभसे रहित हूँ, इस प्रकारका संकल्प भी मेरेमें नहीं योग्य है, किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृतस्वरूप हूँ समरस हूँ और आकाशवत् निर्लेप भी हूँ॥ १२॥

संसारसन्ततिलता न च मे कदाचित्
सन्तोषसन्ततिसुखं न च मे कदाचित्।
अज्ञानबन्धनमिदं न च मे कदाचित्
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ १३॥

पदच्छेदः।

संसारसन्ततिलता, न, च, मे, कदाचित्, सन्तोषसन्ततिसुखम्, न, च, मे, कदाचित्, अज्ञानबन्धनम्, इदम्, न, च, मे, कदाचित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः अहम्॥

पदार्थः।

संसारसंततिलता=संसाररूपी प्रवाहकी लता
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न च=मेरेको नहीं है
सन्तोषसन्ततिसुखम्=सन्तोषरूपी सन्ततिका सुख भी
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न च=मेरेको नहीं है
इदम्=यह
अज्ञानबन्धनम्=अज्ञानरूपी वन्धन भी
कदाचित्=कदापि
मे न च=मेरेको नहीं है किंतु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत और
समरसम्=एकरस और
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् व्यापक मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जैसे कि, जन्ममरणरूपी संसारकी लता कामियोंके लिये फैलती है वह लता कदाचित् भी मेरेलिये नहीं फैलती है और जो कि सन्तोषकी सन्ततिसे जन्यसुख अज्ञानियोंको भान होता है सो मेरेको नहीं भान होता है क्योंकि मैं सुखरूप हूँ । फिर जैसे कर्मी जीव या दूसरे जीव अज्ञानरूपी बन्धनमें बन्धायमान हैं तैसे मैं कदापि अज्ञानरूपी बन्धनकरके बन्धायमान नहीं हूं किन्तु ज्ञानरूपी अमृतरूप और एकरस आकाशवत् असंग हूँ ॥ १३ ॥

संसारसन्ततिरजो न च मे विकारः
सन्तापसन्ततितमो न च मे विकारः ।
सत्त्वं स्वधर्मजनकं न च मे विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

संसारसन्ततिरजः, न, च, मे, विकारः, सन्तापसन्ततितमः, न, च, मे, विकारः, सत्त्वम्, स्वधर्मजनकम्, न, च, मे, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

संसारसंततिरजः=संसाररूपी प्रवाहका जो रज है सो
मे=मेरा
विकारः=विकार
न च=नहीं है
सन्तापसन्ततितमः=सन्तापरूपी प्रवाह जो कि अज्ञान है सो
मे=मेरा
विकारः=विकार
न च=नहीं है
स्वधर्मजनकम्=अपने धर्मका जनक जो
सत्त्वम्=सत्त्वगुण है वह भी
मे=मेरा
विकारः=विकार
न च=नहीं है क्योंकि
अहम्=मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हूँ
समरसम्=एकरस हूं
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह संसाररूपी प्रवाह अनादिकालसे चला आता है और बार २ जन्म लेना और मरना यही इसकी रज है अर्थात् धूली है सो भी मेरा विकार अर्थात् कार्य नहीं है फिर इस संसारमें जो कि जन्मते हैं उनको जन्मभर सन्तापका प्रवाह चलाही जाता है, वह भी मेरा विकार नहीं है और सत्त्वगुण ही अपने धर्मका जनक है, सो सत्त्वगुण भी मेरा विकार नहीं है क्यों कि मैं ज्ञानरूपी अमृत और एकरस गगनकी उपमावाला हूं ॥ १४ ॥

सन्तापदुःखजनको न विधिः कदाचित्
सन्तापयोगजनितं न मनः कदाचित्।
यस्मादहङ्कृतिरियं न च मे कदाचि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः।

संसारदुःखजनकः, न, विधिः, कदाचित्, सन्तापयोगजनितम्, न, मनः, कदाचित्, यस्मात्, अहङ्कृतिः, इयम्, न, च, मे, कदाचित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्॥

पदार्थः।

सन्तापदुःखजनकः = सन्तापरूपी दुःखका जनक	यस्मात्=जिसी कारणसे
विधिः=जो विधि है सो	इयम्=यह
कदाचित्=कदाचित् भी	अहङ्कृतिः=अहंकार भी
मे न=मेरेलिये नहीं है	कदाचित्=कदाचित्
सन्तापयोगजनितम् = सन्तापके संबन्धसे जनित जो	मे न च=मेरा नहीं है
मनः=संकल्परूप मन है सो भी	तस्मात्=तिसी कारणसे
कदाचित्=कदाचित्	अहम्=मैं
मे न=मेरा नहीं है	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
	समरसम्=एकरस
	गगनोपमः=गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--सन्तापरूपी दुःखका जनक ही विधि है क्यों कि स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिके वास्ते सब विधियां बनी हैं उनके करनेसे पुरुष स्वर्गको जाता है वहांपर अपनेसे अधिक योग्यतावालेको देखकर सन्तापरूपी दुःख उत्पन्न होता है सो सब विधियां अज्ञानियोंके लिये बनी हैं मेरे लिये नहीं फिर सन्तापके सम्बन्धसे संकल्परूप मन भी उत्पन्न होता है सो मन भी मेरा कदाचित् नहीं है फिर अहंकारसे ही मन आदिकोंकी उत्पत्ति भी होती है वह अहंकार जिस कारणसे मेरा नहीं है इसी कारणसे मैं ज्ञानरूपी अमृत एकरस गगनकी उपमावाला हूं ॥ १५ ॥

निष्कम्पकम्पनिधनं न विकल्पकल्पं
स्वप्नप्रबोधनिधनं न हिताहितं हि ।
निःसारसारनिधनं न चराचरं हि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कम्पकम्पनिधनम्, न, विकल्पकल्पम्, स्वप्नप्रबोधनिधनम्, न, हिताहितम्, हि, निःसारसारनिधनम्, न, चराचरम्, हि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कम्पकम्पनिधनम्=कम्पसे रहित और कंप दोनोंका नाशरूप भी
अहम्=मैं नहीं हूँ
विकल्पकल्पम्=विकल्प और कल्परूप भी
न=मैं नहीं हूं
स्वप्नप्रबोधनिधनम्=स्वप्न और जाग्रत्का नाशरूप भी
न=मैं नहीं हूं
हिताहितम्=हित और अहितरूपभी
हि न=निश्चयकरके मैं नहीं हूँ
निःसारसारनिधनम्=सारसे रहित और सारका भी नाशरूप
न=मैं नहीं हूं
चराचरम्=चरअचररूपभी मैं नहीं हूं
हि=निश्चय करके
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कम्परहित या सकम्प नहीं हूं । न विकल्प हूं न कल्पसहित हूँ । सोना और जागना इन दोनोंसे रहित हूँ । न हित हूं न अहित हूँ न निस्सार हूँ न सारयुक्त हूँ । न चर हूँ । न अचर हूँ परंतु ज्ञानस्वरूप, नित्य, एकरस और व्यापक हूँ ॥ १६ ॥

नो वेद्यवेदकमिदं न च हेतुतर्क्यं
वाचामगोचरमिदं न मनो न बुद्धिः ।
एवं कथं हि भवतः कथयामि तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

नो, वेद्यवेदकम्, इदम्, न, च, हेतुतर्क्यम्, वाचाम्, अगोचरम्, इदम्, न, मनः, न, बुद्धिः, एवम्, कथम्, हि, भवतः, कथयामि, तत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह आत्मा ब्रह्म
नो=नहीं
वेद्यवेदकम्=जानने योग्य और जाननेवाला भी है
हेतुतर्क्यम्=कारण और तर्कसे
न च=नहीं जानाजाता है
इदम्=यह चेतन ब्रह्म
वाचाम्=वाणीका
अगोचरम्=विषय नहीं है
मनः=मन भी इसको
न=नहीं जान सकता है
बुद्धिः=बुद्धिभी इसको
न=नहीं जान सकती है
एवम्=इस प्रकारके
तत्त्वम्=चेतन ब्रह्मको
भवतः=तुम्हारेको
हि=निश्चयकरके
कथम्=किस प्रकार
कथयामि=मैं कथन करूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं ही हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह ब्रह्म चेतन किसीसे नहीं जानाजाताहै हेतु और तर्कोंकरके भी वह नहीं जाना जाता है और न किसी इंद्रियकरके ही वह जाना जाता है क्योंकि वाणीका वह विषय नहीं है अर्थात् वाणी तिसको इदन्ताकरके कथन नहीं करसकती है और मन तथा बुद्धिका भी विषय नहीं है एवंरूप उस ब्रह्मको तुम्हारे प्रति मैं किस प्रकार कथन करूं फिर वह जो ब्रह्म है सो ज्ञानरूपी अमृत समरस आकाशवत् है सो मैं ही हूँ मेरेसे भिन्न दूसरा नहीं है॥ १७॥

निर्भिन्नभिन्नरहितं परमार्थतत्त्व-
मन्तर्बहिर्न हि कथं परमार्थतत्त्वम् ।
प्राक्संभवं न च रतं न हि वस्तु किञ्चि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १८॥

पदच्छेदः ।

निर्भिन्नभिन्नरहितम्, परमार्थतत्त्वम्, अन्तर्बहिः न, हि, कथम्, परमार्थतत्त्वम्, प्राक्सम्भवम्, न, च, रतम्, न, हि, वस्तु, किञ्चित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्भिन्नभिन्नरहितम् =यह आत्मभेदन क्रियाका न कर्म है न कर्ता है
परमार्थतत्त्वम् =किन्तु परमार्थ स्वरूप हैं
कथम्=किसी प्रकारसेभी
अन्तर्बहिः=भीतरबाहर किसीकेभी
न हि=वह नहीं है क्योंकि वही
परमार्थतत्त्वम् =परमार्थ सार है भेदसे रहित है
प्राक्संभवम् =पूर्व होना फिर न होना यह बात भी
न च=उसमें नहीं है
रतम्=किसीमें वह लिप्त भी
नहि=नहीं है
वस्तु किञ्चित् =आत्मासे अतिरिक्त और कोई भी वस्तु
न हि=नहीं है फिर वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला है
अहम्=सोई आत्मा मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—भेदाभेदरहित, परमार्थतत्त्व, भीतर बाहर आदि व्यवहारसे शून्य है, पहले किसी समयमें भी उसका होना सम्भव नहीं, किसी पदार्थमें लिप्त भी वह नहीं है, कोई पदार्थ भी वह नहीं है, पर वह ज्ञानस्वरूप नाशरहित, सदा आनन्दमय और आकाशके समान व्यापक, निर्लिप्त है ॥ १८ ॥

रागादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वं
दैवादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वम् ।
संसारशोकरहितं त्वहमेव तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१९॥

पदच्छेदः ।

रागादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, दैवादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, संसारशोकरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

रागादिदोषरहितम्=रागादिदोषोंसे रहित
तु अहम्=पुनः मैं ही
एव=निश्चयकरके
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
तु अहम्=पुनः मैं ही
निश्चयकरके
दैवादिदोषरहितम्=दैवादिदोषोंसे रहितहूँ
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
तु अहम्=पुनः मैं ही
एव=निश्चय करके
संसारशोकरहितम्=संसारशोकसे रहित
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ फिर
अहम्=मैं ही
ज्ञानामृतम्=ज्ञान अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-रागद्वेषादिक दोषोंसे रहित आत्मतत्त्व मैं हूँ और जितने कि, दैव आदि दोष हैं अर्थात् आधिदैविक जो कि देवतोंसे दुःख होते हैं और जो कि अग्नि आदिक भूतोंसे दुःख होते हैं और जो कि ग्रहोंसे दुःख होते हैं उन सम्पूर्ण दुःखोंसे मैं रहित हूँ और संसाररूपी शोकसे भी मैं रहित हूँ ज्ञानरूपी अमृत और एकरस गगनवत् मैं हूँ ॥ १९ ॥

स्थानत्रयं यदि च नेति कथं तुरीयं
कालत्रयं यदि च नेति कथं दिशश्च ।
शान्तं पदं हि परमं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२०॥

पदच्छेदः ।

स्थानत्रयम्, यदि, च, न, इति, कथम्, तुरीयम्, कालत्रयम्, यदि, च, न, इति, कथम्, दिशः, च, शांतम्, पदम्, हि, परमम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

यदि च=यदि च
स्थानत्रयम्=जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप तीन स्थान
इति=इस प्रकारके
न=नहीं है तब
तुरीयम्=तुरीय स्थान
कथम्=कैसे हो सकता है
यदि च=यदि च
कालत्रयम्=भूत भविष्यत् वर्तमान यह तीन काल भी
इति न=इस ब्रह्ममें नहीं है
कथम्=कैसे फिर
दिशः=दिशा है
च=और वह ब्रह्म
शान्तपदम्=शान्तरूप
हि=निश्चयकरके
परमम्=परम है
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे तत्त्ववस्तु है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत मैं हूँ
समरसम्=समरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन स्थान हैं सो ये तीनों स्थान भी चेतन आत्मामें वास्तवसे नहीं हैं तब तुरीय कैसे होसकता है? किन्तु कदापि भी नहीं हो सकता है क्योंकि वह ब्रह्म शान्तरूप है परमार्थस्वरूप है। इसीवास्ते उसमें भूत, भविष्यत्, वर्तमान ये तीनों काल भी नहीं हैं और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् असंग है सो मैं हूँ॥२०॥

दीर्घो लघुः पुनरितीह न मे विभागो
विस्तारसंकटमितीह न मे विभागः।
कोणं हि वर्तुलमितीह न मे विभागो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ २१॥

पदच्छेदः।

दीर्घः, लघुः, पुनः, इति, इह, न, मे, विभागः, विस्तार-संकटम्, इति, इह, न, मे, विभागः, कोणम्, हि, वर्तुलम्, इति, इह, न, मे, विभागः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्॥

पदार्थः।

पुनः=फिर यह
दीर्घः=दीर्घ है और
लघुः=यह लघु है
इति=इस प्रकारका
विभागः=विभाग भी
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता
विस्तारसंकटम्=विस्तार और संकोच
इति=इस प्रकारका
विभागः=विभाग भी
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता है
हि=निश्चयकरके
वर्तुलम्=गोलाकार और
कोणम्=त्रिकोणादि
इति=इस प्रकारका भी
विभागः=विभाग
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरेमें दीर्घ, लघु, अणु, ह्रस्वादिक भी विभाग नहीं हैं । फिर मेरेमें विस्तार और संकोचादिक विभाग भी नहीं हैं, और त्रिकोण चतुष्कोणादिक विभाग भी मेरेमें नहीं है और गोलाकार विभाग भी मेरेमें नहीं है, क्योंकि मैं इनसे रहित ज्ञान अमृतरूप हूँ ॥ २१ ॥

मातापितादि तनयादि न मे कदाचि-
ज्जातं मृतं न च मनो न च मे कदाचित् ।
निर्व्याकुलं स्थिरमिदं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

मातापितादि, तनयादि, न, मे, कदाचित्, जातम्, मृतम्, न, च, मनः, न, च, मे, कदाचित्, निर्व्याकुलम्, स्थिरम्, इदम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मेरे
मातापितादि=माता और पिता आदिक
तनयादि=स्त्री आदिक भी
कदाचित्=कदाचित्
जातम् न=उत्पन्न नहीं हुए
मृतम्=और मरे भी
न च=नहीं हैं
मे मनः=मेरा मन
कदाचित्=कदाचित् भी

निर्व्याकुलम्=व्याकुलतासे रहित
स्थिरम्=और स्थिर भी
न च=नहीं है
इदम्=यही आत्मा
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे सत्यवस्तु है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत है
समरसम्=समरस और
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमा-वाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--मेरे माता पिता और स्त्रीपुत्रादिक सब कदाचित् भी उत्पन्न नहीं हुए हैं आर न कदाचित् वह मेरे ही हैं फिर मेरेमें आकुलता और स्थिरता भी नहीं है किन्तु मैं परमार्थरूप अमृतरूप आकाशकी उपमावाला हूँ ॥ २२ ॥

शुद्धं विशुद्धमविचारमनन्तरूपं
निर्लेपलेपमविचारमनन्तरूपम् ।
निष्खण्डखण्डमविचारमनन्तरूपं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

शुद्धम्, विशुद्धम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, निर्लेपलेपम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, निष्खण्डखण्डम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

शुद्धम्=शुद्ध है
विशुद्धम्=विशेषकरके शुद्ध है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है
निर्लेप- लेपम् } =निर्लेप होकरके भी सम्बन्धवाला है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है
निष्खण्डखण्डम्=नाशसे भी वह रहित है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्त रूपभी है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोप- मोऽहम् } =गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं शुद्ध हूँ फिर विशेषकरके मैं शुद्ध हूं विचारसे मैं रहित हूँ अर्थात् मेरे स्वरूपमें विचारकी गम्य नहीं है। फिर निर्लेप जो कि आकाश उसके साथ भी मेरा लेप अर्थात् सम्बन्ध नहीं है और फिर मैं नाशसे भी रहित हूँ, फिर मैं ज्ञानरूपी अमृत हूँ और एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ २३ ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः कथमत्र सन्ति
स्वर्गादयो वसतयः कथमत्र सन्ति।
यद्येकरूपममलं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः।

ब्रह्मादयः, सुरगणाः, कथम्, अत्र, सन्ति, स्वर्गादयः, वसतयः, कथम्, अत्र, सन्ति, यदि, एकरूपम्, अमलम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

यदि=यदि वह ब्रह्म
एकरूपम्=एकरूप
अमलम्=शुद्ध है
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थस्वरूप भी है तब फिर
अत्र=इस ब्रह्ममें
ब्रह्मादयः=ब्रह्मासे आदि लेकरके
सुरगणाः=देवताके समूह
कथम्=किस प्रकार
सन्ति=होसकते हैं और
स्वर्गादयः=स्वर्गादिक
वसतयः=वस्तियाँ भी
अत्र=इसमें
कथम्=किस प्रकार
सन्ति=होसकती हैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि वह एक ही है और शुद्ध है, मायामलसे रहित है, परमार्थस्वरूप है सो फिर इस ब्रह्ममें ब्रह्मासे आदि लेकर सब देवतागण और स्वर्गादिक सब लोक यह परमार्थसे कैसे तिससे सत्य होसकते हैं किन्तु यह सब कदापि नहीं हो सकते हैं फिर वह ज्ञानरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् है सो मैं ही हूँ ॥ २४ ॥

निर्नेतिनेतिविमलो हि कथं वदामि
नि:शेषशेषविमलो हि कथं वदामि ।
निर्लिंगलिंगविमलो हि कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

निर्नेतिनोतिविमलः, हि, कथम्, वदामि, नि:शेषशेषविमलः, हि, कथम्, वदामि, निर्लिङ्गलिंगविमलः, हि, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्नेतिनोतिविमलः=वह नेतिनेतिसे रहित नहीं है शुद्ध है
हि=निश्चय करके
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
नि:शेषशेषविमलः=शेषसे रहित शेष है शुद्ध है
हि=निश्चय करके
कथम्=ऐसे भी किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
निर्लिङ्गलिंगविमलः=चिह्नसे रहित चिह्नवाला और शुद्ध
हि=निश्चयकरके
कथम्=किस प्रकार
वदामि=कथन करूं क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कि, जो "नेतिनेति" यह श्रुति कहती है कि ब्रह्ममें तीन कालमें भी जगत् नहीं है ऐसा भी कथन वही बनता है क्योंकि यदि प्रथम कहीं भी जगत् सत्य हो तब तो कहा जाय कि उसमें नहीं है जिसवास्ते जगत् तीनों कालोंमें कहीं भी सत्य नहीं है इस वास्ते वह शुद्ध है और सबका शेष होनेसे वह विमल है, फिर वह चिह्नसे भी रहित है अर्थात् उसका कोई भी चिह्न नहीं है किन्तु वह ज्ञानस्वरूप अमृतरूप है सो मैं हूँ ॥ २५ ॥

निष्कर्मकर्मपरमं सततं करोमि
निःसंगसंगरहितं परमं विनोदम् ।
निर्देहदेहरहितं सततं विनोदं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कर्मकर्मपरमम्, सततम्, करोमि, निःसंगसंगरहितम्, परमम्, विनोदम्, निर्देहदेहरहितम्, सततम्, विनोदम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कर्मकर्मपरमम् = कर्मसे मैं रहित हूँ परम कर्मको	निर्देहदेहरहितम् = देहसे रहित हूं देहसे रहितको और
सततम्=निरन्तर ही	सततम् निरन्तर
करोमि=म कर्ता हूँ	विनोदम्=हर्षको मैं प्राप्त होता हूं
निःसंगसंगरहितम् = मैं निःसंगसे रहितको	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
परमम्=उत्कृष्ट	समरसम=एकरस
विनोदम्=उपभोग करता हूँ	गगनोपमोऽहम् = गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कर्मरहित हूँ पर नानाप्रकारके कर्म करता हूँ। निस्संग संगरहित हूँ पर सदा विनोद करता हूँ। मैं देहरहित हूँ पर सदा आनन्दसे रहता हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ अमर हूँ सदा एकस्वरूप निर्लेप और व्यापक हूँ ॥ २६ ॥

मायाप्रपञ्चरचना न च मे विकारः
कौटिल्यदम्भरचना न च मे विकारः।
सत्यानृतेति रचना न च मे विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः।

मायाप्रपञ्चरचना, न, च, मे, विकारः, कौटिल्यदम्भरचना, न, च, मे, विकारः, सत्यानृतेति, रचना, न, च, मे, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

मायाप्रपञ्चरचना =मायारूपी प्रपञ्चकी जो रचना भी सो	सत्यानृतेतिरचना =सत्य झूठकी रचना भी
मे विकारः=मेरा विकार	मे विकारः=मेरा विकार
न च=नहीं है	न च=नहीं है
कौटिल्यदम्भरचना =कुटिलता और दम्भकी रचनाभी	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
मे विकारः=मेरा कार्य	समरसम्=एकरस
न च=नहीं है	गगनोपमोऽहम्=गगनवत् मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मायाके नाना प्रपञ्चोंकी रचना मेरा विकार नहीं है, कुटिलता कपट ढोंग आदि मेरे विकार नहीं हैं, सच और झूँठका प्रपंच मेरा विकार नहीं है। मैं ज्ञानस्वरूप, अमर, सदा समान रहनेवाला और व्यापक हूँ ॥ २७ ॥

सन्ध्यादिकालरहितं न च मे वियोगो
ह्यन्तःप्रबोधरहितं बधिरो न मूकः ।
एवं विकल्परहितं न च भावशुद्धं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २८॥

पदच्छेदः ।

सन्ध्यादिकालरहितम्, न, च, मे, वियोगः, हि, अन्तः-प्रबोधरहितम्, बधिरः, न, मूकः, एवम्, विकल्परहितम्, न, च, भावशुद्धम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सन्ध्यादि-कालरहितम् = सन्ध्यादिकालोंमेंसे रहितहूँ तब भी उनसे
मे वियोगः = मेरा वियोग
न च = नहीं है
हि = निश्चयकरके
अन्तः = भीतरसे
प्रबोधर-हितम् = विशेष बोधसे रहित
बधिरः = बहरा और
मूकः = मूक भी मैं
न च = नहीं हूँ
एवम् = इस प्रकार
विकल्प-रहितम् = विकल्पसे रहित हूँ
भावशुद्धम् = अन्तःकरणसे शुद्ध
न च = नहीं हूँ
ज्ञानामृतम् = ज्ञानरूपी अमृत
समरसम् = एकरस
गगनोप-मोऽहम् = गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो चेतन कि संध्या, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालोंसे रहित है अर्थात् कालकृत भेद भी जिसमें नहीं है तीनों कालोंमें एकरस है उसके साथ मेरा वियोग नहीं है अर्थात् वह मैं ही हूँ। फिर वह अन्तरके ज्ञानसे रहित है परन्तु वह बधिर और मूक नहीं है किन्तु वह ज्ञानस्वरूप है इस प्रकारादि विकल्पोंसे भी वह रहित है तो भी चित्तसे शुद्ध नहीं है क्योंकि उसका चित्त नहीं है वह शुद्धस्वरूप है

और ज्ञानरूपी अमृत है, एकरस आकाशवत् व्यापक भी है सोई मैं हूँ ॥ २८ ॥

निर्नाथनाथरहितं हि निराकुलं वै
निश्चित्तचित्तविगतं हि निराकुलं वै ।
संविद्धि सर्वविगतं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

निर्नाथनाथरहितम्, हि, निराकुलम्, वै, निश्चित्तचित्त-विगतम्, हि, निराकुलम्, वै, संविद्धि, सर्वविगतम्, हि, निराकुलम्, वै, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्नाथनाथरहितम् =स्वामीसे रहित हूँ किसीका और स्वामी भी मैं नहीं हूँ	निराकुलम्=आकुलतासे रहित
हि=निश्चय करके	संविद्धि=तू सम्यक् जान
निराकुलम्=व्याकुलतासेभी रहित हूँ	सर्वविगतम्=सर्वसे रहित हूँ
वै=निश्चय करके	हि=निश्चय करके
निश्चित्तचित्तविगतम् =चिन्तासे रहित हूँ और चित्तसे भी रहित	निराकुलम्=कुलसे भी रहित हूं
वै=निश्चय करके	वै=निश्चयकरके
	ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
	समरसम्=एकरस
	गगनोपमोऽहम् =आकाशकी उपमावाला हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरा कोई भी नाथ अर्थात् स्वामी नहीं है और मैं भी किसीका स्वामी नहीं हूं क्योंकि मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है फिर मैं कुलसे अर्थात् मूलकारणसे भी रहित हूं फिर चिन्तासे रहित हूं

क्योंकि मेरा चित्तही नहीं है फिर सर्वगत हूं परन्तु सर्वसे रहित हूं किन्तु ज्ञानरूपी अमृत एकरस आकाशवत् व्यापक हूं ॥ २९ ॥

कान्तारमन्दिरमिदं हि कथं वदामि
संसिद्धसंशयमिदं हि कथं वदामि ।
एवं निरन्तरसमं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

कान्तारमंदिरम्, इदम्, हि, कथम्, वदामि, संसिद्धसंशयम्, इदम्, हि, कथम्, वदामि,, एवम्, निरन्तरसमम्, हि, निराकुलम्, वैं, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह
कान्तारमन्दिरम्=निर्जन बनरूप है
हि=निश्चय करके
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
इदम्=यह
संसिद्धसंशयम्=संशयकरके सिद्ध है
हि=निश्चय करके
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
एवम्=इसी प्रकार वह
निरन्तरसमम्=निरन्तर सम है
हि वै=निश्चय करके
निराकुलम्=व्याकुलतासे रहित
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जगत् एक शून्य मन्दिररूप है वा सत्य असत्य आदि संशयोंकरके युक्त है निरन्तर सम है अर्थात् प्रवाहरूपकरके एकरस नित्य है वा निराकुल है अर्थात् मूलकारणसे रहित है। मैं

जगत्को इस प्रकारका कैसे कथन करूँ ? क्योंकि मेरा तो इसके कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस नवत् हूँ ॥ ३० ॥

निर्जीवजीवरहितं सततं विभाति
निर्बीजबीजरहितं सततं विभाति।
निर्वाणबन्धरहितं सततं विभाति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः।

निर्जीवजीवरहितम्, सततम्, विभाति, निर्बीजबीजरहि-, सततम्, विभाति, निर्वाणबन्धरहितम्, सततम्, विभाति, ामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

ीवजीवरहितम् =निर्जीवसे और जीवसे रहित	निर्वाणबन्धरहितम् =सुखसे और बन्धनसे रहित
म्=निरन्तरही	सततम्=निरन्तरही
ाति=भान होते हैं	विभाति=भान होता है
ीजबीजरहितम् =निर्बीजसे और बीजसे रहित	ज्ञानामृतम्=ज्ञान अमृतरूप
म्=निरन्तरही	समरसम्=एकरस
ति=भान होता है	गगनोपमोऽहम्=मैं गगनवत् हूँ

भावार्थः।

त्तात्रेयजी कहते हैं—एक निर्जीव पदार्थ है, जिसमें जीव चेतन नहीं रहता र्थात् जड माया दूसरा जीवरहित है जिसमें जीवत्व धर्म नहीं है, किन्तु व्यापक चेतन पदार्थ है, यह दोही पदार्थ निरन्तरही मेरेको भान है सो दोनोंमें चेतनही सत्य है, माया जड मिथ्या है, वह चेतन निर्बीज

है अर्थात् बीजकारणसे रहित है, और आपभी किसीका उपादान कारण नहीं है, ऐसाही हमको निरन्तर भान होता है, फिर वह निर्वाण है अर्थात् मुक्त-स्वरूप है,और वन्धनसे रहित है,एकरस ज्ञानरूप अमृतरूप है,सो मैं हूँ॥३१॥

संभूतिवर्जितमिदं सततं विभाति
संसारवर्जितमिदं सततं विभाति ।
संहारवर्जितमिदं सततं विभाति ।
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

संभूतिवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, संसारवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, संहारवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह चेतन
संभूतिवर्जितम्=ऐश्वर्यसे रहितही
सततम्=निरन्तर
विभाति=मेरेको भान होता है और
संसारवर्जितम्=संसारसे रहित भी
इदम्=यह चेतन
सततम्=निरन्तर मेरेको
विभाति=भान होता है
संहारवर्जितम्=नाशसे रहित
इदम्=यह ब्रह्म
सततम्=निरन्तर ही
विभाति=मेरेको भान होता है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप मैं हूँ
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–यह जो ब्रह्मचेतन है सो मेरेको निरन्तर ऐश्वर्यसे रहित भान होता है क्योंकि संसारमें जितना ऐश्वर्य है सो सब मायाका कार्य है और वही ब्रह्मचेतन माया और मायाके कार्यसे रहित है

यह ब्रह्मचेतन जन्म मरणरूप संसारसे रहित मेरेको भान होता क्योंकि व्यापक चेतनमें जन्मादिक नहीं बनते हैं फिर यह व्यापक संहारसे भी रहित है, अर्थात् तिसका कभी भी नाश नहीं होता है वह ज्ञानरूपी अमृतरूप है, एकरस है आकाशकी तरह व्यापक सो ब्रह्म मैं ही हूं ॥ ३२ ॥

उल्लेखमात्रमपि ते न च नामरूपं
निर्भिन्नभिन्नमपि ते न हि वस्तु किञ्चित् ।
निर्लज्जमानस करोषि कथं विषादं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः ।

उल्लेखमात्रम्, अपि, ते, न, च, नामरूपम्, निर्भिन्नभिन्नम्, अपि, ते, न, हि, वस्तु, किञ्चित्, निर्लज्जमानस, करोषि, कथम्, विषादम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारा
उल्लेखमात्रम्=उल्लेख मात्र भी
नामरूपम्=नाम और रूप
न=नहीं है
निर्भिन्नभिन्नम्=भेदसे रहितमें भेद
अपि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारेमें
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न हि वस्तु=वस्तु नहीं है
हे निर्लज्जमानस!=लज्जासे रहित होकर हे मन!
कथम्=किस प्रकार
विषादम्=विषादको
करोषि=तू कर्ता है क्योंकि तू
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हो
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तसे कहते हैं—उल्लेखमात्र भी अर्थात् किञ्चि-त् भी तेरा नाम और रूप नहीं है फिर भेदसे रहित तेरे स्वरूपमें भेद

करनेवाला कोई भी वस्तु नहीं है, तब फिर हे निर्लज्जमानस अर्थात् लज्जासे रहित चित्त ! तू क्यों विषाद करता है वह चेतन ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक है सो मैं हूँ ॥ ३३ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न जरा न मृत्युः
किं नाम रोदिषि सखे न च जन्मदुःखम् ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, जरा, न, मृत्युः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, जन्मदुःखम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
नाम=(इति प्रसिद्धम्)
किम्=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
न जरा=न तो जरा अवस्था है
न मृत्युः=न तो मृत्युही है
सखे=हे सखे ।
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
जन्मदुःखम्=जन्मका दुःख भी
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
ते=तुम्हारा
विकारः=विकार भी
न च=नहीं है क्याकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=समरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला आत्मा है
अहम्=सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने ही चित्तसे कहते हैं-हे सखे ! किसलिये तू जरा मृत्युके भयसे रुदन करता है अर्थात् जरामृत्युके भयसे जो तुम्हारा

दन करना है सो झूठा है क्योंकि तुम्हारा स्वरूप जरामृत्युके भयसे रहित यदि कहो कि, जन्मके दुःखसे मैं रुदन करता हूँ तो उचित नहीं क्योंकि रहित होनेसे जन्मका दुःख भी तुमको नहीं है, फिर तुम्हारा कोई कार अर्थात् कार्य भी नहीं है तब कार्यके लिये भी तुम्हारा रुदन करना र्थ है क्योंकि ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक मैं हूँ ऐसा निश्चय करो ॥ ३४ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते स्वरूपं
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विरूपम्।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, स्वरूपम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विरूपम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, वयांसि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा यह शरीर
स्वरूपम्=स्वरूप
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता ह
ते=तुम्हारा
विरूपम्=रूप नष्ट होनेवाला भी
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किन्नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारे
वयांसि=आयु आदिक भी
न च=नहीं हैं क्योंकि वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला है
अहम्=सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने ही आपसे कहते हैं—हे सखे ! किस वास्त तू शरार या इन्द्रियोंके लिये रुदन करता है ? यह तो तुम्हारा रूप नहीं है क्योंकि यह तो सब मिथ्या तुम इनके साक्षी नित्य हो इस वास्ते रुदन करना तुम्हारा नहीं बनता है फिर तुम किसके लिये रुदन करते हो ? नष्ट होने-वाला रूप नहीं है फिर जिन आयु आदिकोंके वास्ते तुम रुदन करते हो यह भी तुम्हारे नहीं हैं क्योंकि तुम ज्ञानस्वरूप अमृतरूप गगनकी उपमा-वाले हो सो मैं हूं ऐसा निश्चय करो ॥ ३५ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि
किं नाम रोदिषि सखे न च ते मनांसि
किं नाम रोदिषि सखे न तवेन्द्रियाणि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, वयांसि, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, मनांसि, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, तव, इन्द्रियाणि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

किं नाम=किसवास्ते
सखे=हे सखे !
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
वयांसि=आयु आदिक भी
ते न च=तुम्हारे नहीं हैं
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसके लिये
रोदिषि=तू रुदन करता है
मनांसि=मन आदिक भी
न च ते=तुम्हारे नहीं हैं
सखे=हे सखे !
किं नाम=किस लिये
रोदिषि=तू रुदन करता है
इन्द्रियाणि=यह इंद्रिय भी सब
तव न=तुम्हारे नहीं हैं क्योंकि तुम
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हो
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
अहम्=मैं हूं ऐसे तुम जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सखे ! तू जिन आयु आदिकोंके लिये रुदन करता है कि, यह हमारे नष्ट हो जायंगे सो यह तो तुम्हारे पहलेसे ही नहीं हैं क्योंकि तुम इससे रहित हो फिर मन आदिकोंके वास्ते भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तुम इनसे भी अलग हो और यह इन्द्रियादिक भी तुम्हारे नहीं हैं अतः इनके लिये भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है। तुम तो ऐसे निश्चय करो कि, ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस मैं हूं ॥ ३६ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च तेऽस्ति कामः
किं नाम रोदिषि सखे न च ते प्रलोभः ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विमोहो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३७॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, अस्ति, कामः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, प्रलोभः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विमोहः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
किं नाम=किस वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा
कामः=इच्छा भी
सखे न च=हे सखे ! नहीं है
किं नाम=किस वास्ते
रोदिषि=रुदन करता है
ते=तुम्हारा
प्रलोभः=लोभ भी
न च=नहीं है

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसके वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा
विमोहः=विमोह भी
न च=नहीं है क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ ऐसे तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सखे ! यह काम जो इच्छा है यह भी तुम्हारेमें नहीं है क्योंकि यह अन्तःकरणका धर्म है और यह लोभ भी तुम्हारेमें नहीं है और विशेष करके यह मोह भी तुम्हारेमें नहीं है यह भी सब अन्तःकरणके ही धर्म हैं, फिर तुम किसके वास्ते रुदन करते हो तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तुम असंग एकरस ज्ञानस्वरूप व्यापक हो ऐसे जानो ॥ ३७ ॥

ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते धनानि
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते हि पत्नी ।
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते ममेति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ।

ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, धनानि, ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, हि, पत्नी, ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, मम, इति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किस प्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारे
धनानि=धनादिक सब भी
न च=नहीं है
ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किस प्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न च हि=नहीं है
ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किस प्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारा
मम=मेरा भी
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी
न च=नहीं है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ ऐसे जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह धनादिक तो सब तुम्हारे नहीं हैं फिर तुम ऐश्वर्यकी इच्छा कैसे करते हो, फिर स्त्री भी वास्तवसे तुम्हारी नहीं है, वह अपने स्वार्थकी है और भी कोई पदार्थ तुम्हारा नहीं है उसमें ममताका करना भी नहीं बनता है इसी वास्ते ऐश्वर्यकी इच्छा करनी भी निरर्थक है क्योंकि तुम आप ही ऐश्वर्यस्वरूप ज्ञानरूपी अमृतरूप आकाशवत् निर्लेप हो ऐसे तुम अपनेको जानो ॥ ३८ ॥

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी न च ते न मे च निर्लज्जमानस-मिदं च विभाति भिन्नम् । निर्भेदभेदरहितं न च ते न मे च ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३९॥

पदच्छेदः ।

लिंगप्रपञ्चजनुषी, न, च, ते, न, मे, च, निर्लज्जमानसम्, इदम्, च, विभाति, भिन्नम्, निर्भेदभेदराहितम्, न, च, ते, न, मे, च, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

लिंगप्रपञ्चजनुषी=चिह्नरूप प्रपञ्चकी उत्पत्ति
ते न च=तुम्हारेसे भी हुई नहीं
मे न च=हमारेसे भी हुई नहीं
निर्लज्जमानसम्=लज्जासे रहित मनके
इदम्=यह रचना
भिन्नम्=भिन्न होकर
विभाति=प्रतीत होती है
च=और
निर्भेदभेदरहितम्=सामान्य विशेष भेदसे रहित होना भी
ते न च=तुम्हारा नहीं है और
मे न च=हमाराभी नहीं है क्योंकि यदि भेद कहीं सत्य हो तब तो हो सो तो नहीं है एकमें भेदाऽभेद व्यवहार ही नहीं बनता है क्योंकि वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—नाना प्रकारके चिह्न जैसे पशु पक्षी मनुष्य आदि जातिके पहिचान करानेवाले लक्षण न तुम्हारे हैं न मेरे हैं यह सब लज्जा-हीन मनको प्रतीत पडते हैं तुम्हारे और हमारे कोई साधारण अथवा विशेष भेद नहीं हैं मैं तो ज्ञान और अमृतस्वरूप सदा समान रहनेवाला आकाश-तुल्य हूँ एकरस हूँ ॥ ३९ ॥

नो वाणुमात्रमपि ते हि विरागरूपं
नो वाणुमात्रमपि ते हि सरागरूपम् ।
नो वाणुमात्रमपि ते हि सकामरूपं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४० ॥

पदच्छेदः ।

नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, विरागरूपम्, नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, सरागरूपम्, नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, सकामरूपम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वा=अथवा
हि अपि=निश्चय करके
ते=तुम्हारा
अणुमात्रम्=अणुमात्रभी
विरागरूपम्=विगतरागरूप
नो=नहीं है
वा=अथवा
अपि हि=निश्चय करके
ते=तुम्हारा
अणुमात्रम्=अणुमात्रभी
सरागरूपम्=रागके सहित रूप
नो=नहीं है
वा=अथवा
अपि हि=निश्चय करके
ते=तुम्हारा
अणुमात्रम्=अणुमात्रभी
सकामरूपम्—सकामरूप
नो=नहीं है किन्तु तुम
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्—गगनकी उपमावाला मैं हूं ऐसे जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे चित्त ! तुम्हारा स्वरूप अणुमात्र भी विगतराग अर्थात् रागसे रहित नहीं है क्योंकि सर्वकाल आत्मामें तुम्हारा राग बना है, और फिर थोडा भी तुम्हारा स्वरूप रागके सहित भी नहीं है क्योंकि विषयोंमें तुम्हारा राग नहीं है और थोडा भी कामनाके सहित तुम्हारा स्वरूप नहीं है क्योंकि तुम ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस गगनकी उपमावाले हो ऐसा तुम चिन्तन करो कि मैं ही ज्ञानरूप और अमृतादि रूपवाला हूँ ॥४०॥

ध्याता न ते हि हृदये न च ते समाधिर्ध्यानं न ते हि हृदये न बहिः प्रदेशः । ध्येयं न चेति हृदये न हि वस्तु कालो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः ।

ध्याता, न, ते, हि, हृदये, न, च, ते, समाधिः, ध्यानम्, न, ते, हि, हृदये, न, बहिः, प्रदेशः, ध्येयम्, न, च, इति हृदये, न, हि, वस्तु, कालः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारे
हृदये=हृदयमें
ध्याता=ध्यानका कर्ता
न=नहीं है
ते=तुम्हारी
समाधिः=समाधि और
ध्यानम्=ध्यानभी
हि=निश्चयकरके
न च=नहीं है
ते=तुम्हारे
हृदये=हृदयमें
बहिः=बाह्य
प्रदेशः=प्रदेश भी
न च=नहीं है और
ध्येयम्=ध्येय भी
न=नहीं है और
इति=इस प्रकारका
कालः=काल भी कोई
वस्तु=वस्तु
न हि=नहीं है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=समरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला हूं ऐसे जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–तुम्हारे हृदयमें वास्तवसे न तो कोई ध्याता है अर्थात् ध्यानका कर्ता है और न कोई समाधि तथा ध्यान ही है और न कोई बाहर अन्तर देश ही है और न कोई कालवस्तु ही है किन्तु यह सब कल्पना मात्र ही है तुम्हारा स्वरूप इनसे भिन्न ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक है, ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ४१ ॥

यत्सारभूतमखिलं कथितं मया ते
न त्वं न मे न महतो न गुरुर्न शिष्यः ।
स्वच्छन्दरूपसहजं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, सारभूतम्, अखिलम्, कथितम्, मया, ते, न, त्वम्, न, मे, न, महतः, न, गुरुः, न, शिष्यः, स्वच्छन्दरूपसहजम्; परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मया=मैंने
ते=तुम्हारे प्रति
अखिलम्=संपूर्ण
यत्=जो
सारभूतम्=सारभूत
कथितम्=कथन किया है वह सब
त्वम् न=तेरा नहीं है
मे न=मेरा भी नहीं है
महतः=महत्तत्त्व भी

न=नहीं है
न गुरुः=न तो गुरु है
न शिष्यः=न शिष्य है
स्वच्छन्दरूपसहजम्=स्वच्छन्दरूप स्वाभाविक
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्वस्वरूप
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि हम एक ही आकाशवत् व्यापक और श्रेष्ठ वर्त्तमान हैं तो फिर हमारे आत्मस्वरूपमें परमार्थतत्त्व कैसे वर्त्तता है और आनन्दरूपता कैसे रहती है और परमार्थतत्त्व और आनन्दरूपता कैसे नहीं रहती है और ज्ञानविज्ञानरूपता कैसे बनती है, किन्तु किसी प्रकारसे भी नहीं बनती है॥४३॥

दहनपवनहीनं विद्धि विज्ञानमेक-
मवनिजलविहीनं विद्धि विज्ञानरूपम् ।
समगमनविहीनं विद्धि विज्ञानमेकं
गगनमिव विशालं विद्धि विज्ञानमेकम्॥४४॥

पदच्छेदः ।

इह, न, दहन—पवनहीनम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम्, अवनिजलविहीनम्, विद्धि, विज्ञानरूपम्, समगमनविहीनम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम्, गगनम्, इव, विशालम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम् ॥

पदार्थः ।

विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप आत्माको
एकम्=एकही
विद्धि=तू जान फिर तिसको
दहनपवनहीनम्=अग्निऔरवायुसेभीरहित
विद्धि=तू जान फिर
अवनिजलविहीनम्=पृथिवी और जलसे रहित
एकम्=एक ही
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप आत्माको
विद्धि=तू जान
समगमनविहीनम्=बराबर चलनेसे भी रहित और
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप
एकम्=एक आत्माकोही
विद्धि=तू जान और
गगनम्=आकाशकी
इव=तरह
विशालम्=विस्तारवाला
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप
एकम्=एक आत्माको
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--वह आत्मा ज्ञानस्वरूप आकाशवत् निर्मल [पृथ]िवी, अग्नि, वायु, जलादिकोंसे रहित है और एक है वह मेरा [अप]ना आप है, ऐसे तुम जानो ॥ ४४ ॥

न शून्यरूपं न विशून्यरूपं
न शुद्धरूपं न विशुद्धरूपम् ।
रूपं विरूपं न भवामि किञ्चित्
स्वरूपरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ४५ ॥

पदच्छेदः ।

न, शून्यरूपम्, न, विशून्यरूपम्, न, शुद्धरूपम्, न, विशु[द्ध]रूपम्, रूपम्, विरूपम्, न, भवामि, किञ्चित्, स्वरूपरूपम्, [प]रमार्थतत्त्वम् ॥

पदार्थः ।

[श]ून्यरूपम्=शून्यरूप मैं	न=मैं नहीं हूँ
[न]=नहीं हूँ	रूपम्=रूप और
[वि]शून्यरूपम्=विशेषकरके शून्यरूपभी	विरूपम्=विगतरूप भी
[न]=मैं नहीं हूँ	किञ्चित्=किञ्चित्
[शु]द्धरूपम्=शुद्धरूप भी	न भवामि=मैं नहीं हूं
[न]=मैं नहीं हूँ	स्वरूपरूपम्=स्वरूपकाभी स्वरूप मैं हूँ
[व]िशुद्धरूपम्=विशेषकरके शुद्धरूप- [भी]	परमार्थ-तत्त्वम् =परमार्थसे यथार्थरूप मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम शून्यरूप नहीं हैं और विगतशून्यरूप भी नहीं हैं क्योंकि वह भी हमारेमें ही कल्पित है और किसी साधनकरके

१०

भी मैं शुद्ध नहीं होता हूं। और विगतशुद्धरूप भी मैं नहीं हूं अर्थात् शुद्धतासे रहित भी हम नहीं हैं और नीलपीतादिक रूपोंवाला और विगतरूप भी मैं नहीं हूं। तात्पर्य यह है कि नीलपीतादिक रूपोंवाला पदार्थ जड होता है सो मैं नहीं हूं क्योंकि मैं चेतन हूं और विगतरूप शून्य होता है, सो मैं नहीं हूं क्योंकि सच्चिदानन्दरूप मैं हूं, और परमार्थ-स्वरूप भी मैं हूं ॥ ४५ ॥

मुञ्च मुञ्च हि संसारं त्यागं मुञ्च हि सर्वथा ।
त्यागात्यागविषं शुद्धममृतं सहजं ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्मसंवित्त्युपदेशो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

मुञ्च, मुञ्च, हि, संसारम्, त्यागम्, मुञ्च, हि, सर्वथा, त्यागात्यागविषम्, शुद्धम्, अमृतम्, सहजम्, ध्रुवम् ॥

पदार्थः ।

संसारम्=संसारको
हि=निश्चयकरके
मुञ्च=छोड दे
त्यागम्=त्यागको भी
हि=निश्चयकरके
सर्वथा=सबप्रकारसे
मुञ्च=छोडदे
त्यागात्यागविषम्=त्याग और त्यागाभावरूपी विषको भी
मुञ्च=छोडदे क्योंकि
सहजम्=स्वभावसे ही
शुद्धम्=तू शुद्ध है
अमृतम्=अमृतरूप है
ध्रुवम्=नित्य है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे मुमुक्षुजन ! संसारका तू त्याग करदे फिर उस त्यागका भी त्याग करदे और त्याग तथा त्यागके अभावको भी विषरूप जानकरके त्यागदे । तात्पर्य यह है कि, त्यागका जो कि अभिमान है कि, मैं त्यागी हूं यह भी वडा दुःखदाई है, त्याग अत्याग दोनोंके अभिमानके त्यागनेसे ही पूरा सुख मिलताहै और तू स्वभावसे ही शुद्ध है

भूतरूप है और नित्य भी है तेरेसे भिन्न दूसरा न कोई जीव है और न श्वर है किन्तु तू ही सर्व रूप सबका अधिष्ठान है, ऐसा निश्चय कर ॥४६॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अवधूत उवाच ।

नावाहनं नैव विसर्जनं वा
पुष्पाणि पत्राणि कथं भवन्ति ।
ध्यानानि मंत्राणि कथं भवन्ति
समासमं चैव शिवार्चनं च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

न, आवाहनम्, न, एव, विसर्जनम्, वा, पुष्पाणि, पत्राणि, कथम्, भवन्ति, ध्यानानि, मन्त्राणि, कथम्, भवन्ति, समासमम्, च, एव, शिवार्चनम्, च ॥

पदार्थः ।

आवाहनम्=व्यापक चेतनका आवाहनही
न=नहीं है
एव=निश्चयकरके
विसर्जनम्=विसर्जनभी
न=नहीं हो सकता है
पुष्पाणि=पुष्प
वा=अथवा
पत्राणि=पत्र
कथम्=किस प्रकारसे
भवन्ति=समर्पण होते हैं
ध्यानानि=ध्यान
च=और
मन्त्राणि=मन्त्र
कथम्=किस प्रकार
भवन्ति=हो सकते हैं
च=और
एव=निश्चयकरके
समासमम्=सर्वत्र समदृष्टि रखनीही
शिवार्चनम्=कल्याणरूप चेतनका पूजन है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक कल्याण-स्वरूप ब्रह्माण्डभरमें एकही है, तब तिसका पूजन और आवाहन तथा विसर्जन कैसे बन सकता है क्योंकि आवाहन और विसर्जन उसका होता है जो कि एक देशमें हो एक देशमें नहीं अर्थात् परिच्छिन्न देहधारी हो ऐसा तो वह आत्मा नहीं है किन्तु सर्वत्र एकरस पूर्ण है इस वास्ते उसका आवाहन और विसर्जन भी नहीं होता है और पूजाभी अपनेसे भिन्नकी होती है वह अपनेसे भिन्न भी नहीं है इस वास्ते उसकी पूजाभी नहीं हो सकती है। फिर पुष्पपत्रादिक उसको दिये जाते हैं कि जिसके घ्राणादिक इन्द्रियें हों देहधारी हो सो उसके तो घ्राणादिक इन्द्रियें भी नहीं हैं इस वास्ते पुष्प-पत्रादिकोंका समर्पण करना भी नहीं बनता है अज्ञानी लोग कह देते हैं कि, वह वासनाका भूखा है परन्तु उनको वासनाके अर्थका ज्ञान नहीं होता है। वासना नाम शुभ अशुभ कर्मोंके संस्कारोंका है सो संस्कार देहधारी परिच्छिन्नमें ही रहते हैं, देहसे रहित व्यापकमें वासना नहीं रहती है। फिर जब कि, उसका आवाहन और विसर्जन ही नहीं बनता है तब फिर ध्यान और मन्त्र कैसे बन सकते हैं क्योंकि साकार वस्तुका ही ध्यान हो सकता है निराकारतक तो मन बुद्धि पहुँचही नहीं सकते हैं क्योंकि मन बुद्धि आदिक सब साकार हैं दूसरे जड हैं। जडचेतनका किसी प्रकारसे भी विषय नहीं हो सकता है इस वास्ते ध्यान और मन्त्र भी नहीं बनते हैं अतएव सर्वत्र समदृष्टि करनी अर्थात् सबमें एक आत्माको जान करके किसी जीवको भी न सताना इसीका नाम शिवपूजन है ॥ १ ॥

न केवलं बन्धविबन्धमुक्तो
न केवलं शुद्धविशुद्धमुक्तः ।
न केवलं योगवियोगमुक्तः
स वै विमुक्तो गगनोपमोऽहम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, केवलम्, बन्धविबन्धमुक्तः, न, केवलम्, शुद्धविशुद्ध-

क्तः, न, केवलम्, योगवियोगमुक्तः सः, वै, विमुक्तः, गग-
नोपमः; अहम् ॥

पदार्थः ।

केवलम्=केवल	योगवियो- गमुक्तः =सामान्यविशेषयोगसे रहित भी
न्धविब- न्धमुक्तः =सामान्यविशेष रूपी बन्धनसे रहित	न=मैं नहीं हूं किन्तु हूं
न=मैं नहीं हूं किन्तु हूं	वै=निश्चयकरके
केवलम्=केवल	सः=सो मैं
शुद्धविशु- द्धमुक्तः =सामान्यविशेषरूप शुद्धविशुद्धिसे रहित	विमुक्तः=मुक्तरूप हूं
न=मैं नहीं हूं किन्तु हूं	गगनो- पमः गगनकी उपमावाला
केवलम्=केवल	अहम्=मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—दो प्रकारका बन्ध है एक तो सामान्यरूपसे बन्ध है दूसरा विशेषरूपसे बन्ध है । प्राणिमात्रको जो कि अज्ञानकृत बन्ध है सो सामान्यबन्ध है और स्त्रीपुत्रादिकोंमें जो कि अहन्साममतारूपी बन्ध है सो विशेष बन्ध है सो इन दोनों प्रकारके बन्धोंसे मुक्त नहीं हूँ किन्तु अवश्य मुक्त हूं शुद्धि भी सामान्य विशेषरूपसे अर्थात् आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे दो प्रकारकी है सो मैं दोनों प्रकारकी शुद्धिसे भी रहित हूं क्योंकि मेरा आत्मा नित्य शुद्ध है और योगवियोगसे अर्थात् संयोग वियोगसे भी मैं रहित हूं क्योंकि संयोगवियोग भी साकारके होते हैं निराकारके नहीं होते हैं । सो मेरा आत्मा निराकार है किन्तु गगनकी उपमावाला मैं हूं ॥ २ ॥

सञ्जायते सर्वमिदं हि तथ्यं
सञ्जायते सर्वमिदं वितथ्यम् ।
एवं विकल्पो मम नैव जातः
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

संजायते, सर्वम्, इदम्, हिं, तथ्यम्, सञ्जायते, सर्वम्, इदम्, वितथ्यम्, एवम्, विकल्पः, मम, न, एव, जातः, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह दृश्यमान	एवम्=इस प्रकारका
सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्	विकल्पः=विकल्प
हि=निश्चयकरके	मम=मेरेको
तथ्यम्=सत्य ही	एव=निश्चय करके
सञ्जायते=उत्पन्न होता है	न जातः=उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि
इदम्=यह दृश्यमान	अहम्=मैं
सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्	अनामयः=रोगसे रहित और
वितथ्यम्=मिथ्या ही	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्तरूप हूं
सञ्जायते=उत्पन्न होता है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जितना कि दृश्यमान जगत् है, सो सम्पूर्ण मिथ्या ही उत्पन्न होता है और फिर यह सम्पूर्ण जगत् विशेष करके ही मिथ्या उत्पन्न होता है अथवा सत्य ही उत्पन्न होता है इस प्रकारका विकल्प भी मेरेको कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ है क्योंकि मैं स्वरूपसे ही मुक्तरूप हूं, रोगसे रहित हूं अर्थात् जन्ममरणादि रोग मेरेमें नहीं हैं ॥ ३ ॥

न साञ्जनं चैव निरञ्जनं वा
न चान्तरं वापि निरंतरं वा ।
अन्तर्विभिन्नं न हि मे विभाति
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

न, साञ्जनम्, च, एव, निरञ्जनम्, वा, न, च, अन्तरम्, वा, अपि, निरन्तरम्, वा, अन्तर्विभिन्नम्, न, हि, मे, विभाति, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

साञ्जनम्=मायामलके सहित
एव=निश्चयकरके
न=मैं नहीं हूँ
च वा=और
निरञ्जनम्=मायामलसे रहित भी
न=मैं नहीं हूँ
वा=अथवा
वा अपि=निश्चयकरके
अन्तरम्=व्यवधानसहित
वा=अथवा
निरन्तरम्=व्यवधान रहित भी
न च=मैं नहीं हूँ
अन्तर्विभिन्नम्=व्यवधान और भेद भी
मे=मेरेको
न हि=नहीं
विभाति=भान होता है क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मैं मुक्तरूप हूँ
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हम मायारूपी अञ्जन जो मैल है तिसके सहित नहीं है क्योंकि तीनों कालमें माया हमारेमें वास्तवसे नहीं है और मायारूपी मलसे रहित भी नहीं है क्योंकि हमारेमें ही माया कल्पित है. तब सहित और रहित कैसे हम कह सकते हैं, किन्तु कदापि भी नहीं। फिर हमारेमें अन्तर अर्थात् व्यवधान और व्यवधानसे रहितपना भी नहीं बनता है। व्यवधान और भेद सर्वव्यापकमें हमको भान भी नहीं होता है क्योंकि हम जन्मादि-रोगसे रहित मुक्तस्वरूप हैं ॥ ४ ॥

अबोधबोधो मम नैव जातो बोधस्वरूपं मम नैव जातम्। निर्बोधबोधं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाण-मनामयोऽहम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अबोधबोधः, मम, न, एव, जातः, बोधस्वरूपम्, मम, न, एव, जातम्, निर्बोधबोधम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अबोधबोधः=बोधरहितका बोध
मम=मेरेको
एव=निश्चयकरके
न जातः=नहीं हुआ है
बोधस्वरूपम्=मैं बोधस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान भी
मम=मेरेको
एव=निश्चयकरके
न जातम्=नहीं हुआ है
च=और
निर्बोधबोधम्=बोधसे रहित बोधवाला अपनेको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=कहूँ क्योंकि मैं
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्तरूप हूँ
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—बोधनाम ज्ञानका है (न बोधः अबोधः) न जो होवे ज्ञान उसीका नाम अबोध अर्थात् अज्ञान है सो अज्ञानका जो बोध ज्ञान सो भी मेरेको नहीं है क्योंकि अज्ञान जो है सो शुद्धस्वरूप आत्मामें तीनों कालमें नहीं है जो वस्तु तीनों कालमें है ही नहीं उसका ज्ञान कैसे हो सकता है किन्तु कदापि भी नहीं मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान भी मेरेको नहीं हुआ ऐसा ज्ञान तब होवे जो ज्ञान मेरे भिन्न होवे, जब ज्ञान अपनेसे भिन्न नहीं है तब हम कैसे कह सकते हैं कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, फिर मैं निर्बोधबोध हूँ अर्थात् ज्ञानसे रहित मैं ज्ञान हूँ ऐसे भी मैं कैसे हूँ ऐसा कथन भी नहीं बनता है क्योंकि ज्ञानसे रहित तो जड होता है वह ज्ञानरूप कैसे हो सकता है इसवास्ते मैं मोक्षरूप रोगसे रहित हूँ ॥ ५ ॥

न धर्मयुक्तो न च पापयुक्तो
न बन्धयुक्तो न च मोक्षयुक्तः ।

युक्तं त्वयुक्तं न च मे विभाति
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, धर्मयुक्तः, न, च, पापयुक्तः, न, बन्धयुक्तः, न, च, मोक्षयुक्तः, युक्तम्, तु, अयुक्तम्, न, च, मे, विभाति, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

धर्मयुक्तः=धर्म करके युक्त भी मैं
न=नहीं हूं
पापयुक्तः=पापकरके भी युक्त मैं
न च=नहीं हूं
बन्धयुक्तः=बन्धकरके युक्त भी मैं
न=नहीं हूं
मोक्षयुक्तः=मोक्षकरके भी युक्त मैं
न=नहीं हूं
तु=पुनः
युक्तम्=युक्तपना और
अयुक्तम्=अयुक्तपना
मे=मेरेको
न च=नहीं
विभाति=भान होता है
स्वरूपनिर्वाणम्=मोक्षस्वरूप
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम मुक्तरूप हैं और जन्ममरणादि रोगसे भी हम रहित हैं इस वास्ते हमको यह भान नहीं होता है कि, हम धर्मकरके युक्त हैं या पापकरके युक्त हैं या बन्धकरके युक्त हैं या मोक्ष करके युक्त हैं क्योंकि जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें एक चेतनसे अतिरिक्त अन्य नहीं दीखता है ॥ ६ ॥

परापरं वा न च मे कदाचि-
न्मध्यस्थभावो हि न चारिमित्रम् ।
हिताहितं चापि कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

परापरम्, वा, न, च, मे, कदाचित्, मध्यस्थभावः, हि, न, च, अरिमित्रम्, हिताहितम्, च, अपि, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वा=अथवा
परापरम्=पर अपर भाव भी
मे=मेरा
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं है
मध्यस्थभावः=मध्यस्थभाव भी
हि=निश्चय करके
न च=हमारा नहीं है
अरिमित्रम्=शत्रुमित्रभी
न च=मेरा नहीं है
च=और
हिताहितम्=हित अहित भी
अपि=निश्चय करके
कथम्=कैसे मैं अपने
वदामि=कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे जीवन्मुक्त और
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कदाचित् भी पर अपर मेरेमें नहीं है क्योंकि मैं सर्वव्यापक हूँ और मध्यस्थभाव भी मेरेमें नहीं है क्योंकि मैं द्वैतसे रहित हूं और मैं अपना हितकारी अहितकारी भी नहीं कह सकता हूं जब कि मेरेसे विना दूसरा कोई भी नहीं है तब अहितकारी और हितकारी मैं कैसे कहूं और द्वैतके अभाव होनेसे मेरा कोई शत्रु और मित्र भी नहीं है क्योंकि मैं जन्मादिक रोगसे रहित मुक्तस्वरूप हूं ॥ ७ ॥

नोपासको नैवमुपास्यरूपं
　न चोपदेशो न च मे क्रिया च ।
संवित्स्वरूपं च कथं वदामि
　स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः।

न, उपासकः, न, एवम्, उपास्यरूपम्, न, च, उपदेशः, न, च, मे, क्रिया, च, संवित्स्वरूपम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

उपासकः=उपासक
न=मैं नहीं हूं
एवम्=इसी प्रकार
उपास्यरूपम्=उपास्यरूप भी
न=मैं नहीं हूं
मे=मेरा
उपदेशः=उपदेशभी
न च=नहीं है
च=और
क्रिया=क्रिया भी
न च=मेरेमें नहीं हैं
च=और
संवित्स्वरूपम्=ज्ञानस्वरूप भी
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरेमें उपासक और उपास्यभाव भी नहीं है और उपदेश और क्रिया भी मेरेमें नहीं बनती है क्योंकि एक व्यापक चेतनमें ये सब बातें नहीं हो सकती हैं व्यापकमें क्रिया भी नहीं होसकती है और मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा कथन भी मेरेमें नहीं बनता है क्योंकि ऐसा कथन भी भेदको लेकरके ही बनता है अभेदको लेकरके नहीं बनता है क्योंकि मैं संसाररोगसे रहित मुक्तस्वरूप हूँ ॥ ८ ॥

नो व्यापकं व्याप्यमिहास्ति किञ्चि-
न्न चालयं वापि निरालयं वा।
अशून्यशून्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

नो, व्यापकम्, व्याप्यम्, इह, अस्ति, किञ्चित्, न, च, आलयम्, वा, अपि, निरालयम्, वा, अशून्यशून्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मा ब्रह्ममें	न च=नहीं है
व्यापकम्=व्यापकभाव	अशून्य- शून्यम् =अशून्यपना तथा शून्यपना
व्याप्यम्=व्याप्यभाव	कथम्=किस प्रकारसे
किञ्चित्=किञ्चित् भी	वदामि=मैं कहूँ क्योंकि
न अस्ति=नहीं है	स्वरूपनि- र्वाणम् =मुक्तस्वरूप और
वा=अथवा	अनामयः=रोगसे रहित
आलयम्=आश्रयपना	अहम्=मैं हूँ
वा=अथवा	
निरालयम्=निराश्रयपना भी	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-इस आत्मा ब्रह्ममें व्याप्यव्यापकभाव भी किञ्चित् नहीं है, क्योंकि एक ही पूर्णमें व्याप्यव्यापकभाव भी किसी प्रकारसे नहीं बनता है और आश्रय निराश्रयभाव भी एकमें नहीं बनता है और शून्यका अभाव तथा शून्यता भी उसमें नहीं बनती है क्योंकि वह शून्यका भी साक्षी है सो मैं हूँ नित्ययुक्त और रोगसे रहित भी हूँ ॥९॥

न ग्राहको ग्राह्यकमेव किञ्चि-
न्न कारणं वा मम नैव कार्यम् ।
अचिन्त्यचिन्त्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

न, ग्राहकः, ग्राह्यकम्, एव, किञ्चित्, न, कारणम्, वा, [मम], न, एव, कार्यम्, अचिन्त्यचिन्त्यम्, च, कथम्, वदामि, [स्व]रूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

[ग्रा]हकः=ग्रहण करनेवाला
[एव]=निश्चयकरके
[मम]=हमारा
[कि]ञ्चित्=किञ्चित् भी
[न]=नहीं है
[वा]=अथवा
[मम]=मेरा
[एव]=निश्चयकरके
[का]रणम्=कारण और
[का]र्यम्=कार्य भी
न=नहीं है
ग्राह्यकम्=ग्रहण होनेवाला
अचिन्त्यचिन्त्यम्=जो कि मनकरके भी नहीं चिंतन किया जाता [है
कथम्=उनको किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप और
अनामयः=संसाररोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हमारे ग्राह्य और ग्राहकभी किञ्चित् भी नहीं है [औ]र मेरेमें कारण कार्यभाव भी किञ्चित् नहीं है क्योंकि यह सब भेदसे [ही] बनते हैं एक आत्मामें नहीं बनते हैं। वह आत्मा कैसा है जिसका स्वरूप [म]न वाणी करके भी चिन्तन नहीं किया जाता है उसका हम किसकरके कथन [क]रें? वह मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित है सोई मैं हूँ ॥ १० ॥

न भेदकं वापि न चैव भेद्यं
न वेदकं वा मम नैव वेद्यम् ।
गतागतं तात कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

न, भेदकम्, वा, अपि, न, च, एव, भेद्यम्, न, वेदकम्, वा, मम, न, एव, वेद्यम्, गतागतम्, तात, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके
भेदकम्=मैं भेदका करनेवाला भी
न=नहीं हूँ
वा=अथवा
एव=निश्चयकरके
भेद्यम्=भेदके योग्य भी
न च=मैं नहीं हूँ
मम=मेरेमें
वेदकम्=जाननापना
वा=अथवा
वेद्यम्=जानने योग्य भी
न=नहीं है
तात=हे तात !
गतागतम्=जो कि व्यतीत होगया है जोकि आनेवाला है उसको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—न तो कोई भेदक ही है अर्थात् भेद करनेवाला भी कोई नहीं है और न कोई पदार्थ भेद होनेके योग्य ही है और न कोई जाननेवाला ज्ञान ही है और न कोई जाननेके योग्य ही है हे तात ! वास्तवसे न तो कोई जाता ही है और न कोई आता ही है तव फिर हम कैसे जानेआनेको कहैं क्योंकि हमारेमें तो कुछ बनता ही नहीं है हम तो मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हैं ॥ ११ ॥

न चास्ति देहो न च मे विदेहो
बुद्धिर्मनो मे न हि चेन्द्रियाणि ।
रागो विरागश्च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, च, अस्ति, देहः, न, च, मे, विदेहः, बुद्धिः, मनः, न, हि, च, इन्द्रियाणि,रागः, विरागः, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

=हमारा
हः=शरीरभी
च अस्ति=नहीं है
=हम
देहः=देहसे रहित भी
च=नहीं है
=और
द्धिः=बुद्धि तथा
नः=मनभी
=और
इन्द्रियाणि=इन्द्रियभी
मे न च=मेरे नहीं हैं
रागः=पदार्थोंमें राग
च=और
विरागः=विराग
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम न तो शरीरके सहित हैं और न शरीरसे हित हैं क्योंकि आत्मा देहसे रहित तो है परन्तु संपूर्ण शरीर आत्मामें कल्पित है, इन कल्पित शरीरोंको लेकर रहित भी हम नहीं हैं और बुद्धि इन्द्रियादिक भी हमारे नहीं हैं क्योंकि यह भी सब कल्पित व फिर मैं रागविरागको कैसे कथन करूं। जब कि कोई उत्पत्ति- जड पदार्थ हमारा नहीं है तब हमारा किसीमें राग और किसीमें ग कहना भी नहीं बनता है किन्तु मैं मुक्तस्वरूप संसाररूपी रोगसे त हूँ ॥ १२ ॥

ऽखमात्रं न हि भिन्नमुच्चैरुल्लेखमात्रं न तिरोहितं वै ।
मासमंमित्र कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् १३

पदच्छेदः ।

उल्लेखमात्रम्, न, हि, भिन्नम्, उच्चैः, उल्लेखमात्रम्, न, तिरोहितम्, वै, समासमम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूप-निर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

उल्लेखमात्रम् = किञ्चिन्मात्र भी जीव ब्रह्मका	न वै=वह नहीं है
भिन्नम्=भेद	मित्र=हे मित्र !
न हि=नहीं है	समासमम्=सम असम
उच्चैः=बडे भारी	कथम्=कैसे
उल्लेखमात्रम्=उल्लेखमात्रकरके भी	वदामि=मैं तिसकी कहूँ क्योंकि
तिरोहितम्=छिपाहुआ	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह आत्मा केवल उल्लेखमात्र ही नहीं है किंतु उल्लेखमात्रसे भी वह भिन्न है अर्थात् उसका लिखनामात्र ही नहीं होता हैं किन्तु वह लिखनेमें भी नहीं आता है परन्तु ऊँचा लेख जो कि वेदका है उसीमें वह तिरोहित छिपाहुआ है इसीवास्ते हे मित्र ! उसको सम असम भी हम नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वह आश्चर्यरूप है सोई मैं हूँ ॥ १३ ॥

जितेन्द्रियोऽहं त्वजितेन्द्रियो वा
न संयमो मे नियमो न जातः ।
जयाजयौ मित्र कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

जितेन्द्रियः, अहम्, तु, अजितेन्द्रियः, वा, न, संयमः, मे, नियमः, न, जातः, जयाऽजयौ, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

पुनः=पुनः फिर
जितेन्द्रियः=जितेन्द्रिय
अहम्=मैं
वा=अथवा
अजितेन्द्रियः=अजितेन्द्रिय
न=नहीं हूँ
मे=मुझको
संयमः=संयम

नियमः=नियम
न जातः=नहीं उत्पन्न हुआ है
मित्र=हे मित्र !
जयाजयौ=जय अजयको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
निरामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं जितेन्द्रिय भी हूँ और अजितेन्द्रिय भी हूं। तात्पर्य यह है कि, इन्द्रियोंवाला इन्द्रियोंको जीतकरके जितेन्द्रिय कहाजाता है और इन्द्रियोंको न जीतकरके अजितेन्द्रिय भी कहाजाता है जिसके इन्द्रिय ही नहीं है वह अर्थसे ही जितेन्द्रिय अजितेन्द्रिय भी कहाजाता है क्योंकि इन्द्रियोंसे विना जितेन्द्रिय अजितेन्द्रिय व्यवहार ही नहीं होता है और संयम नियम व्यवहार भी नहीं होता है इसवास्ते स्वामीजी कहते हैं कि, मेरा संयम नियम भी नहीं हुआ है और जय अजयको भी मैं नहीं कह सकता हूँ क्योंकि यह भी इंद्रियोंके ही अधीन है किन्तु मैं मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हूँ १४

अमूर्तमूर्तिर्न च मे कदाचि-
दाद्यन्तमध्यं न च मे कदाचित्।
बलाबलं मित्र कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः।

अमूर्तमूर्तिः, न, च, मे, कदाचित्, आद्यन्तमध्यम्, न, च, मे, कदाचित्, बलाबलम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मैं	मित्र=हे मित्र
अमूर्तमूर्तिः=मूर्तिसेरहित मूर्तिवाला	बलाबलम्=बल और निर्बलताको
कदाचित्=कदाचित् भी	अहम्=मैं
न च=नहीं हूँ	कथम्=किस प्रकार
आद्यन्तमध्यम्=आदि और अन्त तथा मध्य भी	वदामि=कथन करूं क्योंकि
कदाचित्=कदाचित्	स्वरूपनिर्वाणम्=मैं स्वरूपसे ही मुक्तस्वरूप
मे=मेरे	अनामयोऽहम्=संसाररोगसे रहित हूँ
न च=नहीं है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं मूर्तिसे रहित और मूर्तिवाला भी नहीं हूँ क्योंकि ऐसा व्यवहार भी द्वैतको ही लेकरके होता है और न मेरा कोई आदि मध्य और अन्त ही है क्योंकि यह सब व्यवहार भी द्वैतको ही लेकरके होता है अद्वैतमें नहीं होता है । हे मित्र ! न तो मैं बली हूँ, और न मैं दुर्बल हूँ, दूसरेकी अपेक्षासे बली दुर्बल व्यवहार भी होता है एकमें नहीं होता है सो मैं मुक्तस्वरूप संसाररूपी रोगसे रहित हूँ ॥ १५ ॥

मृतामृतं वापि विषाविषं च
संजायते तात न मे कदाचित् ।
अशुद्धशुद्धं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

मृतामृतम्, वा, अपि, विषाविषम्, च, संजायते, तात, न, मे, कदाचित्, अशुद्धशुद्धम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

तात=हे तात !	न=नहीं होते हैं
मे=मेरेको	अशुद्धं शुद्धं च=अशुद्ध और शुद्ध
मृतामृतम्=मरना न मरना	कथम्=किस प्रकार
वा=अथवा	वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
अपि=निश्चय करके	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप
विषाविषं च=विष और अविष	अहम्=मैं
संजायते=उत्पन्न	अनामयः=रोगसे रहित हूं
कदाचित्=कदाचित् भी	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे तात ! मेरेमें मरना, जीना, विष, अमृत और शुद्ध अशुद्ध यह सब कदाचित् भी नहीं हैं क्योंकि मैं मुक्तरूप संसार रोगसे रहित हूँ ॥ १६ ॥

स्वप्नः प्रबोधो न च योगमुद्रा
नक्तं दिवा वापि न मे कदाचित् ।
अतुर्यतुर्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

स्वप्नः, प्रबोधः, न, च, योगमुद्रा, नक्तम्, दिवा, वा, अपि, न, मे, कदाचित्, अतुर्यतुर्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मेरेको	स्वप्नः=स्वप्न और
वा अपि=निश्चयकरके	प्रबोधः=जाग्रत्
कदाचित्=कदाचित् भी	न च=नहीं होते हैं

योगमुद्रा=योगकी मुद्रा और
नक्तम्=रात्रि और
दिवा=दिनभी नहीं होते हैं
अतुर्यतुर्यश्च=अतुरीया और तुरीयाको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप
अहम्=मैं
अनामयः=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—न तो मेरेमें जाग्रत् है, न स्वप्न है, न योगमुद्रा है, न दिन है, न रात्रि है, न तुरीया है, न अतुरीया है, क्योंकि मैं मुक्तरूप हूं ॥ १७ ॥

संविद्धि मां सर्वविसर्वमुक्तं
माया विमाया न च मे कदाचित् ।
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

संविद्धि, माम्, सर्वविसर्वमुक्तम्, माया, विमाया, न, च, मे, कदाचित्, सन्ध्यादिकम्, कर्म, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

माम्=मुझको
सर्वविसर्वमुक्तम्=सर्व और सर्वसे रहित
संविद्धि=सम्यक् जान तू
मे=मुझको
माया विमाया=माया विमाया
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं व्याप सकते हैं
सन्ध्यादिकम्=सन्ध्यादिक
कर्म=कर्म
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मुझको सम्पूर्ण प्रपंचके सहित और सम्पूर्ण प्रपंचसे रहित भले प्रकारसे तू जान और मायासे और मायाके कार्यसे भी रहित जान और सन्ध्याआदिक कर्मोंके करनेसे भी तू मेरेको रहित ही जान क्योंकि, मैं मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हूँ ॥ १८ ॥

संविद्धि मां सर्वसमाधियुक्तं
संविद्धि मां लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम्।
योगं वियोगं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः।

संविद्धि, माम्, सर्वसमाधियुक्तम्, संविद्धि, माम्, लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम्, योगम्, वियोगम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

माम्=मेरेको
सर्वसमाधियुक्तम्=संपूर्ण समाधिकरके युक्त
संविद्धि=सम्यक् तू जान
माम्=मेरेको
लक्ष्याविलक्ष्यमुक्तम्=लक्ष्य विलक्ष्य रहित
संविद्धि=सम्यक् जान तू
योगं च=योग और
वियोगम्=वियोगको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त और
अनामयः=संसाररोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—संपूर्ण समाधियोंकरके मैं युक्त हूं, क्योंकि उनका लय मेरेमें ही होता है और सम्पूर्ण इन्द्रियादिकोंके लक्ष्यभाव

और विगतलक्ष्यभावसे भी मैं रहित हूँ और योगकरके संयोग और वियोग इन दोनोंसे भी मैं रहित हूँ क्योंकि एकमें संयोग वियोग दोनों बनते नहीं हैं क्योंकि मैं मुक्तस्वरूप जन्ममरणरूपी रोगसे रहित हूँ ॥१९॥

मूर्खोऽपि नाहं न च पण्डितोऽहं
मौनं विमौनं न च मे कदाचित् ।
तर्कं वितर्कञ्च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

मूर्खः, अपि, न, अहम्, न, च, पण्डितः, अहम्, मौनम्, विमौनम्, न, च, मे, कदाचित्, तर्कम्, वितर्कम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके	मे=मुझमें
अहम्=मैं	कदाचित्=कदाचित् भी
मूर्खः=मूर्ख	न च=नहीं है
न=नहीं हूँ	तर्कं च=तर्क और
अहम्=मैं	वितर्कम्=वितर्कको
पण्डितः=पंडित भी	कथम्=किस प्रकार
न च=नहीं हूँ	वदामि=मैं कथन करूं
मौनम्=मौनपना	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप मैं
विमौनम्=विगतमौन	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं मूर्ख नहीं, म पंडित भी नहीं, मैं मितभाषी तथा मौनी भी नहीं हूँ । तर्क वितर्क कुछ भी मैं नहीं करता, मैं आत्माराम और रोगरहित ब्रह्म हूँ ॥ २० ॥

पिता च माता च कुलं न जाति-
जन्मादिमृत्युर्न च मे कदाचित् ।
स्नेहं विमोहं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

पिता, च, माता, च, कुलम्, न, जातिः, जन्मादिमृत्युः, न, च, मे, कदाचित्, स्नेहम्, विमोहम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

पिता च=पिता और
माता च=माता और
कुलम्=कुल और
जातिः=जाति भी
न=मेरे नहीं है
जन्मादि- मृत्युः } =जन्मादिक और मृत्यु भी
मे=मेरे
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं है
स्नेहं च=स्नेह और
विमोहम्=विमोहको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हमारा न कोई पिता है, न माता है, न कुल है, न जाति है, क्योंकि जिसके जन्मादिक होते हैं उसीके ही माता पिता और कुल तथा जाति भी होते हैं हमारे तो जन्मादिक और मृत्यु आदिक ही नहीं हैं इसी वास्ते न हमारा किसीके साथ स्नेह ही है और न विशेष करके मोहही है क्योंकि हम मुक्तस्वरूप जन्मादिरोगसे रहित हैं ॥ २१ ॥

अस्तं गतो नैव सदोदितोऽहं
तेजो वितेजो न च मे कदाचित् ।
सन्ध्यादिकं कर्म कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अस्तम्, गतः, न, एव, सदा, उदितः, अहम्, तेजः, वितेजः, न, च, मे, कदाचित्, सन्ध्यादिकम्, कर्म, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
अस्तं गतः=लयभावको
न=प्राप्त नहीं हूँ
एव=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल
उदितः=उदित हूँ
मे=हमारा
तेजः=तेज भी
वितेजः=तेजरहित भी
कदाचित्=कदाचित्
न च=नहीं है तव फिर
सन्ध्यादिकम्=सन्ध्यादिक
कर्म=कर्मको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं जो मेरे हैं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कभी भी लयभावको प्राप्त नहीं होता हूँ किन्तु सर्वकाल मेरा उदय ही बना रहता है और सामान्य तेज और विशेष तेज भी कदाचित् मेरेको प्रकाश नहीं कर सकते हैं तब फिर सन्ध्यादिक जो कि मन इन्द्रियादिकोंके कर्म हैं यह मेरे क्या सुधार कर सकते हैं ! किन्तु कुछ भी नहीं क्योंकि मैं बन्धनसे रहित नित्य मुक्तरूप हूँ ॥२२॥

असंशयं विद्धि निराकुलं मा-
मसंशयं विद्धि निरन्तरं माम्।
असंशयं विद्धि निरञ्जनं मां
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः।

असंशयम्, विद्धि, निराकुलम्, माम्, असंशयम्, विद्धि, निरन्तरम्, माम्, असंशयम्, विद्धि, निरञ्जनम्, माम्, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

माम्=मेरेको	विद्धि=जान तू
असंशयम्=संशयसे रहित	असंशयम्=संशयसे रहित
निराकुलम्=मूलकारणसे रहित	माम्=मेरेको
विद्धि=जान तू	निरञ्जनम्=मायामलसे रहित
माम्=मेरेको	विद्धि=जान तू
असंशयम्=संशयसे रहित	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
निरन्तरम्=एकरस	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वास्तवसे मेरा कोई कुल नहीं है अर्थात् उत्प-त्तिका मूल कारण मेरा कोई भी नहीं है और मैं एकरस ही सदैव रहता हूँ घटने बढनेसे भी मैं रहित मायामलसे रहित हूँ किन्तु मुक्तस्वरूप ज्योंका त्यों हूँ ॥ २३ ॥

ध्यानानि सर्वाणि परित्यजन्ति
शुभाशुभं कर्म परित्यजन्ति।
त्यागामृतं तात पिबन्ति धीराः
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

ध्यानानि, सर्वाणि, परित्यजन्ति, शुभाशुभम्, कर्म, परित्यजन्ति, त्यागामृतम्, तात, पिबन्ति, धीराः, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

धीराः=धीरपुरुष
सर्वाणि=संपूर्ण
ध्यानानि=ध्यानोंका
परित्यजन्ति=त्याग कर देते हैं
शुभाशुभम्=शुभ अशुभ
कर्म=कर्मकाभी
परित्यजन्ति=त्याग कर देते हैं
त्यागामृतं=त्यागरूपी अमृतको ही
तात=तात
पिबन्ति=पान करते हैं
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसेही मुक्त
अनामयोऽहम्=संसाररोगसे मैं रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो कि धीरपुरुष आत्मज्ञानी हैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं आत्मानन्दमें ही मग्न हैं वह सम्पूर्ण ध्यान और कर्मोंका त्याग ही करदेते हैं और त्यागरूपी अमृतको ही पान करते हैं और अपनेको मुक्तरूप मानते हैं ॥ २४ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र
च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र ।
समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचि० मवधूतगीतायां स्वामि-कार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे स्वरूपनि० नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति न, हि, न, हि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, न, हि, न, हि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

परम्=श्रेष्ठ	लक्षणं=लक्षण
अवधूतः=अवधूत	विन्दति=लभता है कुछ
समरसमग्नः=एकरस ब्रह्ममें मग्न हुआ हुआ	विन्दति=लभता है
तत्र=तिस ब्रह्ममें	नहि नहि=नहीं लभता है नहीं लभता है
नहि नहि=नहीं लभता है २	भावितपूतः=पवित्र हुआ २
यत्र=जिस ब्रह्ममें	तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
छन्दः=छन्द	प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जीवन्मुक्त श्रेष्ठ अवधूत एकरस आत्मा आनन्दमें ही जो कि मग्न है सो तिस आत्मामें कुछ भी नहीं देखता न लभता है । जिस चेतनमें छन्दरूप मन्त्रादिक भी वास्तवसे नहीं हैं क्योंकि वह आनन्दघन हैं इसवास्ते वह आत्मतत्त्वका ही कथन करता है क्योंकि आत्मासे भिन्न उसकी दृष्टिमें दूसरा कोई भी नहीं है ॥ २५ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

अवधूत उवाच ।

ओमिति गदितं गगनसमं त-
न्न परापरसारविचार इति ।

अविलासविलासनिराकरणं
कथमक्षरबिन्दुसमुच्चरणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ओम्, इति, गदितम्, गगनसमम्, तत्, न, परापरसारविचारः, इति, अविलासविलासनिराकरणम्, कथम्, अक्षरबिन्दुसमुच्चरणम् ॥

पदार्थः ।

ओम् इति=ओम् इस प्रकार
गदितम्=उच्चारण किया हुआ
गगनसमम्=आकाशके वह तुल्य है
परापरसारविचारः=पर अपर और सारका विचार
इति=इस प्रकार
तत् न=सो नहीं है
अविलासविलासनिराकरणम्=विलासका अभाव और विलासका निराकरणरूप है
अक्षरबिन्दुसमुच्चरणम्=अक्षरबिन्दुके सहितका उच्चारण
कथम्=किस प्रकार होगा

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ओम् इस प्रकार जो कि उच्चारण किया जाता है सो ओंकार ब्रह्मरूप है, क्योंकि ब्रह्मका वाचक है, वाच्यवाचकका किसी प्रकारसे भी भेद नहीं हो सकता है, इसीवास्ते गगनतुल्य व्यापक है। उसी ओंकारमें जगत्‌रूपी विलासके अभावका और विलासका निराकरण भी है अर्थात् ओंकाररूप ब्रह्ममें जगत् तीनों कालमें नहीं बनता है तब बिन्दुकरके युक्त अक्षरका भी उच्चारण किस करके बनेगा किन्तु कदापि भी नहीं बनेगा केवल अद्वैतही सिद्ध होता है ॥ १ ॥

इति तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः
प्रतिपादितमात्मनि तत्त्वमसि ।

त्वमुपाधिविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

इति, तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः, प्रतिपादितम्, आत्मनि, तत्त्वम्, असि, त्वम्, उपाधिविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इति=इस प्रकार
तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः=“तत्त्वमसि” प्रभृतिश्रुतियोंकरके
प्रतिपादितम्=प्रतिपादन किया जो है
आत्मनि=आत्मामें
तत्त्वमसि=सो तू है
त्वम्=तू ही
उपाधिविवर्जितसर्वसमम्=उपाधिसे रहित सर्वमें सम है
किमु=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=सर्वमें तू सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—तत्त्वमासि इत्यादि महावाक्योंने प्रतिपादन किया कि जीव ही ब्रह्म है और वास्तवसे उपाधिसे रहित सर्वमें एक ही आत्मा , जिन उपाधियोंने भेद कर रक्खा है सो सब अज्ञानकार्य है अज्ञानके नष्ट जानेपर उनका भी नाश होजाता है इसवास्ते भेदको लेकरके रुदन करना हीं बनता है ॥ २ ॥

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमं
बहिरन्तरवार्जितसर्वसमम्।
यदि चैकविवार्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमम्, बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम्, यदि, च, एकविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमम् = नीचे ऊपरसे रहित सबमें सम है

बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् = बाहर और भीतरसे रहित सबमें सम है

यदि च = यदि और

एकविवर्जितसर्वसमम् = एकसे रहित सबमें सम है

किमु = किसवास्ते

रोदिष = रुदन करता है ?

मानस = हे मन !

सर्वसमम् = सर्वमें सम

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—नीचे और ऊपरके विभागसे रहित वह चेतन सर्वमें सम है अर्थात् बराबर ही है, न्यून अधिक किसीमें भी वह नहीं है और बाहर और भीतरके व्यवहारसे भी वह रहित है और एकत्वभावसे भी रहित है किन्तु एकरस सर्वमें बराबर ही है तब फिर किसवास्ते रुदन करता है ॥ ३ ॥

न हि कल्पितकल्पविचार इति
न हि कारणकार्यविचार इति ।
पदसंधिविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कल्पितकल्पविचारः, इति, न, हि, कारणकार्य-विचारः, इति, पदसन्धिविवर्जितसर्वसमम्, किमु रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

कल्पितकल्प- विचारः इति =यह कल्पित है यह कल्प है इस प्रकार विचार भी

न हि=नहीं है

कारणकार्य- विचारःइति =यह कारण है यह कार्य है इस प्रकारका विचार भी

न हि=उसमें नहीं है

पदसन्धिविव- र्जितसर्वसमम् =पद और सांधिसे रहित वह सबमें सम ही है

किमु=किस वास्ते

रोदिषि=रुदन करता है तू

मानस=हे मन !

सर्वसमम्=वह तो सबमें समही है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते ह—उस चेतनब्रह्ममें यह वस्तु कल्पित है यह कल्प है इस प्रकारका विचार नहीं हो सकता है। यह कार्य है, यह कारण है इस प्रकारका विचार करना भी तिसमें नहीं बनता है और पद संधि व्यवहारसे भी रहित है क्योंकि वह द्वैतसे रहित है किन्तु सर्वत्र एकरस ही है तब फिर तुम किस वास्ते रुदन करते हो क्योंकि तुम्हारेसे भिन्न तो कोई भी दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥

नहि बोधविबोधसमाधिरिति
नहि देशविदेशसमाधिरिति।
नहि कालविकालसमाधिरिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

न, हि, बोधविबोधसमाधिः, इति, न, हि, देशविदेशसमाधिः, इति, कालविकालसमाधिः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

बोधविबोध-समाधिः } सामान्य विशेष ज्ञान-वाली समाधि भी
इति=इस प्रकारकी
न हि=उसमें नहीं है और फिर उसमें
देशविदेश-समाधिः } =सामान्य विशेषरूप करके देश विदेशकी समाधि भी
इति=इस प्रकार
न हि=उसमें नहीं है

कालविकालसमाधिः } =सामान्य विशेषरूप करके काल और विकालकी समाधि भी
इति=इस प्रकार
न हि=उसमें नहीं है
किम्=किस वास्ते
मानस=हे मन ! तू
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=वह सर्वत्र समरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह ब्रह्मचेतन द्वैतसे रहित एक ही है तब फिर यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह देश है, यह विदेश है, यह काल है, यह काल नहीं है, इस प्रकारका विचार भी उसमें नहीं बनता है । तब फिर जो जीव इस प्रकारके विचारके वास्ते रुदन करते हैं उनका रुदन करना व्यर्थ है ॥ ५ ॥

न हि कुम्भनभो न हि कुम्भ इति
न हि जीववपुर्न हि जीव इति ।
न हि कारणकार्यविभाग इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कुम्भनभः, न, हि, कुम्भः, इति, न, हि, जीववपुः, न, हि, जीवः, इति, न, हि, कारणकार्यविभागः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

कुम्भनभः=घटाकाश	न हि=नहीं है
न हि=नहीं है	कारणकार्य- विभागःइति =यह कार्य है यह कारण है इस प्रकार का विभाग भी
कुम्भः=घट भी	न हि=नहीं है
न हि=नहीं है	किमु=किसवास्ते
इति=इसी प्रकार	मानस=हे मन !
जीववपुः=जीवका शरीर भी	रोदिषि=रुदन करता है
न हि=नहीं है	सर्वसमम्=वह सर्वत्र समरूप है
जीवः=जीवभी	
इति=इस प्रकार	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस व्यापक आनन्दघन चेतनमें जब कि घट ही तीनों कालमें नहीं है तब घटाकाशका तो अर्थसे ही अभाव सिद्ध होता है इसी तरह वास्तवसे जीव ही उसमें नहीं है तब जीवका शरीर कैसे हो सकता है ? जब कि कार्यकारण व्यवहार ही उसमें नहीं है तब कार्यकारणके नाशके वास्ते रुदन करना कहां बनता है ? क्योंकि वह एकरस सर्वत्र सम है ॥ ६ ॥

इह सर्वनिरन्तरमोक्षपदं
लघुदीर्घविचारविहीन इति ।
न हि वर्तुलकोणविभाग इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्, लघुदीर्घविचारविहीनः, इति, न, हि, वर्तुलकोणविभागः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इह=इस प्रकरणमें (आत्मा)	इति=इसप्रकारका व्यवहार भी उसमें
सर्वनिरन्तर-मोक्षपदम् =सर्व एकरस मोक्ष-पद है और	न हि=नहीं है तब फिर
लघुदीर्घविचारविहीनः लघु दीर्घ विचारसे रहित	किमु=किसके लिये
इति=इस प्रकारका व्यवहार और	मानस=हे मन!
वर्तुलकोण-विभागः =गोलका और कोण-का विभागवाला	रोदिषि=तुम रुदन करतेहो
	सर्वसमम्=वह सर्वत्र सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—निराकार निरवयव मोक्षरूप आत्मामें लघु दीर्घका विचार और गोलाकार तथा त्रिकोणादि विभागका विचार भी नहीं बनता है क्योंकि वह इनसे रहित है ॥ ७ ॥

इह शून्यविशून्यविहीन इति
इह शुद्धविशुद्धविहीन इति।
इह सर्वविसर्वविहीन इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः।

इह, शून्यविशून्यविहीनः, इति, इह, शुद्धविशुद्धविहीनः, इति,इह,सर्वविसर्वविहीनः,इति, किमु, रोदिषि,मानस,सर्वसमम्॥

पदार्थः।

इह=इस आत्मामें	शुद्धविशुद्ध-विहीनः शुद्ध और विशेष शुद्धसे हीन
शून्यविशून्य-विहीनः शून्य और विशेष शून्यसे हीन	इति=इस प्रकारका व्यवहार और
इति=इस प्रकारका व्यवहार और	इह=इसी आत्मामें
इह=इस आत्मामें	

सर्वविसर्व-विहीनः =सर्व और विशेषकरके सर्वसे हीन	किमु=किसवास्ते फिर तुम
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी नहीं होता है	मानस=हे मन !
	रोदिषि=रुदन करते हो
	सर्वसमम्=वह सर्व सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि कोई ऐसी आशंका करे कि, यदि आत्मा निराकार निरवयव है तो शून्य ही सिद्ध होगा क्योंकि शून्य भी निराकार निरवयव ही होता है। इसका यह उत्तर है कि, उसमें शून्य अशून्य विचार नहीं बनता है क्योंकि वह शून्यका भी साक्षी है और एकरस व्यापक होनेसे बाहर और भीतर तथा संधिका भी विचार उसमें नहीं होसकता है और सर्वसे भिन्न अभिन्नका विचार भी उसमें नहीं होसकताहै, तब तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है ॥ ८ ॥

न हि भिन्नविभिन्नविचार इति
बहिरन्तरसन्धिविचार इति।
अरिमित्रविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

न, हि, भिन्नविभिन्नविचारः, इति, बहिः, अन्तरसन्धिविचारः, इति, अरिमित्रविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

भिन्नविभिन्नविचारः =भिन्न है या भिन्न नहीं है सो विचारभी	बहिः=वह बाहर है या
इति=इस प्रकारका	अन्तरसन्धिविचारः =या भीतरकी सन्धिमें विचार भी
न हि=नहीं होसकता है	इति=इस प्रकारका

न हि=नहीं होसकता है क्योंकि वह
अरिमित्रविवर्जितसर्वसमम्=शत्रुमित्र भी उससे रहित सर्वमें सम है
किमु=फिर किस वास्ते

रोदिषि=तू रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=तू सर्वमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस निर्गुण आत्मामें ऐसा विचार भी नहीं हो सकता है कि, वह जगत्से भिन्न है या अभिन्न है बाहर है या इसके भीतर है या इसकी सन्धिमें है क्योंकि वह सर्वत्र एकरस सम है तब ऐसा विचार कैसे हो सकता है कदापि नहीं, फिर वह शत्रु मित्रके भावसे भी रहित है क्योंकि उसमें शत्रु मित्र भाव भी नहीं बनसकता है तब फिर तुम्हारा रुदन भी व्यर्थ है ॥ ९ ॥

न हि शिष्यविशिष्यसरूप इति
न चराचरभेदविचार इति ।
इह सर्वनिरन्तरमोक्षपदं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, शिष्यविशिष्यसरूपः, इति, न, चराचरभेदविचारः, इति, इह, सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

शिष्यविशिष्यसरूपः=शिष्य और शिष्याभावसरूप भी
न हि=वह नहीं है
इति=इसी प्रकार
चराचरभेदविचारः=चर अचरके भेदका विचारभी
न=नहीं है

इह=इस प्रकरणमें [वह आत्मा]
सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्=सर्वका निरन्तर मोक्षरूपी पद है
किमु=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-उसमें शिष्यभाव और शिष्यसे रहित भाव अर्थात् विगतशिष्यभाव दोनों नहीं हैं और चर अचरके भेदके विचारसे भी वह रहित है अर्थात् चर अचर जगत्का उससे भेद है या अभेद ऐसा विचार भी उसमें नहीं बनता है क्योंकि यह जगत् सब वास्तवसे सत्य नहीं है किन्तु कल्पित है और सर्वका आश्रयभूत वह मोक्षरूप है, तव फिर जीव तू क्यों रुदन करता है ॥ १० ॥

ननु रूपविरूपविहीन इति
ननु भिन्नविभिन्नविहीन इति ।
ननु सर्गविसर्गविहीन इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

ननु, रूपविरूपविहीनः, इति, ननु, भिन्नविभिन्नविहीनः, इति, ननु, सर्गविसर्गविहीनः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चय करके
रूपविरूपविहीनः=वह रूपसे और विगतरूपसे भी रहित है
इति=इस प्रकार
ननु=निश्चयकरके
भिन्नविभिन्नविहीनः=भेदसे और विगत भेदसे भी वह रहितहै
इति=इस प्रकार
ननु=निश्चय करके
सर्गविसर्गविहीनः=उत्पत्ति और प्रलयसे भी वह रहित है
इति=इस प्रकार जानकर
किमु=किसवास्ते तू
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मारूपसे और रूपके अभावसे भी रहित है और भेदसे तथा भेदके अभावसे भी वह रहित है जगत्की उत्पत्ति और प्रलयसे भी वह रहित है क्योंकि वास्तवसे उसमें न तो जगत्की उत्पत्ति होती है और न प्रलय ही होता है, तब फिर तू किसवास्ते रुदन करता है क्योंकि वास्तवसे तू ही ब्रह्मरूप है ॥ ११ ॥

न गुणागुणपाशनिबन्ध इति
मृतजीवनकर्म करोति कथम् ।
इति शुद्धनिरञ्जनसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, गुणागुणपाशनिबन्धः, इति, मृतजीवनकर्म, करोति, कथम्, इति, शुद्धनिरञ्जनसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

गुणागुणपाशनिबन्धः=गुण और निर्गुणकी पाशकासंबन्ध उसको	कथम्=किस प्रकार हो सकता है
न=नहीं है	शुद्धनिरञ्जनसर्वसमम्=वह शुद्ध निरञ्जन सर्वमें सम है तब फिर
इति=इस प्रकार	किमु=किसवास्ते
मृतजीवनकर्म=मृतकके और जीवनके कर्मको	मानस=हे मन !
करोति इति=करता है वह	रोदिषि=तू रुदन करता है
	सर्वसमम्=वह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो आत्मा ब्रह्म शुद्ध है, मायामलसे रहित है निरञ्जन है उसमें सगुणपना और निर्गुणपना और मृतजीवनके कर्मोंका

करना यह सब कैसे बन सकता है किन्तु कदापि नहीं बनता है । फिर जिस आत्माकी प्राप्तिके वास्ते कैसे तुम रुदन करते हो वह तो सर्वमें सम है तुम्हारा अपने आप है ॥ १२ ॥

इह भावविभावविहीन इति
इह कामविकामविहीन इति ।
इह बोधतमं खलु मोक्षसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

इह, भावविभावविहीनः, इति, इह, कामविकामविहीनः, इति, इह, बोधतमम्, खलु, मोक्षसमम्, किमु, मानस, रोदिषि, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=यहां वह आत्मा
भावविभाव-विहीनः=भावअभावसे हीनहै
इति=इसी प्रकार
इह=यहां वह आत्मा
कामविकाम-विहीनः=काम और कामके अभावसे रहित है
इति=इसी प्रकार
इह=यहां वह आत्मा
बोधतमम्=ज्ञानस्वरूप है
खलु=निश्चय करके
मोक्षसमम्=मोक्षस्वरूप वह है उसके लिये
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=तू रुदन करता है
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे मन ! इस जगत्में साधारण असाधारण भाव तथा इच्छाओंसे आत्मा रहित है अर्थात् नानाप्रकारके संकल्प और विकल्पोंसे चित्त भ्रान्त रहता है यह बडा अज्ञान है, आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है यदि इस प्रकार विवेक बुद्धिका आश्रय करै तो मोक्षके तुल्य सुख मिले।

हे मन ! तुमको हानि, लाभ, सुख, दुःख सब कामोंमें समान रहना चाहिये, व्यर्थ दुःख कर क्यों रोते ॥ १३ ॥

इह तत्त्वनिरन्तरतत्त्वमिति
न हि संधिविसन्धिविहीन इति ।
यदि सर्वविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

इह, तत्त्वनिरन्तरतत्त्वम्, इति, न, हि, सन्धिविसन्धिविहीनः, इति, यदि, सर्वविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस ब्रह्म आत्मामें
तत्त्वनिरन्तरतत्त्वम्=यह तत्त्व है या निरन्तरही तत्त्व है
इति=इस प्रकारका व्यवहार
न हि=नहीं होता है और
संधिविसन्धिविहीनः=संधि और विसंधि के अभावसे हीन है
इति=इस प्रकारभी व्यवहार नहीं [होता है
यदि=जब कि वह
सर्वविवर्जितसर्वसमम्=सर्वसे रहित और सर्वमें सम है फिर
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=तू रुदन करता हैं
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इस आत्मामें तत्त्वोंका कभी २ सम्बन्ध होता है या सब तत्त्व उसमें रहते हैं ? इसमें किसीका मेल भी है या यह किसीका मेलवाला नहीं है जो शास्त्रोंसे यह सिद्ध होजाय कि यह सभी उपाधियोंसे रहित है, सब पदार्थोंमें एकही रूपसे रहनेवाला है तो हे मन ! सुखदुःख-रहित सदा एकरस आत्माके लिये क्यों रोता है ॥ १४ ॥

अनिकेतकुटी परिवारसमं
इह सङ्गविसङ्गविहीनपरम्।
इह बोधविबोधविहीनपरं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम्॥ १५॥

पदच्छेदः।

अनिकेतकुटी, परिवारसमम्, इह, सङ्गविसङ्गविहीनपरम्, इह, बोधविबोधविहीनपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम्॥

पदार्थः।

अनिकेतकुटी =अनियत वास कुटी होनी	इह=ब्रह्म
परिवारसमम् =परिवारके तुल्य सबको जानना	बोधविबोधविहीनपरम् =ज्ञान अज्ञानसे रहित श्रेष्ठ है
इह=यह ब्रह्म	किमु=किस वास्ते
सङ्गविसङ्गविहीनपरम् =संगविसंगसे रहित परम पवित्र	रोदिषि=तू रुदन करता है
	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=वह सब सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–निराश्रय होकर रहै, एकान्त झोपडीमें रहै। अथवा परिवारसे भरापूरा रहै सब समान है। थोडे साथमें रहे, अधिक समूहमें रहे अथवा एकान्तवास करे, थोडा बोध हो, अधिक ज्ञान हो अथवा ज्ञानशून्य हो आत्मा सदा एकाकार है, हे मन! उसके लिये तू क्यों रोता है॥१५॥

अविकारविकारमसत्यमिति
अविलक्षविलक्षमसत्यमिति।
यदि केवलमात्मनि सत्यमिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम्॥ १६॥

पदच्छेदः ।

अविकारविकारम्, असत्यम्, इति, अविलक्षविलक्षम्, असत्यम्, इति, यदि, केवलम्, आत्मनि, सत्यम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अविकार-विकारम् =विकारसे रहितका विकार यह जगत् है
इति=इसी वास्ते
असत्यम्=असद्रूप है
अविलक्ष-विलक्षम् =अलक्षका यह लक्ष है
इति=इसी वास्ते
असत्यम्=असत्य है
यदि=जब कि
केवलम्=केवल
आत्मनि=आत्माही
सत्यम्=सद्रूप है
इति=इसीवास्ते
किमु=किसवास्ते रुदन करता है ।
मानस=हे मन !
रोदिषि=तू रुदन करता है
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्माका कभी विकार नहीं होता आत्मासे यह नित्य और संसार हुआ जो मानते हैं यह ठीक नहीं क्योंकि आत्मा नित्य और संसार अनित्य है । जिसका कोई आकार नहीं उस आत्माका यह साकार जगत् हो नहीं सकता इससे यह अनित्य है । जब कि एक आत्माही सत्य है तो हे मन तू क्यों रोता है ॥ १६ ॥

इह सर्वसमं खलु जीव इति
इह सर्वनिरन्तरजीव इति ।
इह केवलनिश्चलजीव इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, सर्वसमम्, खलु, जीवः, इति, इह, सर्वनिरन्तरजीवः,

ति, इह, केवलनिश्चलजीवः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, र्वसमम् ॥

पदार्थः।

इह=इस संसारमें	इह=इस संसारमें
लु=निश्चयकरके	केवलनिश्चलजीवः=केवल निश्चल जीव ही है फिर
र्वसमम्=सर्वसे उत्तम	इति=इस प्रकार
जीवः=जीव है	किमु=किसवास्ते
ति=इस प्रकार	मानस=हे मन !
इह=इस संसारमें	रोदिषि=तुम रुदन करते हो
र्वनिरन्तजीवः=सर्वके निरन्तर जीव ही है	सर्वसमम्=यह सब सम है
ति=इस प्रकार	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि ऐसा समझते हो कि, संसारमें प्रत्यक्ष नाना कारके जीव देखनेमें आते हैं वे ही सब कुछ हैं उनसे और आत्मासे छ दोष नहीं है, तब भी कुछ दोष नहीं जीव उस परमात्माका ही श है, अविद्या आदि वासनाओंसे मुक्तजीव और परमात्मामें कुछ भेद हीं होता, ऐसा होनेपर भी हे मन ! तुम वृथा क्यों रोते हो ॥ १७ ॥

अविवेकविवेकमबोध इति
अविकल्पविकल्पमबोध इति।
यदि चैकनिरन्तरबोध इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः।

अविवेकविवेकम्, अबोधः, इति, अविकल्पविकल्पम्, अबोधः, ति, यदि, च, एकनिरन्तरबोधः, इति, किमु, रोदिषि, ानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अविवेक-विवेकम् = विवेकका अभाव और विवेक	यदि च=यदि च
अबोधः=अबोध ही है	एकनिरन्तरबोधः =एक निरन्तर बोध मात्र ही है
इति=इसी प्रकार	इति=इस प्रकार जान फिर
अविकल्प-विकल्पम् =विकल्पका अभाव और विकल्प	किमु=किसके वास्ते
	मानस=हे मन !
अबोधः=अबोध ही है	रोदिषि=तुम रुदन करते हो
इति=इसी प्रकार जानो	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ईश्वरका कभी विकार नहीं, जगत्को तो विकारी देखते हैं इससे यह जगत् असत्य है ईश्वर आंख आदि इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होता इससे यह मिथ्या है और यदि सत्य है तो वह एक आत्मामें ही है इससे हे मन ! तुम क्यों रोते हो ॥ १८ ॥

न हि मोक्षपदं न हि बन्धपदं
न हि पुण्यपदं न हि पापपदम् ।
न हि पूर्णपदं न हि रिक्तपदं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, मोक्षपदम्, न, हि, बन्धपदम्, न, हि, पुण्यपदम्, न, हि, पापपदम्, न, हि, पूर्णपदम्, न, हि, रिक्तपदम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

ोक्षपदम्=मोक्षपद	पूर्णपदम्=पूर्णपद भी
हि=नहीं है आर	न हि=नहीं है
न्धपदम्=बन्धपद भी	रिक्तपदम्=अपूर्णपद भी
हि=नहीं है	न हि=नहीं है
ुण्यपदम्=पुण्यपद भी	किमु=किसके वास्ते
हि=नहीं है	मानस=हे मन !
ापपदम्=पापपद भी	रोदिषि=तू रुदन करता है
हि=नहीं है और	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिसमें पहले बन्ध होता है वही पीछे मुक्त ी होता है आत्मामें पहले बन्ध ही नहीं है तब फिर पीछे मुक्त कहांसे ोवेगा जिसवास्ते बन्ध मोक्ष दोनों नहीं हैं इसी वास्ते पुण्य और पापभी ात्मामें नहीं है और यदि प्रथम न्यून होवे तब पीछे पूर्ण होवे सो ात्मामें यह दोनों भी नहीं हैं फिर तू किसवास्ते रुदन करता है ? वह ो सर्वत्र सर्वदा सम ही है ॥ १९ ॥

यदि वर्णविवर्णविहीनसमं
यदि कारणकार्यविहीनसमम् ।
यदि भेदविभेदविहीनसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

यदि, वर्णविवर्णविहीनसमम्, यदि, कारणकार्यविहीन- ममम्, यदि, भेदविभेदविहीनसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, र्वसमम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि आत्मा

वर्णविवर्णविहीनसमम्=वर्णभागसे और वर्णविभागके अभावसे रहित है और सम भी है

यदि=यदि वह

कारणकार्यविहीनसमम्=कारण और कार्यसे रहित और सम है

यदि=यदि वह आत्मा

भेदविभेदविहीनसमम्=भेदसे और भेदभावसे रहित है और सम है

किमु=किस वास्ते

रोदिषि=तुम रुदन करते हो

मानस=हे मन !

सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह आत्मा वर्णविभागसे रहित है अर्थात् तिस आत्मामें तीनों कालमें वर्णविभाग नहीं है क्योंकि एक आत्मा सब योनियोंमें जाता है और पशु आदिक योनियोंमें तो पूर्व योनिवाला वर्णविभाग नहीं होता है इसीसे सिद्ध होता है कि, वर्णविभाग आत्माका धर्म नहीं है और विवर्ण अर्थात् विशेष करके जो कि वर्णजाति है वह भी नहीं है अथवा वर्ण नाम रूपका भी है अर्थात् रूपसे भी वह रहित है और आत्मा न किसीका कारण है न कार्य है इस वास्ते कारणकार्यसे भी रहित है और भेद तथा भेदाभावसे भी रहित है क्योंकि वह एक ही है तब फिर हे मन! तिस आत्माके वास्ते तू क्यों रुदन करता है वह तो सर्वमें सम एकरस है॥२०॥

सर्वनिरन्तरसर्वचिते
इह केवलनिश्चलसर्वचिते ।
द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वनिरन्तरसर्वचिते, इह, केवलनिश्चलसर्वचिते, द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

र्वनिरन्तर-सर्वचिते=सर्वमें एकरस हो करके वह सबके चित्तोंमें रहता है

हह=इस संसारमें

वलनिश्च-लसर्वचिते=केवल निश्चल होकर सबमें रहता है

द्विपदादिविव-र्जितसर्वचिते=वह दो पाँवआदिकोंसे भी रहित होकर सबमें रहता है

किमु=किसवास्ते

रोदिषि=तू रुदन करता है

मानस=हे मन !

सर्वसमम्=वह तो सबमें सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे जीव ! तू क्यों अपने मनमें रुदन करता है. ह तेरा आत्मा तो सर्वत्र सम है, सबमें एकरस है, संपूर्णमें व्यापक है, निश्चल है, अर्थात् अचल है, दो पांव या चार पांव आदिकोंसे भी वह हित है सबके चित्तोंका वही साक्षी है ॥ २१ ॥

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतं अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम्। दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः।

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतम्, अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम्, दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

अतिसर्वनि-रन्तरसर्वगतं=वह चेतन अतिशय करके एकरस सर्वगतहै

अतिनिर्मल-निश्चलसर्वगतम्=अति निर्मल है निश्चलहै सर्वगतहै

दिनरात्रिविव-र्जितसर्वगतम्=दिन और रात्रिसे रहित हुआभी सर्वमें गत है व्यापक है

किमु=फिर तू किसवास्ते

मानस=हे मन !

रोदिषि=रुदन करता है

सर्वसमम्=यह सब सम हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, व्यापक, शुद्ध, क्रियारहित है, दिन, और रात्रिके व्यवहारोंसे भिन्न, आकाशके समान सर्वगत है। हे मंन ! तू ऐसे आत्माको न जानकर क्यों रोता है॥ २२॥

न हि बन्धविबन्धसमागमनं न हि योगवियोग-समागमनम्। न हि तर्कवितर्कसमागमनं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम्॥ २३॥

पदच्छेदः।

न, हि, बन्धविबन्धसमागमनम्, न, हि, योगवियोगसमागमनम्, न, हि, तर्कवितर्कसमागमनम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम्॥

पदार्थः।

बन्धविबन्धसमागमनम् = सामान्य और विशेष रूपसे भी बन्धका सम्यक्आगमन आत्मामें
न हि = नहीं है
योगवियोगसमागमनम् = संयोग और वियोगकी भी प्राप्ति उसमें
न = नहीं होती है
तर्कवितर्कसमागमनम् = तर्कवितर्ककी भी उसमें प्राप्ति
न हि = नहीं है
किमु = किसवास्ते
रोदिषि = रुदन करता है
मानस = हे मन !
सर्वसमम् = वह सबमें सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—तू क्यों रुदन करता है वह आत्मा तो तुम्हारा सबमेंसे सम है और सामान्यविशेषबन्धनोंसे भी वह रहित और जन्ममरण-रूपी तो सामान्य वंध है और स्त्रीपुत्रादिक सब यह विशेष बन्ध हैं अर्थात् बन्धनके कारण हैं इन दोनोंसे आत्मा रहित है जिसवास्ते तिसके किसी प्रकारका भी बन्ध नहीं है इसीवास्ते वह संयोगसे भी रहित है और तर्कवितर्ककी भी उसमें गम्य नहीं है अर्थात् वह तर्क करके भी नहीं जाना जाता है किन्तु केवल वेद शास्त्रसे ही वह जानाजाता है॥ २३॥

इह कालविकालनिराकरणमणुमात्रकृशानुनिराकरणम् । न हि केवलसत्यनिराकरणं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

इह, कालविकालनिराकरणम्, अणुमात्रकृशानुनिराकरणम्, न, हि, केवलसत्यनिराकरणम्, किमु, रोदिषिं, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=ब्रह्मात्मामें
कालविकालनिराकरणम्=सामान्य कालका और विशेषकालका निराकरण है
अणुमात्रकृशानुनिराकरणम्=अणुमात्र भी अग्निका निराकरण है
केवलसत्यनिराकरणम्=केवल सत्यका निराकरण है
न हि=नहीं है
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मतत्त्वमें काल और विकालका अर्थात् प्रवाहरूपी जो कि सामान्य काल है और घडी दिनरूपी जो विशेष काल है इनका निराकरण है अर्थात् आत्माको काल नहीं व्यापसकता है आर सूक्ष्म जो तेज है, वह भी तिसको प्रकाश नहीं करसकता है क्योंकि वह जड फिर उसमें संपूर्ण जगत्का तो निराकरण है परंतु केवल सत्यका निराकरण नहीं है क्योंकि वह सत्यरूप आप हैं ॥ २४ ॥

इह देहविदेहविहीन इति ननु स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम् । अभिधानविधानविहीनपरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

इह, देहविदेहविहीनः, इति, ननु, स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम्, अभिधानविधानविहीनपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस ब्रह्ममें	अभिधानविधानविहीनपरम्=कथन और कथनके अभावसे भी रहित
देहविदेहविहीनः=देहसे और विदेहसे रहित होना	किमु=किसवास्ते
इति=इस प्रकारका व्यवहारभी नहीं	मानस=हे मन !
ननु=निश्चय करके	रोदिषि=रुदन करता है
स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम्=स्वप्न और सुषुप्तिसे भी परमरहित है	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो कि यह पहले अज्ञानावस्थामें देहके सहित होताहै वही पीछे ज्ञानावस्थामें देहसे रहित भी होताहै सो निराकार व्यापक चेतनमें अज्ञान ही तीनों कालमें नहीं है तब सह विदेह होना कैसे बनता है किन्तु कदापि नहीं देहके अभावसे स्वप्न और सुषुप्तिके अर्थसे ही उसमें अभाव है तब फिर विधिनिषेधका भी अभाव है तब रुदन क्यों करतेहो ॥ २५ ॥

गगनोपमशुद्धविशालसममविसर्वविवर्जितसर्वसमम् । गतसाराविसारविकारसमं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

गगनोपमशुद्धविशालसमम्, अविसर्वविवर्जितसर्वसमम्, गतक्षाराविसाराविकारसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

गगनोपमशुद्धविशालसमम् = वह आत्मा गगनकी उपमावाला है, शुद्ध है विशाल है, विस्तारवाला है, सर्वत्र सम है
अविसर्वविवर्जितसर्वसमम् = विशेषकरके सर्वसे रहित नहीं है किन्तु सर्वमें सम है
गतसारविसारविकारसमम् = सार विसार और विकारसे रहित है और समभी है
किमु = किस वास्ते
मानस = हे मन !
रोदिषि = तू रुदन करता है
सर्वसमम् = यह सब सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मा गगनकी उपमावाला है और विशाल भी अर्थात् अतिविस्तारवाला और व्यापक भी है और एकरस सम है सम्पूर्ण मिथ्या प्रपञ्चसे भी रहित है फिर वह सार और सारके अभावसे और विकारसे भी रहित है तब फिर उसकी प्राप्तिके लिये जीवका रुदन करना भी व्यर्थ है ॥ २६ ॥

इह धर्मविधर्मविरागतरमिह वस्तुविवस्तुविरागतरम्। इह कामविकामविरागतरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः।

इह, धर्मविधर्मविरागतरम्, इह, वस्तुविवस्तुविरागतरम्, इह, कामविकामविरागतरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इस = इस संसारमें
धर्मविधर्मविरागतरम् = सामान्य धर्म विशेष धर्मसे विरागका होना उत्तम है
इह = इस संसारमें
वस्तुविवस्तुविरागतरम् = सामान्यवस्तु और विशेषवस्तुसेभी वैराग्यका होना ही श्रेष्ठ है।

इह=इस संसारमें

कामविकाम-विरागतरम्=सामान्य इच्छा और विशेष इच्छासे भी वैराग्यका होना ही श्रेष्ठ है

किमु=किसवास्ते

मानस=हे मन !

रोदिषि=रुदन करता है

सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–इस संसारमें दो प्रकारके धर्म ह, एक तो सामान्य-धर्म है, जो कि चारों वर्णोंमें तुल्य हैं, दूसरे विशेष धर्म हैं, जो कि चारों वर्णोंमें पृथक् २ हैं इन दोनों प्रकारके धर्मोंसे वैराग्य ही श्रेष्ठ है, और संसारमें जितने सामान्य विशेष वस्तु हैं अर्थात् सामान्य और विशेष भोग हैं उनसे ज्ञानवान्को अतिवैराग्य ही होता है और सामान्य विशेषरूपस जो पदार्थोंकी इच्छा है वह सब भी दुःखको ही उत्पन्न करनेवाली है उससे भी वैराग्य ही उत्तम है तब फिर हे अज्ञानजीव ! तू किसवास्ते रुदन करता है वैराग्यको क्यों नहीं प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

सुखदुःखविवर्जितसर्वसममिह शोकविशोकविहीनपरम् । गुरुशिष्यविवर्जितसत्त्वपरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

सुखदुःखविवर्जितसर्वसमम्, इह, शोकविशोकविहीनपरम्, गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ।

पदार्थः ।

सुखदुःखविवर्जितसर्वसमम्=सुख और दुःखसे रहित वह आत्मा सबमें तुल्य है

इह=इस आत्मामें

शोकविशोकविहीनपरम्=सामान्य विशेष-रूपसे शोक भी नहीं रहता है

गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरम्=गुरु और शिष्य व्यवहारसे वर्जित परमतत्त्व है

किमु=किस वास्ते

रोदिषि=रुदन करता है

मानस=हे मन !

सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--आत्मा सुख और दुःख दोनोंसे रहित है शोक और मोहसे हीन है गुरु और शिष्यभावसे हीन है, केवल तत्त्वज्ञान स्वरूप है ॥ २८ ॥

न किलांकुरसारविसार इति
न चलाचलसाम्यविसाम्यमिति ।
अविचारविचारविहीनमिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

न, किल, अंकुरसारविसारः, इति, न, चलाचलसाम्यविसाम्यम्, इति, अविचारविचारविहीनम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

किल=निश्चयकरके
अंकुरसारविसारः=अंकुरका सार और विगतसार
इति=इस प्रकारका व्यवहार उसमें
न=नहीं होता है
चलाचलसाम्यविसाम्यम्=चल अचल और समता तथा विषमता
इति=इस प्रकारका भी
न=व्यवहार उसमें नहीं होता है
अविचारविचारविहीनम्=विचारका अभाव और विचारसे भी रहित होना
इति=इस प्रकारका भी
न=व्यवहार उसमें नहीं है
किमु=फिर तू किसवास्ते
रोदिषि=रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--दो प्रकारके कर्म होते हैं एक सारसे सहित दूसरे सारसे रहित, जो कि जन्मके हेतु कर्म हैं अज्ञानी जीवोंके वह सारके सहित होते हैं दूसरे ज्ञानवान्के जो कि कर्म हैं वह सारसे रहित होनेसे जन्मका

हेतु नहीं है सो यह दोनों प्रकारके आत्मामें नहीं है, फिर जिस वास्ते आत्मा व्यापक है इसीवास्ते चल अचलसे भी वह रहित है और उसका मन भी जिस वास्ते नहीं है इसी वास्ते विचार और विचारके अभावसे भी वह रहित है फिर तू क्यों रुदन करता है ॥ २९ ॥

इह सारसमुच्चयसारमिति कथितं निजभावविभेद इति । विषये करणत्वमसत्यमिति किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

इह, सारसमुच्चयसारम्, इति, कथितम्, निजभावविभेदः, इति, विषये, करणत्वम्, असत्यम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मामें	करणत्वम्=जो कुछेक करना कथन किया है
सारसमुच्चयसारम्=सम्पूर्ण सारोंका भी सार है	असत्यम्=वह असत्य ही कथन किया जाता है
इति=इस प्रकार	इति=इस प्रकार
कथितम्=कथन किया है	किमु=किस वास्ते
निजभावविभेदः=अपने प्रेमसे ही विशेष कहा गया है	मानस=हे मन !
इति=इस प्रकार	रोदिषि=रुदन करते हो
विषये=पार्थिव विषयमें	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मामें सारोंका भी सार है यह अपने भावका ही उत्तर अंश है यदि विद्वान् सत्य विचार करने लगता है तो उपनिषद् आदि आत्मशास्त्रों करके उसका ऐसा संस्कार हो जाता है कि उसको सिद्धान्त ही मालूम पडने लगता है विषयवासना झूठी प्रतीत होती है जब यह दशा है तो तुम क्यों रोते हो ॥ ३० ॥

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो वियदादिरिदं मृगतोयसमम्। यदि चैकनिरन्तरसर्वसमं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः।

बहुधा, श्रुतयः, प्रवदन्ति, यतः, वियदादिः, इदम्, मृगतोयसमम्, यदि, च, एकनिरन्तरसवर्सममू, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

बहुधा=अनेक	यदि च=यदि च
श्रुतयः=श्रुतियां	एकनिरन्तर-सर्वसमम्=एक चेतन ही एकरस सर्वमें सम है
प्रवदन्ति=कथन करती हैं	किमु=किसवास्ते
यतः=जिस हेतुसे	मानस=हे मन !
इदम्=यह	रोदिषि=रुदन करता है
वियदादिः=आकाशादि प्रपञ्च सब	सर्वसमम्=यह सब सम है
मृगतोय-समम्=मृगतृष्णाके जलके तुल्य है	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—अनक श्रुतियाँ इस वार्ताको कथन करती हैं जितना कि आकाशादिक यह प्रपंच है सो यह सब मृगतृष्णाके तुल्य मिथ्या है अर्थात् अत्यन्त असत्य है और एकचेतन ही सर्वत्र सम है नित्य है तब फिर तुम किसवास्ते रुदन करतेहो ? रुदन करना तुम्हारा व्यर्थ है॥३१॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र
च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र।

समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ ३२ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे आत्मसंवित्त्युपदेशे समदृष्टिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः,लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

परम्=श्रेष्ठ उत्तम
अवधूतः=अवधूत
यत्र=जिस ब्रह्ममें
विंदति=कुछ लभता है
विंदति=लभता है
नाहि नाहि=नहीं लभता है २
छन्दः=छन्द
लक्षणम्=लक्षण
नाहि नाहि=नहीं लभताहै२क्योंकि वह
तत्र=तिस ब्रह्ममें
समरसमग्नः=एकरस ही मग्न रहताहै
भावितपूतः=अन्तःकरणसे वह पवित्र
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वका ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि शुद्ध अन्तःकरणवाला अवधूत है वह उस व्यापक चेतनमें क्या किसी वस्तुको प्राप्त करता है ? सो यह वार्ता नहीं है और छन्दरूपी कविताको भी नहीं प्राप्त करता है किन्तु केवल आत्मतत्त्वकोही कथन करता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अवधूत उवाच।

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति वयं
वियदादिरिदं मृगतोयसमम्।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिव-
मुपमेयमथो ह्युपमा च कथम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

बहुधा, श्रुतयः, प्रवदन्ति, वयम्, वियदादिः, इदम्, मृगतो-
समम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, उपमेयम्, अथो,
हि, उपमा, च, कथम् ॥

पदार्थः।

हुधा=अनेक
ुतयः=श्रुतियें
वदन्ति=कथन करती हैं
यम्=हम
दम्=यह जितना
यदादिः=आकाशादि प्रपंच है सो
गतोयसमम्=मृगतृष्णाके समान है
दि च=यदि

एकनिरन्तर-सर्वशिवम्=वह चेतन एक ही निरन्तर सर्वकल्याण-रूप है
अथो=अनन्तर
उपमेयम्=यह उपमेय है
हि च=निश्चय करके और
उपमा=उपमा है
कथम्=किस प्रकार यह होसकता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वेदकी अनेक ऋचायें स्वयं कहती हैं कि, यह
काश, वायु, आदि मृगतृष्णाके समान है जब कि एक, अविनाशी,
र्वगत, कल्याणस्वरूप ही है तो किसकी उपमा दीजाय और किसको
जाय ॥ १ ॥

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरं ननु कार्यविकार्यविहीनपरम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं यजनं च कथं तपनं च कथम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरम्, ननु, कार्यविकार्यविहीनपरम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, यजनम्, च, कथम्, तपनम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरम् = विशेषकरके विभाग और विभागाभावसे रहित है	यदि च = जब कि वह
ननु = निश्चयकरके	एकनिरन्तरसर्वशिवम् = एकरस सर्वमें कल्याणरूप है
कार्यविकार्यविहीनपरम् = कार्य और कार्यके अभावसे भी यह रहित है	यजनम् = पूजन
	कथम् = किस प्रकार होसकताहै
	तपनं च = और तप करना
	कथम् = कैसे होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन आत्मामें विभाग और अविभाग और कार्य तथा कार्याभाव यह सब नहीं है, क्योंकि वह एकरस सर्वमें व्यापक और कल्याणस्वरूप है तब फिर उसमें पूजन करना और तपस्या करना यह सब कैसे बनसकता है ? किन्तु कदापि नहीं बन सकता है ॥२॥

मन एव निरन्तरसर्वगतं ह्यविशालविशालविहीनपरम् । मन एव निरन्तरसर्वशिवं मनसापि कथं वचसा च कथम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, एव, निरन्तरसर्वगतम्, हि, अविशालविशालविही-

नपरम्, मनः, एव, निरन्तरसर्वशिवम्, मनसा, अपि, कथम्, वचसा, च, कथम् ॥

पदार्थः।

एव=निश्चयकरके
मनः=मन ही
निरन्तर-सर्वगतम्=निरन्तर सर्वगत है
हि=निश्चयकरके
अविशालविशालविहीनपरम्=विस्तारके अभाव और विस्तारसे रहित है
मन एव=मन ही
निरन्तरसर्वशिवम्=निरन्तर सर्वरूप कल्याणरूप है
मनसा=मन करके
अपि=निश्चय करके
कथम्=कैसे जाना जाय
वचसा च=और वाणी करके
कथम्=कैसे कहा जाय

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मनका ही रचाहुआ यह संसार है इसी वास्ते मन ही सर्वगत है और विस्तार और विस्तारके अभाववाला भी मनही है और मन ही एकरस कल्याणरूप भी है, क्योंकि मनके शान्त हो जानेसे यह जगत् भी सब शान्त ही हो जाता है वह ब्रह्म चेतन मन करके कैसे जाना जाय और वाणी करके कैसे कहा जाय, क्योंकि वह मन वाणीका विषय नहीं है ॥ ३ ॥

दिनरात्रिविभेदनिराकरणमुदितानुदितस्य निराकरणम्। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं रविचन्द्रमसौ ज्वलनश्च कथम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम्, उदितानुदितस्य, निराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, रविचन्द्रमसौ, ज्वलनः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम् =दिन और रात्रिके भेदका निराकरण	एकनिरन्तरसर्वशिवम् =एक निरन्तर सर्वत्र कल्याणरूप है
उदितानुदितस्य निराकरणम् =उदित और अनुदितका निराकरण करना	रविचन्द्रमसौ च=सूर्य चन्द्रमा और
	ज्वलनः=अग्नि
यदि च=यदि च	कथम्=यह कैसे सिद्ध हो सकते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनमें दिन और रात्रिका भेद भी नहीं है, जब कि दिन और रात्रिही उसमें नहीं है तब दिन और रात्रिका भेद कैसे हो सकता है और दिन रात्रि सूर्यादिकके उदय होनेसे और अनुदय होनेसे होते हैं, सो उदय अनुदय भी उसमें नहीं हैं, क्योंकि यदि एक चेतन सर्वत्र कल्याण-स्वरूप विद्यमान है तब सूर्य चन्द्रमा और अग्नि भी उसमें सिद्ध नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

गतकामविकामविभेद इति गतचेष्टविचेष्टविभेद इति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं बहिरन्तरभिन्न-मतिश्च कथम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

गतकामविकामविभेदः, इति, गतचेष्टविचेष्टविभेदः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, बहिः, अन्तरभिन्नमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

गतकामविकामविभेदः =इच्छा और इच्छाके अभावका भी भेद	यदि च=यदि च वह
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी उसमें नहीं है	एकनिरन्तरसर्वशिवम् =एक निरन्तर सर्वगत है कल्याणरूप है
गतचेष्टविचेष्टविभेदः =चेष्टा और चेष्टाके अभावकाभी भेद	बहिरंतरभिन्नमतिः =तब फिर वह बाहर भीतर भिन्न है ऐसी
इति=ऐसा भी नहीं है	च=बुद्धि और
	कथम्=कैसे बन सकती है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जब कि सकामता और निष्कामताका भेद उसमें नहीं है और चेष्टा तथा चेष्टाके अभावकाभी भेद उसमें नहीं है क्योंकि वह एकरस कल्याणरूप व्यापक है तब फिर वाहर और भीतर भी नहीं उसमें बनता है क्योंकि वह आनन्दघन है ॥ ५ ॥

यदि सारविसारविहीन इति
यदि शून्यविशून्यविहीन इति ।
यदिचैकनिरन्तरसर्वशिवं
प्रथमं च कथं चरमं च कथम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः।

यदि, सारविसारविहीनः इति, यदि, शून्यविशून्यविहीनः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, प्रथमम्, च, कथम्, चरमम्, च, कथम् ॥

पदार्थः।

यदि=यदि वह ब्रह्म
सारविसार विहीनः=सार और विसार वस्तुसे रहित है
इति=इस प्रकार वेद कहता है
यदि=वह चेतन
शून्यविशून्य- विहीनः=शून्यसे और शून्यके अभावसे भी रहित है
इति=इस प्रकार शास्त्र कहता है
एकनिरन्तर सर्वशिवम्=किन्तु वह एक ही निरन्तर सर्वरूप है कल्याणरूप है
प्रथमम्=तब फिर आदि
कथम्=उसमें कैसे
च=और
चरमम्=अन्त उसमें
कथम्=कैसे हो सकते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जब कि वह चेतन ब्रह्म यह सार है यह असार है इस व्यवहारसे रहित है और शून्य तथा शून्यके अभावके व्यवहारसेभी रहित

इस प्रकार वेद और शास्त्रसे पुकारकरके कहता है, किन्तु वह एक है, एक-रस है कल्याणरूप है जब कि वह ऐसा है तब फिर उसमें यह प्रथम है अर्थात् आदि है यह चरम है अर्थात् अन्त है यह व्यवहार कैसे होसकता है किन्तु कदापि भी नहीं ॥ ६ ॥

यदि भेदविभेदनिराकरणं
यदि वेदकवेद्यनिराकरणम् ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
तृतीयं च कथं तुरीयं च कथम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, भेदविभेदनिराकरणम्, यदि, वेदकवेद्यनिराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, तृतीयम्, च, कथम्, तुरीयम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि वह चेतन
भेदविभेदनिराकरणम्=सामान्य विशेष भेदसे रहित है
यदि=जब कि वह
वेदकवेद्यनिराकरणम्=ज्ञाता ज्ञेयके व्यवहारसे भी रहित
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=वह एक है एकरस सर्वत्र पूर्ण और कल्याण रूप है तब
तृतीयं च=तीसरा
कथम्=कैसे और
तुरीयं च=चतुर्थ
कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि उस चेतन आत्मामें किसी प्रकारका भी भेद नहीं बनता है और ज्ञाताज्ञेयका व्यवहार भी उसमें नहीं बनता है, क्योंकि वह द्वैतसे रहित एक ही सर्वत्र एकरस पूर्ण है तब फिर उसमें तृतीय अवस्था और चतुर्थ अवस्था कैसे बनती है किन्तु कदापि नहीं बनती है ॥ ७ ॥

गदितागदितं न हि सत्यमिति विदिताविदितं न हि सत्यमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि कथम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

गदितागदितम्, न, हि, सत्यम्, इति, विदिताविदितम्, नहि, सत्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि, कथम् ॥

पदार्थः ।

गदितागदितम्=कथन किया और कथन न किया दोनों
सत्यम्=सद्रूप
न हि=नहीं है
इति=इस प्रकार कहा है
विदिताविदितम्=विदित और अविदित भी
सत्यम्=सत्य
न हि=नहीं है
यदि च=यदि च वह चेतन
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=निरन्तर सबमें एक है कल्याणरूपहै तब
विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि=यह विषय है, इंद्रिय है, बुद्धि है मन है यह सब
कथम्=किस प्रकार होसकते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो गदितागदित है अर्थात् कथन कियागया है और कथन किया जाता है इस प्रकारका व्यवहार भी सत्य नहीं है और जो कि ज्ञात हुआ है और ज्ञात नहीं ऐसा व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि, वह चेतन एक है एकमें इस तरहका व्यवहार नहीं बनता है और फिर विषय इन्द्रिय तथा बुद्धि और मन उसमें कैसे बनसकते हैं किन्तु किसी तरहसे भी नहीं बनसकते हैं ॥ ८ ॥

गगनं पवनो न हि सत्यमिति धरणी दहनो नहि सत्यमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं जलदश्च कथं सलिलं च कथम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

गगनम्, पवनः, न, हि, सत्यम्, इति, धरणी, दहनः, न, हि, सत्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, जलदः, च, कथम्, सलिलम्, च, कथम्, ॥

पदार्थः ।

गगनम्=आकाश और	यदि च=यदि वह
पवनः=वायु यह दोनों	एकनिरन्तर- सर्वशिवम् } =एकही निरन्तर सर्व व्यापक कल्याणरूप है तब फि
सत्यम्=सत्य	
न हि=नहीं हैं	
इति=इसी प्रकार	च=और
धरणी=पृथिवी	जलदः=बादल
दहनः=अग्नि यह भी	कथम्=किस प्रकार
सत्यम्=सत्य	च=और
न हि=नहीं हैं	सलिलम्=जल
इति=इसीतरह	कथम्=किसप्रकार सत्य होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आकाश, वायु, पृथिवी, अग्नि यह जो संसारमें कहे जाते हैं यह कुछ नहीं हैं, जब एक अविनाशी सदा कल्याणरूप ब्रह्म ही है तो मेघ कहां और जल कहां ॥ ९ ॥

यदि कल्पितलोकनिराकरणं यदि कल्पितदेवनिराकरणम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं गुणदोषविचारमतिश्च कथम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

यदि, कल्पितलोकनिराकरणम्, यदि, कल्पितदेवनिराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, गुणदोषविचारमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि उसमें

कल्पितलोकनिराकरणम् =कल्पित लोकका वेदवाक्योंकरके दूरी करण होता है

यदि=फिर जब कि

कल्पितदेवनिराकरणम् =कल्पित देवताका भी उसमें दूरीकरण होता है

यदि च=जब कि वह चेतन

एकनिरन्तरसर्वशिवम् =एक है निरन्तर सर्वमें व्यापक कल्याणरूप है

च=तब फिर और

गुणदोषविचारमतिः =गुण और दोषोंके विचारकी बुद्धि

कथम्=कैसे होसकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो कि पृथिवी, स्वर्ग, पाताल आदि लोकोंका निषेध है अर्थात् व्यवहारदशामें यह लोक माने गये हैं परमार्थमें कुछ नहीं, जब कि इन्द्र, वरुण, कुबेर आदिक देवता कल्पनामात्रके हैं और जब कि एक, नित्य कल्याणस्वरूप ब्रह्म ही है तो इसमें ये दोष हैं इसके विचारकी बुद्धिही नहीं होसकती है ॥ १० ॥

मरणामरणं हि निराकरणं करणाकरणं हि निराकरणम् । यदि चैकनिरंतरसर्वशिवं गमनागमनं हि कथं वदति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

मरणामरणम्, हि, निराकरणम्, करणाकरणम्, हि, निराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, गमनागमनम्, हि, कथम्, वदति ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चय करके

मरणामरणम्=मरण अमरणका भी उसमें

निराकरणम्=दूरी करण है

करणाकरणम्=करण अकरणकाभी

हि=निश्चयकरके

निराकरणम्=उसमें दूरीकरण है
यदि च=जब कि
एकनिरन्तर-सर्वशिवम् } =वह एक है और सर्वत्र पूर्ण है कल्याण-रूप है तब
गमनागमनम्=गमन अगमन भी
हि=निश्चयकरके
कथम्=किस प्रकार
वदति=कथन करना बनता है किन्तु नहीं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि उस आत्माके जन्ममरण नहीं होते और उसका कुछ कर्तव्य भी नहीं और अकर्तव्य भी नहीं है जब कि वह अद्वितीय, नित्य, सर्वव्यापक शिव है तब उसके जन्म मृत्यु किस प्रकार होसकते हैं ॥११॥

प्रकृतिः पुरुषो न हि भेद इति न हि कारणकार्यविभेद इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं पुरुषापुरुषं च कथं वदति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

प्रकृतिः, पुरुषः, न, हि, भेदः, इति, न, हि, कारणकार्यविभेदः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, पुरुषापुरुषम्, च, कथम्, वदति ॥

पदार्थः ।

प्रकृतिः=प्रकृति है
पुरुषः=पुरुष है
इति=इस प्रकारका
भेदः=वास्तव भेद भी
न हि=नहीं है और
कारणकार्यविभेदः } =कारण कार्यका भेदभी
इति=इस तरहका
न हि=नहीं है
यदि च=जब कि वह
एकनिरन्तरसर्वशिवम् } =एकही एकरस सर्वरूप कल्याण स्वरूप ह तब फिर
पुरुषापुरुषम् } =यह पुरुष है यह पुरुष नहीं है
च=और
कथम्=किस प्रकार
वदति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—प्रकृति और पुरुषमें कुछ भेद नहीं क्योंकि कारण और कार्यका कुछ भी भेद नहीं होता जब कि एक, नित्य, व्यापक, कल्याण-स्वरूप ब्रह्म ही है तो पुरुष और प्रकृतिका भेद क्यों कहते हो ॥ १२ ॥

तृतीयं न हि दुःखसमागमनं न गुणाद्द्वितीयस्य समागमनम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं स्थविरश्च युवा शिशुश्च च कथम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

तृतीयम्, न, हि, दुःखसमागमनम्, न, गुणात्, द्वितीयस्य, समागमनम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, स्थविरः, च, युवा, च, शिशुः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

तृतीयम्=तीसरा	यदि च=यदि च
दुःखसमागमनम्=दुःखका सम्यक् आगमनभी	एकनिरन्तरसर्वशिवम्=सर्वरूप और कल्याणरूप एकही निरन्तर है
न हि=नहीं है	स्थविरः च=बुढापा कैसे
गुणात्=गुण	युवा च=और युवा और
द्वितीयस्य=दूसरेका	शिशुश्च=शिशु अवस्था
समागमनम्=समागम	कथम्=किस प्रकार
न=नहीं है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—तीसरा और कोई भी दुःख नहीं है और अन्य दुःखका अच्छी तरहका आगमन भी होता नहीं है, एक गुणसे दूसरेका समागम नहीं होता है और यदि सर्व प्रपञ्चरूप, कल्पनारूप और निरन्तर है और जिसकी बाल्यावस्था, तारुण्यावस्था, वृद्धावस्था भी नहीं होती है ऐसा ब्रह्म-स्वरूप मैं हूँ ॥ १३ ॥

ननु आश्रमवर्णविहीनपरं ननु कारणकर्तृविहीन-परम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविनष्टविनष्ट-मतिश्च कथम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

ननु, आश्रमवर्णविहीनपरम्, ननु, कारणकर्तृविहीन-परम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनष्टविनष्टमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चयकरके	यदि च=यदि च
आश्रमवर्ण-विहीनपरम् =आश्रम और वर्णसे रहित परम श्रेष्ठ है	एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =वह एक है सर्वरूप कल्याणरूपभी है तव
ननु=निश्चयकरके	अविनष्टवि-नष्टमतिःच =नाशसे रहित और नाशवाली बुद्धि
कारणकर्तृ-विहीनपरम् =कारणकर्तृसे भी रहित है	कथम्=कैसे है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्माका कोई आश्रम या वर्ण नहीं है तथा कारण और कर्त्ताका भावभी नहीं है । जब कि आत्मा एक, नित्य, सर्वव्यापक और कल्याणस्वरूप है तो नाश न होनेवाली या नाश होनेवाली बुद्धि उसके विषयमें किस प्रकारसे हो सकती है ॥ १४ ॥

ग्रसिताग्रसितं च वितथ्यमिति जनिताजनितं च वितथ्यमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविना-शिविनाशि कथं हि भवेत् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

ग्रसिताग्रसितम्, च, वितथ्यम्, इति, जनिताजनितम्,

च, वितथ्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अवि-
नाशिविनाशि, कथम्, हि, भवेत् ॥

पदार्थः ।

ग्रसिता- ग्रसितं च =ग्रसनेवाला और ग्रसा हुआ दोनों	इति=इस प्रकार
वितथ्यम्=मिथ्या है	यदि च=यदि च
इति=इसी प्रकार	एकनिरन्त- रसर्वशिवम् =एक चेतनही सर्व रूप कल्याणरूप है
जनिताज- नितम् च =उत्पन्न करनेवाला और उत्पन्न हुआ	अविनाशि- विनाशि =नाशसे रहित नाश-वाला
वितथ्यम्=यह भी मिथ्या है	कथं भवेत्=कैसे होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह चेतन ब्रह्म एक ही निरन्तर सर्वरूप और कल्याणरूप है तब फिर यह ग्रसनेवाला है और यह ग्रसाजाता है यह व्यवहार नहीं बनता है और इसी तरह यह उत्पन्न करनेवाला है, यह उत्पन्न होता है यह विनाशी है यह नाशसे रहित है. यह संपूर्ण व्यवहार मिथ्या ही सिद्ध होते हैं ॥ १५ ॥

पुरुषापुरुषस्य विनष्टमिति वनितावनितस्य
विनष्टमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमवि-
नोदविनोदमतिश्च कथम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषापुरुषस्य, विनष्टम्, इति, वनितावनितस्य, विनष्टम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनोदविनोदमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

पुरुषापुरुषस्य=पुरुष और अपुरुषका व्यवहार	अविनोदविनोदमतिः=शोक और हर्षबुद्धि उसमें
विनष्टम्=उसमें नष्ट है	कथम्=कैसे होसकता है
इति=इसी प्रकार	यदि च=यदि च
वनितावनितस्य=स्त्री और नपुंसक व्यवहार भी	एकनिरन्तरसर्वशिवम्=वह चेतन एक है निरन्तर कल्याणस्वरूप है
विनष्टम्=विनष्ट है	
इति=इसी प्रकार	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मामें मनुष्य और मनुष्यका अभाव होना स्त्री होना या स्त्री न होना यह व्यवहार नहीं होसकता जब कि नित्य सर्व व्यापक, कल्याणस्वरूप ब्रह्म एक है तो क्रीडा न करना या क्रीडा करनेकी बुद्धि किस प्रकार होसकती है ॥ १६ ॥

यदि मोहविषादविहीनपरो यदि संशयशोकविहीनपरः । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमहमेति ममेति कथं च पुनः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, मोहविषादविहीनपरः, यदि, संशयशोकविहीनपरः, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अहम्, आ, इति, मम, इति, कथम्, च, पुनः ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि वह चेतन	यदि=जब कि वह
मोहविषादविहीनपरः=मोह और विषादसे रहित और श्रेष्ठ है और	संशयशोकाविहीनपरः=संशय और शोकसे रहित है
	यदि च=जब कि वह

एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =एकही निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप भी है तब फिर
अहम्=मैं हूँ
आ=सब तरफमे
इति=इस प्रकार
मम इति=मेरा है इस प्रकार
कथं च पुनः=फिर कैसे व्यवहार होसकता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि ब्रह्म अज्ञान और कष्टसे रहित है, और सन्देह तथा शोकसे रहित है, सबसे परे है, और एक है, नित्य है, सर्व व्यापक है तो मैं और मेरी ऐसी बुद्धि किस प्रकार होसकती है॥ १७॥

ननु धर्मविधर्मविनाश इति ननु बन्धविबन्धविनाश इति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमिह दुःखविदुःखमतिश्च कथम्॥ १८॥

पदच्छेदः।

ननु धर्मविधर्मविनाशः, इति, ननु, बन्धविबन्धविनाशः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, इह, दुःखविदुःखमतिः, च, कथम्॥

पदार्थः।

धर्मविधर्मविनाशः =धर्म और विरुद्ध धर्म दोनोंका नाश
इति=इस प्रकारका व्यवहार और
बन्धविबन्धविनाशः =सामान्य विशेष बन्धका नाश
इति=ऐसा व्यवहार
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम् =वह एक निरन्तर सर्व रूप कल्याणस्वरूप है
च=और तब
इह=इस चेतनमें
दुःखविदुःखमतिः =दुःख और विदुःखमति
कथम्=कैसे बनसकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि आत्मामें सामान्य तथा विशेष धर्मका नाश है, और साधारण तथा असाधारण बन्धका अभाव है अर्थात् धर्म हो या अधर्म, दोनों ही संसारमें बन्धन करनेवाले हैं, यदि वेदादिविहित कर्म करके धर्मका सञ्चय किया जायगा तो उसका फल स्वर्गमें नानाप्रकारका सुखभोग होगा और यदि पापकर्म किये जावेंगे तो नरक, रोग, शोक आदि त्रिविध तापोंके वशमें होकर क्लेश सहने पडेंगे इससे ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें "शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्" के अनुसार आत्मा सदा निष्क्रिय, निर्गुण है देहसे गुणोंके अनुसार जो कर्म होते हैं उनका आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आत्मा एक नित्य,सर्वव्यापक, कल्याणस्वरूप है, इसलिये आत्मामें दुःखी सुखीकी बुद्धि किसी प्रकार नहीं होसकती ॥१८॥

न हि याज्ञिकयज्ञविभाग इति न हुताशनवस्तुविभाग इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं वद कर्मफलानि भवन्ति कथम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, याज्ञिकयज्ञविभागः, इति, न, हुताशनवस्तुविभागः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, वद, कर्मफलानि, भवन्ति, कथम् ॥

पदार्थः ।

याज्ञिकयज्ञविभागः=यज्ञमें होनेवाले कार्यका यज्ञके साथ विभाग

इति न=भिन्न २ नहीं है

हुताशनवस्तुविभागः=अग्नि और चरुकाभी विभाग

इति न=भिन्नताकरके नहीं है

यदि च=यदि च

एकनिरन्तरसर्वशिवम्=वह एक निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप सत्य है तब फिर

कर्मफलानि=कर्मोंके फल

वद=कहो

कथम्=किस प्रकार

भवन्ति=होते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--यदि च यज्ञमें होनेवाले कर्मका यज्ञके साथ विभाग नहीं है और अग्निमें हवन करी हुई वस्तुका अग्निके साथ भी विभाग नहीं रहता है । इसी तरह एक निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप चेतनका भी किसीके साथ विभाग नहीं है क्योंकि चेतनमें सर्ववस्तु कल्पित हैं तव फिर कर्म और कर्मके फलोंका भी विभाग कैसे होसकता है किन्तु कदापि नहीं होसकता है ॥ १९ ॥

ननु शोकविशोकविमुक्त इति ननु दर्पविदर्पविमुक्त इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ननु रागविरागमतिश्च कथम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

ननु, शोकविशोकविमुक्तः, इति, ननु, दर्पविदर्पविमुक्तः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, ननु, रागविरागमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चयकरके वह	यदि च=जब कि वह
शोकविशोकविमुक्तः=शोक और विशोकसे रहित है	एकनिरन्तरसर्वशिवम्=एक सर्वरूप और शिवरूप निरन्तर है
इति=इस प्रकार	ननु=निश्चय करके
ननु=निश्चयकरके	रागविरागमतिः=राग विरागवाली बुद्धि फिर
दर्पविदर्पविमुक्तः=दर्पविदर्पसे भी वह रहित है	च=और
इति=इस प्रकार	कथम्=किसप्रकार होसकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–वह चेतन आत्मा साधारणशोकसे और असाधारण शोकसे भी रहित है इसीप्रकार साधारण अहंकारसे और असाधारण अहं-

कारसे भी वह रहित है; अपनी जातिको कष्ट होनेसे जो शोक है, वह साधारण शोक है और अपने स्त्री आदिकोंको कष्ट होनेसे जो शोक है वह असाधारण शोक है और इसी प्रकार अहंकार भी दो तरहका है एक जो जातिका अहंकार कि, हमारी जाति ही उत्तम है सो यह साधारण है, दूसरा धनसम्बन्धियोंका असाधारण अहंकार है जो हम ही धनी और सम्बन्धियोंवाले हैं । इस तरहके शोक और दर्पसे यदि वह रहित है और एक ही सर्वरूप कल्याणस्वरूप है तब फिर किसीमें राग और किसीमें विराग यह बुद्धि कैसे होसकती है किन्तु कदापि नहीं ॥ २० ॥

न हि मोहविमोहविकार इति न हि लोभविलोभविकार इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ह्यविवेकविवेकमतिश्च कथम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, मोहविमोहविकारः, इति, न, हि, लोभविलोभविकारः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, हि, अविवेकविवेकमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

मोहविमोहविकारः = मोह विमोहका विकार
न हि = उसमें नहीं है
इति = इसी प्रकार
लोभविलोभविकारः = लोभ विलोभका विकार
न हि = नहीं है
इति = इसी प्रकार
यदि च = यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम् = एक, निरंतर सर्वरूप, कल्याणरूप है
हि = निश्चय करके
अविवेकविवेकमतिः = विवेकसे रहित और विवेकवाला
च = और
कथम् = कैसे है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ब्रह्ममें साधारण तथा विशेष अज्ञान नहीं है और

अज्ञानका किसी प्रकारका विकार भी नहीं है इसी प्रकार साधारण तथा विशेष लोभ तथा उसको विकार भी नहीं है। जब कि एक, नित्य सर्व-व्यापक कल्याणरूप ब्रह्म है तो अविचार और विचार यह बुद्धि किस प्रकार हो सकती है ॥ २१ ॥

त्वमहं न हि हन्त कदाचिदपि कुलजातिविचार-मसत्यमिति। अहमेव शिवः परमार्थ इति अभि-वादनमत्र करोमि कथम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः।

त्वम्, अहम्, न, हि, हन्त, कदाचित्, अपि, कुलजाति-विचारम्, असत्यम्, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः।

त्वम्=तू और	असत्यम्=असत्य ही है
अहम्=मैं यह अहंकार	अहम्=मैं ही
हन्त=(इति खेदे)	एव=निश्चयकरके
कदाचित्=कदाचित्	शिवः=कल्याणरूप
अपि=भी सत्य	परमार्थः=परमार्थ सत्य हूँ
न हि=नहीं है	इति=ऐसा होनेपर
इति=इसी प्रकार	अत्र=यहां
कुलजाति-विचारम् =कुल और जातिका विचार भी	अभिवादनम्=वंदनाको
	कथम्=किस प्रकार
	करोमि=मैं करूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह मैं हूँ यह तू है इस प्रकारका जो कि भेदज्ञानका अहंकार है यह कदाचित् भी सत्य नहीं है और कुल तथा जाति आदिकोंका जो विचार है हमारा कुल बडा उत्तम है और हमारी जाति भी उत्तम है

यह भी सत्य नहीं है किन्तु मैं सद्रूप शिवरूप परमार्थस्वरूप हूँ मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है, क्योंकि मैं अद्वैतरूप हूँ तब फिर वन्दना करनी भी किसको नहीं बनती है ॥ २२ ॥

गुरुशिष्यविचारविशीर्ण इति उपदेशविचारवि-शीर्ण इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभि-वादनमत्र करोमि कथम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

गुरुशिष्यविचारविशीर्णः, इति, उपदेशविचारविशीर्णः, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

गुरुशिष्यविचारविशीर्णः = गुरु और शिष्यभावका विचार भी निरस्त है
इति = इस प्रकार
उपदेशविचारविशीर्णः = उपदेशका विचार भी मिथ्या है
इति = इसी प्रकार
अहम् = मैं ही
एव = निश्चयकरके
शिवः = शिवरूप
परमार्थः = परमार्थ स्वरूप हूँ
इति = इसी प्रकार
अत्र = यहां
अभिवादनम् = वन्दनाको
करोमि = करूं
कथम् = कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–उस अद्वैत चेतनमें यह गुरु हैं यह शिष्य है इस प्रकारका जो कि विचार है सो भी नहीं बनता है । जब कि उसमें गुरु-शिष्य भाव ही नहीं तब उपदेश करना भी नहीं बनता है । फिर जब कि मैं एक ही कल्याण स्वरूप परमार्थसे सत्यरूप हूँ तब अभिवादन व्यवहार भी नहीं बनता है ॥ २३ ॥

न हि कल्पितदेहविभाग इति न हि कल्पितलो-
कविभाग इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति
अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कल्पितदेहविभागः, इति, न, हि, कल्पितलोक-
विभागः, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवाद-
नम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

कल्पितदेहविभागः = कल्पित देहकरके भी भेद	एव = निश्चयकरके
न हि = नहीं सिद्ध होता है	परमार्थः = परमार्थ
इति = इसी प्रकार	शिवः = शिवरूप हूँ
कल्पितलोकविभागः = कल्पित लोकोंकरके भी विभाग	इति = ऐसे होनेपर तब फिर
न हि = नहीं सिद्ध होता है	अभिवादनम् = वन्दनाको
इति = इसी प्रकार	अत्र = यहां
अहम् = मैं ही	कथम् = किस प्रकार
	करोमि = मैं करूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह देह भी उसी आत्मामें कल्पित है और लोक भी सब उसी आत्मामें कल्पित है, कल्पित वस्तुओंकरके उसका भेद किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं होता है इसीवास्ते मैं ही परमार्थसे शिवरूप कल्याणरूप एक ही हूँ तब फिर अभिवादनव्यवहार कैसे बनता है किन्तु कदापि भी नहीं बनता है ॥ २४ ॥

सरजो विरजो न कदाचिदपि ननु निर्मलनिश्चल-शुद्ध इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभि-वादनमत्र करोमि कथम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

सरजः, विरजः, न, कदाचित्, अपि, ननु, निर्मलनिश्चलशुद्धः, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

सरजः=रागके सहित
विरजः=विरागके सहित
कदाचित्=कदाचित् भी
अपि=निश्चयकरके
न=नहीं हैं
ननु=निश्चयकरके
निर्मलनिश्चलशुद्धः=निर्मल और निश्चल तथा शुद्ध है
इति=इस प्रकारका वह है
अहम्=मैं ही
एव=निश्चयकरके
शिवः=शिवरूप
परमार्थः=परमार्थस्वरूप हूं
इति=इस प्रकार
अत्र=यहां
अभिवादनम्=अभिवादनको
करोमि=मैं करूं
कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम शिवरूप हैं इसवास्ते हम कदाचित् भी रागके सहित और विरागके सहित नहीं हैं किन्तु हम निर्मल निश्चय शुद्धरूप हैं हमारेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है इसवास्ते अभिवादन भी नहीं बनता है ॥ २५ ॥

न हि देहविदेहविकल्प इति अनृतं चरितं न हि सत्यमिति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभि-वादनमत्र करोमि कथम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, देहविदेहविकल्पः, इति, अनृतम्, चरितम्, न, हि, सत्यम्, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

देहविदेहविकल्पः =वह देहवाला है देहसे रहित है	अहम्=मैं ही
इति=इस प्रकारका	एव=निश्चय करके
विकल्पः=विकल्प भी	शिवः=शिवरूप
न हि=उससे नहीं बनता है	परमार्थः=परमार्थस्वरूप हूँ
अमृतम्=मिथ्या और	इति=इस प्रकार
चरितम्=सत्य चरित्र भी	अत्र=यहां
इति=इसमें	अभिवादनम्=वन्दनाको
सत्यम्=सत्यरूप	करोमि=मैं करूं
न हि=नहीं है तब फिर	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनमें इस तरहका विकल्प भी नहीं बनता है कि, देहसे रहित है या देहवाला है और मिथ्या चरित्र भी उसमें कोई सत्य नहीं है सो मैं हूं परमार्थ सत्य और कल्याणस्वरूप हूँ तब अभिवादन करना कैसे बनता है किन्तु कदापि नहीं बनता है ॥ २६ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र च्छन्दोलक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २७ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्त्तिकसंवादे स्वात्मवित्त्युपदेशमोक्षनिर्णयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परमवधूतः, ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस ब्रह्मचेतनमें
विन्दति=कुछ लभता है
विन्दति=कुछ लभता है
न हि न हि=नहीं २
तत्र=तिस ब्रह्ममें
छन्दः=छन्दरूप
लक्षणम्=कविता भी
नहि नहि=नहीं है २
तत्र=तिस ब्रह्ममें
समरसमग्नः=एकरसमग्न हुआ २
भावितपूतः=शुद्धचित्तवाला
परमवधूतः=परम अवधूत
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—शुद्धचित्तवाला परम अवधूत उस ब्रह्ममें एकरस मग्न हुआ २ क्या किसी पदार्थको या छन्दकी कविताको लभता है ? नहीं लभता है क्योंकि उस चेतनमें तीनों कालोंमें दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है इस वास्ते आत्मानन्दसे भिन्न किसी वस्तुको भी वह नहीं लभता है किन्तु आत्मानन्दमें ही वह मग्न रहता है ॥ २७ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीदत्त उवाच ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । शून्यागारे तिष्ठति नग्नो शुद्धनिरञ्जनसमरसमग्नः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः, पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः, शून्यागारे, तिष्ठति, नग्नः, शुद्धनिरञ्जनसमरसमग्नः ॥

पदार्थः ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः	=गलियोंमें गिरपडे टुकडोंकी गुदडी बनाकर	शून्यागारे=शून्यमंदिरमें	
		नग्नः=नग्न होकरके	
		तिष्ठति=स्थिर होता है	
पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः	पुण्य और पापके मार्गसे रहित हुआ	शुद्धनिरंजनसमरसमग्नः	=शुद्ध मायामलसे रहित ब्रह्मानंदमें मग्न

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—समरस कौन है ? जिस रसका अर्थात् आनन्दका कभी भी नाश न हो ऐसा ब्रह्मानन्द ही है उसी ब्रह्मानन्दमें मग्न जो कि अवधूत है वह गलियोंमें गिरेपडे पुराने टुकडोंको लेकर उनकी गुदडी बनाकर और पुण्यपापके मार्गसे अलग होकर शून्यमंदिरमें जाकर नग्न अवधूत स्थित होता है क्योंकि वह शुद्धचित्तवाला और मायामलसे रहित होता है ॥ १ ॥

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यो युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः ।
केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतो वादविवादः कथमवधूतः ॥२॥

पदच्छेदः ।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यः, युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः, केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतः, वादविवादः, कथम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितदक्षः	=लक्ष्य अलक्ष्यसे रहित लक्ष्यस्वरूप	केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतः	केवल आत्मतत्त्वकरके पवित्र हुआ २
		अवधूतः=अवधूत है	
युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः	=युक्त अयुक्तसे विवर्जित और चतुर	वादविवादः=वादविवाद फिर	
		कथम्=कैसे ?	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—एक तो लक्ष्य होता है दूसरा अलक्ष्य होता है जिस वस्तुमें जिज्ञासु लोग अपनी चित्तकी वृत्तिको लगाते हैं वही लक्ष्य होता है और जिसमें वृत्तिको नहीं लगाते हैं वह अलक्ष्य कहाजाता है सो जो कि केवल आत्मतत्त्वमें लीन होगया है मायामलसे रहित पवित्र अवधूत हैं सो लक्ष्य अलक्ष्य दोनोंसे रहित हैं और जो कि योगमें जुडा है वह युक्त कहाजाता है जो नहीं जुडा है वह अयुक्त कहाजाता है वह युक्तायुक्तसे भी रहित है और चतुर है उसका किसीके साथ वादविवाद करना कैसे बनता है किन्तु नहीं बनता है ॥ २ ॥

आशापाशविबन्धनमुक्ताः शौचाचारविवर्जितयुक्ताः।
एवं सर्वविवर्ज्जितसन्तस्तत्त्वं शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः।

आशापाशविबन्धनमुक्ताः, शौचाचारविवर्जितयुक्ताः, एवम्, सर्वविवर्जितसन्तः, तत्त्वम्, शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥

पदार्थः।

आशापाशविबन्धनमुक्ताः =आशारूप पाशके बन्धनसे रहित हैं	एवम्=इस प्रकार
शौचाचारविवर्जितयुक्ताः =बाहरके शौच आचारसे रहित वह आत्मामें जुडे हैं	सर्वविवर्जितसन्तस्तत्त्वम् =सर्व आचारोंसे रहितसे तत्त्व हैं
	शुद्धनिरञ्जनवन्तः=शुद्ध मायामलसे रहित है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह अवधूत जीवन्मुक्त आशारूपी पाशस रहित है सम्पूर्ण बन्धनोंसे रहित है इसीसे वह बाहरके शौचरूपी आचारस भी रहित है क्योंकि वह आत्मामें जुडाहुआ है और शरीरके भी सम्पूण तत्त्वोंमें तिसका अध्यास नहीं है शुद्ध है मायामलसे वह रहित है ॥ ३ ॥

कथमिह देहविदेहविचारः कथमिह रागविराग-विचारः । निर्मलनिश्चलगगनाकारं स्वयमिह तत्त्वं सहजाकारम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, देहविदेहविचारः, कथम्, इह, रागविराग-विचारः, निर्मलनिश्चलगगनाकारम्, स्वयम्, इह, तत्त्वम्, सहजाकारम् ॥

पदार्थः ।

इह=जीवन्मुक्त अवधूतावस्थामें
देहविदेहविचारः=यह देह है यह विगत देह है इस प्रकारका विचार
कथम्=कैसे हो सकता है किन्तु नहीं
इह=इसी अवस्थामें
कथम्=कैसे
रागविरागविचारः=रागविरागका विचार कैसेहोसकताहै क्योंकि
निर्मलनिश्चलगगनाकारम्=वह निर्मल है निश्चल है आकाशकी तरह व्यापक है
स्वयम्=आपही वह
सहजाकारम्=स्वाभाविक
इह तत्त्वम्=ब्रह्मतत्त्व है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो अवधूत जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हो गया है उसकी दृष्टिमें यह देह नहीं है इस प्रकारका विचार कैसे हो सकता है और किसीमें राग किसीमें विराग ऐसा विचार भी उसकी दृष्टिमें नहीं होता है क्योंकि वह निर्मल है निश्चल है गगनके आकारकी तरह व्यापक है स्वभावसे ही सहजाकार है ॥ ४ ॥

कथमिह तत्त्वं विन्दति यत्र रूपमरूपं कथमिह तत्र । गगनाकारः परमो यत्र विषयीकरणं कथमिह तत्र ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, तत्त्वम्, विन्दति, यत्र, रूपम्, अरूपम्, कथम्, इह, तत्र, गगनाकारः, परमः, यत्र, विषयीकरणम्, कथम्, इह, तत्र ॥

पदार्थः ।

इह=जीवन्मुक्त अवस्थामें
तत्त्वम्=तत्त्वको
कथम्=किस प्रकार
विन्दति=जानता है
यत्र=जिस अवस्थामें
रूपम्=रूप और
अरूपम्=रूप नहीं है
इह तत्र=तिस अवस्थामें
कथम्=कैसे किसको जान सकता है
यत्र=जिस अवस्थामें
गगनाकारः=केवल गगनके आकार वाला
परमः=परमतत्त्व है
तत्र=तिस अवस्थामें
इह=इस चेतनमें
विषयीकरणम्=विषय करना
कथम्=कैसे होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस ब्रह्ममें जिस अवधूत अवस्थामें रूप अरूप कोई भी तत्त्व भान नहीं होता है किन्तु गगनवत् व्यापक परमतत्त्वरूप हो जाता है उस अवस्थामें विषयीकरणव्यवहार भी नहीं होता है ॥ ५ ॥

गगनाकारनिरन्तरहंसस्तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः ।
एवं कथमिह भिन्नविभिन्नं बन्धविबन्धविकार-
विभिन्नम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

गगनाकारनिरन्तरहंसः, तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः, एवम्, कथम्, इह, भिन्नविभिन्नम्, बन्धविबन्धविकारविभिन्नम् ॥

पदार्थः ।

गगनाकारनिरन्तरहंसः =गगनसे तुल्य निरन्तर वह हंसरूप है
तत्त्वविशुद्धनिरंजनहंसः =आत्मतत्त्व शुद्ध है मायामलसे रहित है हंसरूप है
एवम्=इस प्रकार होनेपर
इह=इस आत्मामें
भिन्नविभिन्नम्=भिन्न भेद
कथम्=किस प्रकार होसकता है
बंधविबंधविकारविभिन्नम् =यह बन्ध है यह नहीं है ऐसा भेद भी नहीं बनता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–वह ब्रह्म आकाशके तुल्य सर्वव्यापक आत्मरूप है निर्लेप है हंसस्वरूप है इस प्रकार आत्माकी स्थिति होनेपर इससे सदृश अथवा भिन्न किस प्रकार होसकता है, और यह बन्धन है यह बन्धनरहित है, यह विकाररहित है यह भी नहीं होसकता ॥ ६ ॥

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वं योगवियोगौ कथमिह गर्वम् ।
एवं परमनिरन्तरसर्वमेवं कथमिह सारविसारम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वम्, योगवियोगौ, कथम्, इह, गर्वम्, एवम्, परमनिरन्तरसर्वम्, एवम्, कथम्, इह, सारविसारम् ॥

पदार्थः ।

केवलतत्त्वनिरंतरसर्वम् =केवल आत्मतत्त्वही एकरस सर्वरूप है
योगवियोगौ=संयोग और वियोगका
इह=इस आत्मामें
गर्वम्=अहंकार
कथम्=कैसे बनसकता है
एवम्=इसी प्रकार
परमनिरन्तरसर्वम् =परम निरन्तर सर्वरूप है
एव=निश्चयकरके तब फिर
इह=इस आत्मामें
सारविसारम्=यह सार है यह असार है
कथम्=यह कैसे होसकता है? किन्तु नहीं होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—एक आत्मतत्त्व ही नित्य सर्वव्यापक है उसमें संयोग और वियोग कुछ भी नहीं, संसारमें किसीकी उत्पत्तिके समय जो संयोग और मरणके समय जो वियोग साम्य जाती हैं यह कल्पनामात्र है इससे कुछ भी अभिमान उचित नहीं ॥ ७ ॥

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वं गगनाकारनिरंतरशुद्धम् । एवं कथमिह संगविसङ्गं सत्यं कथमिह रंग-विरङ्गम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम्, गगनाकारनिरन्तरशुद्धम्, एवम्, कथम्, इह, सङ्गविसङ्गम्, सत्यम्, इह, रङ्गविरङ्गम् ॥

पदार्थः ।

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम् =केवल आत्मतत्त्व ही मायामलसे रहित सर्वरूप है

गगनाकारनिरन्तरशुद्धम् =आकाशवत् एकरस वह शुद्ध है

एवम्=ऐसे होनेपर

इह=इस आत्मामें

संगविसंगम् =सत्संग और विरुद्ध कुसंग

कथम्=कैसे बनसकता है किंतु नहीं

इह=इस आत्मामें

सत्यम्=सत्य

रंगविरंगम्=रंग और विलक्षण रंग

कथम्=कैसे बनसकताहै किन्तु नहीं बनता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कि, केवल आत्मतत्त्व ही मायामलसे रहित सर्वरूप है आकाशवत् एकरस और शुद्ध है ऐसे होनेपर इस आत्मामें सत्संग और इससे विरुद्ध जो कुसंग है सो कैसे बनसकते हैं किन्तु नहीं, इस आत्मामें सत्य, रंग और लक्षणरंग कैसे बनसकता है किन्तु नहीं बनता है, ऐसा मैं हूं ॥ ८ ॥

योगवियोगै रहितो योगी भोगविभोगै रहितो भोगी। एवं चरति हि मन्दंमन्दं मनसा कल्पित-सहजानन्दम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

योगवियोगैः, रहितः, योगी, भोगविभोगैः, रहितः, भोगी, एवम्, चरति, हि, मन्दंमन्दम्, मनसा, कल्पितसहजानन्दम्॥

पदार्थः।

योगी=आत्मतत्त्वमें मग्न योगी
योगवियोगैः=संयोग और वियोगसे
रहितः=रहित है और
भोगी=भोगी
भोगवि-भोगः=विहित भोगसे और अ-हित भोगसे
रहितः=रहित हुआ २
एवम्=इस प्रकारका योगी
मनसा=मनकरके
कल्पितसहजानन्दम्=कल्पितसहजानन्दको
हि=निश्चयकरके
मन्दम्=धीरे
मन्दम्=धीरे
चरति=विचरता है अर्थात्, आत्मानन्दको प्राप्त होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--आत्मतत्त्वमें मग्न हुआ योगी संयोगसे और वियोगसे भी रहित है और योगी भोगसे भी रहित और सहित है इस प्रकारका योगी मनकरके कल्पना किया हुआ सहजानन्दको निश्चय कर धीरे धीरे विचरता है अर्थात आत्मानन्दको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

बोधविबोधैः सततं युक्तो द्वैताद्वैतैः कथमिहमुक्तः। सहजो विरजाः कथमिह योगी शुद्धनिरञ्जनसम-रसभोगी ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

बोधविबोधैः, सततम्, युक्तः द्वैताद्वैतैः, कथम्, इह, मुक्तः, सहजः विरजाः, कथम्, इह, योगी, शुद्धनिरञ्जनसमरसभोगी ॥

पदार्थः ।

बोधविबोधैः=ज्ञान अज्ञानकरके युक्त
सततम्=निरन्तर
युक्तः=युक्त हुआ २ और
द्वैताद्वैतः=द्वैत और अद्वैतकरके युक्त हुआ २
इह=इस संसारमें
कथम्=किस प्रकार
मुक्तः=मुक्त होते हैं
इह=इस संसारमें
योगी=योगी
सहजः=स्वभावसे ही
विरजाः=रागसे रहित
कथम्=किस प्रकार होवेगा क्योंकि योगी
शुद्धनिरञ्जन-समरसभोगी=शुद्ध है मायामलसे रहित आत्मानन्द-को ही भोक्ता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-ज्ञान और अज्ञान दोनोंसे युक्त तथा द्वैत और अद्वैत दोनोंको माननेवाला अनिश्चित तत्त्ववाला योगी मुक्त नहीं होस-कता कदाचित् कहाजाय कि स्वभावसेही रजोगुणके नाश होनेसे शुद्ध-ज्ञान उत्पन्न होजायगा जिससे माया और उससे उत्पन्न हुई वासनाओंसे रहित होकर योगी ब्रह्मानन्दका अनुभव करसकता है यह नहीं होसकता आत्मज्ञानसे कर्मबन्धके नष्ट होजानेसे और अद्वैतज्ञानके उत्पन्न होनेसे ही मुक्ति होती है ॥ १० ॥

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नो लग्नालग्नविवर्जितलग्नः । एवं कथमिह सारविसारः समरसतत्त्वं गगनाकारः॥११॥

पदच्छेदः ।

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नः, लग्नालग्नविवर्जितलग्नः, एवम्, कथम्, इह, सारविसारः, समरसतत्त्वम्, गगनाकारः ॥

पदार्थः।

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नः=आत्मतत्त्वमें भग्न अभग्न नहीं है	सारविसारः=सारविसारभी
लग्नालग्नविवर्जितलग्नः=लग्न और अलग्नसे रहित अर्थात् किसीसे लग्न भी नहीं है	कथम्=किसी प्रकारसे भी नहीं है
एवम्=ऐसा होनेपर	समरसतत्त्वम्=क्योंकि वह आत्मतत्त्व एकरस
इह=इस आत्मामें	गगनाकारः=गगनाकार है आकाशवत् व्यापक है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--आत्मतत्त्व आकाशके समान अनन्त अपार और यथार्थरूपसे जाननेके अयोग्य है आत्माको खण्ड हुआ अखण्ड हुवा अथवा किसी अंशमें खण्ड हुआ और किसी अंशमें अखण्ड हुआ नहीं कह सकते किसीमें लगा हुआ किसीमें नहीं लगा हुआ अथवा किसी अंशमें लगा हुआ किसी अंशमें नहीं लगा हुआ भी नहीं कह सकते, इसी प्रकार आत्मतत्त्वमें कितना सारभाग और कितना असारभाग है यह नहीं कहा जासकता प्रयोजन यह है कि जैसा आकाशका ठीक जान लेना कठिन है ऐसा आत्माका जान लेना भी वहुत कठिन है॥ ११ ॥

सततं सर्वविवर्जितयुक्तः सर्वं तत्त्वविवर्जितमुक्तः।
एवं कथमिह जीवितमरणं ध्यानाध्यानैः कथमिह करणम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः।

सततम्, सर्वविवर्जितयुक्तः, सर्वम्, तत्त्वविवर्जितमुक्तः, एवम्, कथम्, इह, जीवितमरणम्, ध्यानाध्यानैः, कथम्, इह, करणम् ॥

पदार्थः ।

सततम्=निरन्तर योगी
सर्वविवर्जित-युक्तः=सर्वसे रहित आत्मतत्त्वमेंहीजुडारहता है
सर्वम्=संपूर्ण
तत्त्वविवर्जित-मुक्तः=तत्त्वसे रहित हुआ ही मुक्त है
एवम्=ऐसा होनेपर
इह=इस आत्मतत्त्वमें
जीवितमरणम्=जीना और मरण
कथम्=कैसे बन सकता है फिर
इह=इसी आत्मतत्त्वमें
ध्यानाध्यानैः=ध्यान और ध्याना-[भावका]
करणम्=करना
इह=इसमें
कथम्=किस प्रकार हो सकता है किन्तु किसी तरहसे नहीं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मज्ञानी संसारके पदार्थोंसे प्रयोजन न रखकर आत्मामें ही रमता है, प्रकृति महत्तत्त्वादि विकारोंसे रहित होनेसे जीवन्मुक्त हो जाता है ऐसी दशामें आत्माकी उत्पत्ति और मरण कैसे हो सकते हैं, और उसके ध्यान करने और न करनेसे क्या प्रयोजन है ॥ १२ ॥

इन्द्रजालमिदं सर्वं यथा मरुमरीचिका ।
अखंडितघनाकारो वर्तते केवलं शिवः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

इन्द्रजालम्, इदम्, सर्वम्, यथा, मरुमरीचिका, अखण्डितघनाकारः, वर्तते, केवलम्, शिवः ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह जगत्
सर्वम्=संपूर्ण
इन्द्रजालम्=इन्द्रजालके तुल्य है और
यथा=जैसे
मरुमरीचिका=मृगतृष्णाका जल मिथ्या होता है तैसे यह भी सब मिथ्या है
अखण्डितघनाकारः=नाशसे रहित घनाकार
केवलम्=केवल
शिवः=कल्याणस्वरूप आत्मा ही
वर्तते=वर्तता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह सब जगत् इन्द्रजालके समान झूठा है और मारवाडदेशमें पानी न होनेसे प्यासे मृगोंको चन्द्रमाके उदय होनेपर चमकते हुए वालूके कण जैसे पानीके समान दूरसे मालूम पडते हैं पास जानेमें वहां पानीका लेश भी नहीं रहता ऐसा यह संसार है। इसमें फँसेहुए मनुष्यको स्त्रीपुत्रादिके ऊपर जो ममत्व होजाता है वह भ्रान्तिमूलक है उससे कभी शान्ति नहीं होसकती इस जगत्में आकर जानने अथवा उपासना करने योग्य यदि कुछ है तो परिपूर्ण सच्चिदानन्द एक शिव ही है॥ १३॥

धर्मादौ मोक्षपर्यन्तं निरीहाः सर्वथा वयम्।
कथं रागविरागैश्च कल्पयन्ति विपश्चितः॥ १४॥

पदच्छेदः।

धर्मादौ, मोक्षपर्यन्तम्, निरीहाः, सर्वथा, वयम्, कथम्, रागविरागैः, च, कल्पयन्ति, विपश्चितः॥

पदार्थः।

वयम्=हम
धर्मादौ=धर्मसे आदि लेकर
मोक्षपर्यंतम्=मोक्षपर्यंत सर्वविषयोंमें
सर्वथा=सर्वप्रकारकी
निरीहाः=चेष्टाओंसे रहित हैं तब फिर
विपश्चितः=पंडित लोग
कथम्=किस प्रकार
च=और मेरेमें
रागविरागैः=राग और विराग करके युक्त
कल्पयन्ति=कल्पना कर सकते हैं किन्तु कदापि नहीं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—धर्मसे लेकर मोक्षतक हम सब प्रकारसे इच्छा रहित हैं। बुद्धिमान् मनुष्य प्रीति अथवा द्वेष किसी पर नहीं करते॥ १४॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ १५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परमवधूतः ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस चेतनमें
छन्दः=छन्दरूपी
लक्षणम्=वेद भी वास्तवसे
नहि नहि=सत्य नहीं २
तत्र=उसी चेतनमें प्राप्त होकर
विन्दति विन्दति=कुछ जानता है जानता है
नहि नहि=कुछ भी नहीं जानता है२
समरसमग्नः=आत्मानन्दमें मग्न
भावितपूतः=शुद्धचित्तवाला
परमवधूतः=श्रेष्ठ अवधूत
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिन चेतन पदार्थको वेद भी यथार्थरूपसे नहीं जान सकते उसी चेतनको ब्रह्मानन्दमें मग्न हुए शुद्ध आशयवाले अवधूतराज दत्तात्रेय कहते हैं ॥ १५ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

श्रीदत्त उवाच ।

त्वद्यात्रया व्यापकता हता ते ध्यानेन चेतःपरता हता ते । स्तुत्या मया वाक्परता हता ते क्षमस्व नित्यं त्रिविधापराधान् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्वद्यात्रया, व्यापकता, हता, ते, ध्यानेन, चेतःपरता, हता, ते, स्तुत्या, मया, वाक्परता, हता, ते, क्षमस्व, नित्यम्, त्रिविधापराधान् ॥

पदार्थः ।

त्वद्यात्रया=तुम्हारी यात्रासे
व्यापकता=व्यापकता
हता=हत हुई
ते=तुम्हारे
ध्यानेन=ध्यानकरके
चेतःपरता=चित्तकी विषयपरता
हता=हत हुई
ते=तुम्हारी
स्तुत्या=स्तुतिकरके

मया=हमारी
वाक्-परता=वाणी परकी स्तुति-विषयपरता
हता=नष्ट हुई इसवास्ते
ते=तुम्हारेसे
त्रिविधापराधान्=तीनप्रकारके अपराधोंको
नित्यम्=नित्यही
क्षमस्व=क्षमा करो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने ही आत्मासे कहते हैं—हे चेतन ! तुम्हारी यात्रा करनेसे अर्थात् तुम्हारी तरफ जिस कालमें हमारे चित्तने चलना प्रारम्भ किया उसी कालमें चित्तकी विषयोंकी तरफसे व्यापकता नष्ट होगई । तुम्हारी यात्रासे पहले चित्त विषयोंमें व्यापा जाता था अब नहीं व्याप-

ताहै और तुम्हारे ध्यान करके चित्तकी विषयपरायणता नष्ट होगई अर्थात् तुम्हारे ध्यानसे पहले चित्त झट विषयको देखता ही उसकी तरफ दौडजाता था अब नहीं दौडता है। फिर तुम्हारी स्तुति वाणीमें जो कि परकी निन्दा स्तुति आदिक दोष था वह भी नष्ट होगया इसीवास्ते मैं अब नित्य ही तीनप्रकारके अपराधोंसे क्षमाको माँगता हूँ क्यों कि यह तीनों अपराध मेरे नष्ट होगये हैं ॥ १ ॥

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक्छान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥२॥

पदच्छेदः ।

कामैः, अहतधीः, दान्तः, मृदुः, शुचिः, अकिञ्चनः, अनीहः, मितभुक्, शान्तः, स्थिरः, मच्छरणः, मुनिः ॥

पदार्थः ।

कामैः=कामनाकरके
अहतधीः=बुद्धि जिसकी हत नहीं है अर्थात् जो कि निष्काम है आर
दान्तः=बाह्य इन्द्रियोंकाभी जिसने दमन किया है
मृदुः कोमल स्वभाव
शुचिः=शुद्ध चित्तवाला
अकिञ्चनः=संग्रहसे रहित है
अनीहः=इच्छा भी किसी पदार्थकी जिसको नहीं है
मितभुक्=मित भोजन करता है
शान्तः=शान्त है
स्थिरः=स्थिर है चलायमान किसी करके नहीं होता है
मच्छरणः=आत्माकी शरण है
मुनिः=उसीका नाम मुनि है

भावार्थः ।

दत्तात्रयजी कहतेहैं—जिसकी बुद्धि किसी बातकी इच्छा न करनेसे अर्थात् निष्काम होनेसे दुष्ट नहीं हुई है चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियोंको वशमें जिसने कर रखा है कोमल चित्तवाला हो, पवित्र रहताहो, किसी पदार्थको संग्रह न करता हो और इच्छा भी किसी बातकी न करताहो, थोडासा भोजन करता हो, शान्त हो, स्थिरबुद्धि हो, मितभाषी हो, वही आत्मज्ञानी है ॥ २ ॥

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥३॥

पदच्छेदः।

अप्रमत्तः, गभीरात्मा, धृतिमान्, जितषड्गुणः, अमानी, मानदः, कल्पः, मैत्रः, कारुणिकः, कविः ॥

पदार्थः।

अप्रमत्तः=प्रमादस रहित होना और
गभीरात्मा=गंभीरस्वभाव होना
धृतिमान्=धैर्ययुक्त होना
जितषड्गुणः=जीतलिये हैं छःइंद्रिय और उसके विषय जिसने
अमानी=मानसे रहित
मानसः=दूसरेको मानदेना
मैत्रः कल्पः=करुणाकरके युक्त होना
कविः=दीर्घदर्शी होना

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सदा सावधान रहनेवाला, गंभीर स्वभाववाला, धैर्यशील, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः विकारोंको जीता हुआ, अभिमानरहित सब कामाम कुशल सबसे मित्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाला और दयाशील साधु कहाजाता है ॥ ३ ॥

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यासारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

कृपालुः, अकृतद्रोहः, तितिक्षुः, सर्वदेहिनाम्, सत्यासारः, अनवद्यात्मा, समः, सर्वोपकारकः ॥

पदार्थः।

कृपालुः=जो कि कृपालु है
तितिक्षुः=सहनशील
सर्वदेहिनाम्=संपूर्ण देहधारियोंके साथ जो कि
अकृतद्रोहः=कुछ द्रोहको नहीं करता है
समः=सर्वमें एक ही आत्माको देखता है

सत्यासारः=सत्यका ही जो कि ताल है अर्थात् जिसमें सत्य ही भरा है
अनवद्यात्मा=जन्ममरणसे रहित है
सर्वोपकारकः=सबका उपकारही करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो कृपा करनेवाला सहनशील और संपूर्ण देहधारियोंके साथ जो कि द्रोह करनेवाला नहीं है और सब जगह सम बुद्धि रखनेवाला है और जो सत्यही बोलनेवाला है, जन्ममरणसे रहित है सबका उपकारी है ऐसा मैं हूँ ॥ ४ ॥

अवधूतलक्षणं वर्णैर्ज्ञातव्यं भगवत्तमैः ।
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैर्वेदवेदान्तवादिभिः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अवधूतलक्षणम्, वर्णैः, ज्ञातव्यम्, भगवत्तमैः वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैः, वेदवेदान्तवादिभिः ॥

पदार्थः ।

अवधूतलक्षणम्=अवधूतका लक्षण
भगवत्तमैः=भक्तोंकरके और
वर्णैः=वर्णोंवालोंकरके और
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैः=वेद वर्णोंके अर्थके तत्त्वको जाननेवाले
वेदवेदान्तवादिभिः=वेदवादियों करके भी वह लक्षण
ज्ञातव्यम्=जानना उचित है और ऊपर जो उपरमतादि गुण कहे हैं यह साधारण महात्माओंके गुण कहे हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–अवधूतके लक्षण सभी भक्त तथा ज्ञानियोंको जानने चाहिये वेद शास्त्र आदिमें अच्छा ज्ञान हो तथापि अवधूत लक्षण सभीको जानना योग्य है ॥ ५ ॥

अब आगेके श्लोकोंमें असाधारण अवधूतके लक्षणको दिखाते हैं अवधूत पदके वर्णके अर्थको प्रत्येक श्लोकोंमें दिखाते हैं ! तथाच–

आशापाशविनिर्मुक्त आदिमध्यान्तनिर्मलः ।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

आशापाशविनिर्मुक्तः, आदिमध्यान्तनिर्मलः, आनन्दे, वर्तते, नित्यम्, अकारम्, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

आशापाशविनिर्मुक्तः =आशारूपी पाशसे जो कि रहित है	नित्यम्=नित्यही
	वर्तते=वर्तता है
आदिमध्यांतनिर्मलः आदि मध्य और अन्त तीनों कालों में जो कि निर्मल है	तस्य=तिसका
	अकारम्=अकार
आनन्दे=ब्रह्मानन्दमें ही	लक्षणम्=लक्षण हैं

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी अब अवधूतके लक्षणोंको कहते हैं–जो कि संसारके पदार्थोंमें अर्थात् भोगोंमें आशारूपी पाशसे रहित है अर्थात जिसकी किसी भोगपदार्थमें आशा नहीं है और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्था हैं इन तीनों अवस्थाओंमें किसका चित्त विषय विकारोंकी तरफ नहीं जाता है किन्तु शुद्ध है, अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंमें जिसका चित्त शुद्ध है, अथवा कुमार, यौवन, वृद्धा इन तीनों अवस्थाओंमें जिसका चित्त निर्विकार रहता है और नित्य ही ब्रह्मानन्दमें मग्न रहता है यह लक्षण अर्थात् यह अर्थ अवधूत शब्दके अकारका है ॥ ६॥

वासना वर्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम् ।
वर्तमानेषु वर्तेत वकारं तस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

वासना, वर्ज्जिता, येन, वक्तव्यम्, च, निरामयम्, वर्तमानेषु, वर्तेत, वकारम्, तस्य लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस पुरुषने
वासना=वासनाका
वर्जिता=त्याग कर दिया है
च=और
वक्तव्यम्=वक्तव्य जिसका
निरामयम्=रोगसे रहित है
वर्तमानेषु=वर्तमानमें ही
वर्तेत=वर्तता है
तस्य=तिसका
लक्षणम्=लक्षण
वकारम्=वकार है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अब अवधूत शब्दगत वकार अक्षरके अर्थको कहते हैं– जो कि वासनासे रहित है अर्थात् इस लोकके भोगोंसे लेकर ब्रह्मलोकके भोगोंतक जिसके चित्तमें किसी भी भोगकी वासना नहीं है । वासना दो प्रकारकी होती है एक तो शुभवासना है दूसरी अशुभवासना है । शुभवासना अन्तःकरणकी शुद्धिका हेतु है, अशुभवासना बन्धनका हेतु है सो दोनों प्रकारकी वासनाओंका जिसने त्याग कर दिया है, शुभवासनाका त्याग इस वास्ते उसने किया है कि, अब तिसको चित्तकी शुद्धिकी भी आवश्यकता नहीं है क्यों कि वह सिद्धावस्थाको प्राप्त होगया है और कथन जिसका निरोग है किसीके भी चित्तमें खेदको उत्पन्न नहीं करता है और वर्तमानमें ही होनेवाले पदोंसे शरीरका निर्वाह करलेता है उसीमें मग्न होके आनन्दमें रहता है भविष्यत्‌की चिन्ताको नहीं करता है यह अवधूत शब्दके वकार अक्षरका अर्थ है७॥

धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तो निरामयः ।
धारणाध्याननिर्मुक्तो धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तः, निरामयः, धारणाध्याननिर्मुक्त,ः धकारः, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

धूलिधूसरगात्राणि=धूलिकरके धूसर हैं अंग जिसके	धारणाध्याननिर्मुक्तः=धारणा और ध्यानसे रहित है
धूतचित्तः=धोया गया है पापोंसे चित्त जिसका	तस्य=तिस शब्दके
	धूकारः=धूकारका
निरामयः=रोगसे रहित	लक्षणम्=अर्थ है

भावार्थः ।

अब दत्तात्रेयजी अवधूत शब्दके धू अक्षरके अर्थको दिखाते हैं–जिसके सब शरीरके अंग धूलिसे धूमिल हैं और दैवीसंपदके साधनों करके जिसका चित्त धोयागया है, फिर जो कि रोगसे रहित रागद्वेषादिक रोग जिसमें नहीं हैं, योगशास्त्रोक्त धारणा और ध्यानसे भी जो रहित है क्योंकि सर्वत्र ही उसकी ब्रह्मदृष्टि हो रही है, यह सब धू अक्षरका अर्थ है ॥ ८ ॥

तत्त्वचिन्ता धृता येन चिन्ताचेष्टाविवर्जितः ।
तमोऽहङ्कारनिर्मुक्तस्तकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

तत्त्वचिन्ता, धृता, येन, चिन्ताचेष्टाविवर्जितः तमोऽहंकार-निर्मुक्तः, तकारः, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिसने	तमोहंकारनिर्मुक्तः=धारणा और अहंकारसे जो कि रहित है
तत्त्वचिन्ताधृता=आत्मतत्त्वकी चिन्ताको धारण किया है	तस्य=तिसके
चिन्ताचेष्टाविवर्जितः=संसारकी चिंता और चेष्टासे जो कि रहित है	तकारः=तकारका यह
	लक्षणम्=अर्थ है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अब अवधूत शब्दके तकारके अर्थको कहते हैं–जिसने आत्म-तत्त्वके चिन्तनको ही धारण किया है और सांसारिक किसी पदार्थका भी

जो कि चिन्तनसे नहीं करता है फिर जो कि, संसारके भोगोंकी चेष्टा और चिन्तासे रहित है अज्ञानका कार्य जो कि अहंकार है उससे भी जो कि रहित है यह अर्थ अवधूत शब्दके तकारका है ॥ ९ ॥

आत्मानं चामृतं हित्वा अभिन्नं मोक्षमव्ययम् ।
गतो हि कुत्सितः काको वर्तते नरकं प्रति ॥१०॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, च, अमृतम्, हित्वा, अभिन्नम्, मोक्षम्, अव्ययम्, गतः, हि, कुत्सितः, काकः, वर्तते, नरकम्, प्रति ॥

पदार्थः ।

आत्मानम्=आत्माको	हि=निश्चयकरके
अमृतम्=अमृतरूपको	कुत्सितः=निन्दित
अभिन्नम्=अभिन्नको	काकः=काक
मोक्षम्=मोक्षस्वरूपको	नरकम्=नरकके
अव्ययम्=अव्ययको	प्रति=प्रति
हित्वा=त्याग करके	वर्तते=वर्तता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कुत्सित जो पुरुष हैं अर्थात् भेदवादी अज्ञानी पुरुष या विषयी पुरुष हैं सो अमृतरूप मोक्षस्वरूप सर्वमें भेदसे रहित जो एक आत्मा है तिसका त्याग करके बार २ नरकके प्रति ही दौडते हैं ॥ १० ॥

मनसा कर्मणा वाचा त्यज्यतां मृगलोचना ।
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा सानन्दं हृदयं यदि ॥११॥

पदच्छेदः ।

मनसा, कर्मणा, वाचा, त्यज्यताम्, मृगलोचना, न, ते, स्वर्गः, अपवर्गः, वा, सानन्दम्, हृदयम्, यदि ॥

पदार्थः ।

मनसा=मनकरके	ते=तुम्हारेको
कर्मणा=क्रियाकरके	स्वर्गः=स्वर्गसुख और
वाचा=वाणीकरके	अपवर्गः=मोक्षसुख और
मृगलोचना=मृगके तुल्य नेत्रोंवाली स्त्रियोंकों	वा=अथवा
	हृदयम्=हृदयमें
त्यज्यताम्=त्याग करदेवो	सानन्दम्=आनन्द भी
यदि न=यदि नहीं करोगे तव	न=नहीं होवेगा

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--मन वाणी और कर्मसे स्त्रीको छोडदेना चाहिये संसारमें वन्धन करनेवाली स्त्री ही है, वन्धन ही नाना प्रकारके दुःखोंका कारण है इससे दुःखकी जड ही काटदेना बुद्धिमान्का काम है, हे जीव ! जव तेरा मन यदि आनन्दपूर्ण होजावें तो स्वर्ग और मोक्ष किसी पदार्थकी आवश्यकता नहीं है ॥ ११ ॥

न जानामि कथं तेन निर्मिता मृगलोचना ।
विश्वासघातकीं विद्धि स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, जानामि, कथम्, तेन, निर्मिता, मृगलोचना। विश्वास-घातकीम्, विद्धि, स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम् ॥

पदार्थः ।

न जानामि=हम इस वातको नहीं जानते हैं	विश्वासघातकीम्=विश्वासको घात करनेवाली
तेन=विधाताने	विद्धि=तू जान और
मृगलोचना=मृगके लोचनवाली	स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम्=स्वर्ग और मोक्ष सुखमें विघ्नरूप अर्गला है
कथम्=किसवास्ते [स्त्रीको	
निर्मिता=रचा वह कैसी है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माने अपने नयनबाणोंके जालसे संसारको फंसानेवाली स्त्रियोंको क्यों बनाया यह समझमें नहीं आता, मेरी समझसे तो स्त्रीको विश्वासघात ऐसे बडे पापोंको करनेवाली स्वर्ग मोक्ष और सुखको नष्ट करनेवाली, पुरुषकी शत्रु समझना चाहिये ॥ १२ ॥

मूत्रशोणितदुर्गन्धे ह्यमेध्यद्वारदूषिते ।
चर्मकुण्डे ये रमन्ति ते लिप्यन्ते न संशयः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

मूत्रशोणितदुर्गन्धे, हि, अमेध्यद्वारदूषिते, चर्मकुण्डे, ये, रमन्ति, ते, लिप्यन्ते, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके	ये=जो पुरुष
मूत्रशोणितदुर्गन्धे=मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त	रमन्ति=रमण करते हैं
	ते=वे
अमेध्यद्वारदूषिते=मलके द्वारोंसे दूषित	लिप्यन्ते=दुःखमय संसारमें लिप्त होते हैं
चर्मकुण्डे=इस चर्मकुण्डमें	न संशयः=इसमें सन्देह नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस स्त्रीको कामीलोग विधुवदनी, रम्भोरु, मृगराजकटी आदिकी उपमा देकर उसके अपवित्र देहको अपने सुखकी सामग्री समझकर उसमें लिप्त रहते और अन्तमें दुःख ही भोगते हैं वह बडे ही मूढ हैं उनको विचारना चाहिये कि मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त और मलके द्वारोंसे भरीहुई स्त्री है उसके चर्मकुण्डमें जो आनन्दलाभ करते हैं वह दुःखमय संसारमें लिप्त रहते हैं अर्थात् उनका निस्तार कभी नहीं होता ॥ १३ ॥

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौचविवर्जिता ।
केनापि निर्मिता नारी बन्धनं सर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः।

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता, सत्यशौचविवर्जिता, केन, अपि, निर्मिता, नारी, बन्धनम्, सर्वदेहिनाम् ॥

पदार्थः।

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता =कुटिलता और दम्भ करके युक्त जो स्त्री है	केन=किसने
सत्यशौचविवर्जिता =सत्यसे और पवित्रता से रहित है ऐसी स्त्रीको	अपि=निश्चयकरके
	निर्मिता=रचा है
	सर्वदेहिनाम्=संपूर्ण जीवोंके
	बन्धनम्=बन्धनका कारण है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कुटिलता और दम्भकरके युक्त जो स्त्री है सत्यसे और पवित्रतासे रहित है ऐसी स्त्रीको किसने निश्चयकरके रची है ऐसी स्त्री सम्पूर्ण बंधोंका कारण है ॥ १४ ॥

त्रैलोक्यजननी धात्री सा भगी नरकं ध्रुवम्।
तस्यां जातो रतस्तत्र हाहा संसारसंस्थितिः ॥१५॥

पदच्छेदः।

त्रैलोक्यजननी, धात्री, सा, भगी, नरकम्, ध्रुवम्, तस्याम्, जातः, रतः, तत्र, हाहा, संसारसंस्थितिः ॥

पदार्थः।

धात्री=जो स्त्री	जातः=उत्पन्न हुआ २ पुरुष
त्रैलोक्यजननी=तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली है	तत्र=उसीमें फिर
सा भगी=भगके सहित	रतः=प्रीतिकरताहै अर्थात् उसीको भोगता है
ध्रुवम्=निश्चयकरके	हाहा=बडा कष्ट है
नरकम्=साक्षात् नरक ही है	संसारसंस्थितिः=कैसी यह संसारकी स्थिति है
तस्याम्=तिसी स्त्रीमें	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-कि, जो स्त्री तीनों लोकोंमें उत्पन्न करनेवाली है सो स्त्री भगसे सहित साक्षात् नरकही है. तिसी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुरुष उसमें फिर प्रीति करता है इसी तरह संसारस्थिति बडी कष्टकारक है ॥१५॥

जानामि नरकं नारीं ध्रुवं जानामि बन्धनम् ।
यस्यां जातो रतस्तत्र पुनस्तत्रैव धावति ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

जानामि, नरकम्, नारीम्, ध्रुवम्, जानामि, बन्धनम्, यस्याम्, जातः, रतः, तत्र, पुनः, तत्र, एव, धावति ॥

पदार्थः ।

नारीम्=स्त्रीको
नरकम्=नरकरूप
जानामि=हम जानते हैं
ध्रुवम्=निश्चयकरके
बन्धनम्=बन्धनका कारण
जानामि=हम जानते हैं
यस्याम्=जिसमें
जातः=उत्पन्न होता है
तत्र=तिसीमें
रतः=क्रीडाको करता है
पुनः=फिर
एव=निश्चयकरके
तत्र=तिसीमें
धावति=दौडता भी है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-स्त्रीको मैं नरक समझताहूँ और निश्चय है स्त्री बन्धन है ऐसा जानताहूँ पर मनुष्योंकी ओर जब दृष्टि देकर विचार करता हूँ तो बडा खेद होता है कि जिस स्त्रीसे उत्पन्न हुआ वहीं आसक्त होजाता है और फिर २ उसकी ओर दौडता है । कैसा अज्ञान है ॥१६॥

भगादिकुचपर्यन्तं संविद्धि नरकार्णवम् ।
ये रमन्ति पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

भगादिकुचपर्यन्तम्, संविद्धि, नरकार्णवम्, ये, रमन्ति, पुनः, तत्र, तरन्ति, नरकम्, कथम् ॥

पदार्थः।

भगादिकुचपर्यन्तम् = भगादिसे लेकर कुचों पर्यंत	तत्र=तिसीमें
नरकार्णवम्=नरकका समुद्र तिसको	रमन्ति=रमण करते हैं
संविद्धि=सम्यक् तू जान	नरकम्=नरकको
ये=जो पुरुष	कथम्=किस प्रकार वह
पुनः=फिर उसीसे पैदा होकर फिर	तरंति=तरजाते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह स्त्री भग आदिसे लेकर स्तनोंतक नरकरूप समुद्र है। जो मनुष्य एक समय (गर्भस्थिति) वहां रहकर भी फिर वहीं रमते हैं फिर वह नरकसे अलग कैसे होसकते हैं॥ १७॥

विष्ठादिनरकं घोरं भगं च परिनिर्मितम्।
किमु पश्यसि रे चित्त कथं तत्रैव धावसि॥ १८॥

पदच्छेदः।

विष्ठादिनरकम्, घोरम्, भगम्, च, परिनिर्मितम्, किमु, पश्यसि, रे, चित्त, कथम्, तत्र, एव, धावसि॥

पदार्थः।

विष्ठादिनरकं घोरम् = विष्ठा आदिको करके घोर नरकरूप	किमु=तो फिर क्या तू उसमें
भगं च=स्त्रीकी भग	पश्यसि=क्या देखता है और
परिनिर्मितम्=रचित है	कथम्=किस लिये
रे चित्त=हे चित्त !	तत्र=तिसीकी तरफ
	धावसि=दौडता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—विष्ठा मूत्र इत्यादि ही नरकोंमें भरे रहते हैं स्त्रीकी योनि भी ऐसे अशुद्ध पदार्थोंसे घिरीहुई है, हे अधम चित्त ! तू उसको क्यों देखता है उसकी ओर तृष्णासे दौडा जाता है॥ १८॥

भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च ।
खण्डितं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

भगेन, चर्मकुण्डेन, दुर्गन्धेन, व्रणेन, च, खण्डितम्, हि, जगत्, सर्वम्, सदेवासुरमानुषम् ॥

पदार्थः ।

चर्मकुण्डेन=चर्मका एक कुण्डरूप
भगेन=जो स्त्रीका भग है वह
दुर्गन्धेन=दुर्गन्धिका घर है और
व्रणेन=घावकी तरह अर्थात् जैसे किसी पुरुषको शस्त्रके लगनेसे घाव होजाता है उसीके आकारवाली है उसी भग करके
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्
खण्डितम्=नाशको प्राप्त होरहा है
सदेवासुरमानुषम्=देवता असुर और मनुष्य सहित

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-चमडेके कुण्डरूपी दुर्गन्ध तथा घावके आकारवाले स्त्रीके भगसे देवता दानव और मनुष्योंके सहित यह जगत् खण्डित हुआ है इसीके कारण इन्द्रको गौतमकी स्त्रीके पीछे सहस्र भगका शाप हुआ असुरोंके राजा शुंभ निशुंभ भी इसीपर आपसमें लडकरके मर गये मनुष्योंमें वाली इसीपर मारागया और बहुतसे इसीपर लडकरके कटगये ॥ १९ ॥

देहार्णवे महाघोरे पूरितं चैव शोणितम् ।
केनापि निर्मिता नारी भगं चैव अधोमुखम् ॥२०॥

पदच्छेदः ।

देहार्णवे, महाघोरे, पूरितम्, च, एव, शोणितम्, केन, अपि, निर्मिता, नारी, भगम्, च, एव, अधोमुखम् ॥

पदार्थः ।

देहार्णवे=स्त्रीके शरीररूपी समुद्रमें
महाघोरे=महान् घोर नरकरूपमें
च=और
एव=निश्चयकरके
शोणितस्य=रुधिर
पूरितम्=भरा हुआ है
अपि=निश्चयकरके
केन=किसने
नारी निर्मिता=स्त्री रची गयी है जिसने इसके शरीरमें
भगं च=भगको
अधोमुखम्=अधोमुख किया है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह शरीररूपी समुद्र बडा भयंकर है यह लोहूसे भरा हुआ है, इससे किसीने स्त्रीको ऐसा विचित्र बनाया है कि उसका गुप्त इन्द्रिय नीचे मुखवाला होता है। प्रयोजन यह है कि, ब्रह्माने स्त्रीको बनाकर यह स्पष्ट सूचित किया है कि, जिस स्त्रीको कामीलोग बडी प्यारी समझते हैं वह मांस, रक्त, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओंकी बनी है उसको छूनेमें भी घृणा होनी चाहिये ॥ २० ॥

अन्तरे नरकं विद्धि कौटिल्यं बाह्यमण्डितम् ।
ललितामिह पश्यन्ति महामन्त्रविरोधिनीम् ॥२१॥

पदच्छेदः ।

अन्तरे, नरकम्, विद्धि, कौटिल्यम्, बाह्यमण्डितम्, ललिताम्, इह, पश्यन्ति, महामन्त्रविरोधिनीम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस संसारमें
महामन्त्रविरोधिनीम्=संसारसे छूटनेके लिये जो कि महान् मन्त्र वैराग्य है उसका विरोधी जो राग है उससे युक्त
ललिताम्=स्त्रीको
पश्यंति=देखता है जिसके
अन्तरे=शरीरके भीतर
नरकम्=नरकको
विद्धि=तू जान और
कौटिल्यम्=कुटिलता करके युक्त
बाह्यमण्डितम्=ऊपरसे भूषित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इन्द्रायणका फल बाहरसे बडा मनोहर देख पडता है और भीतर दुर्गन्धि तथा कुरूपपूर्ण है, स्त्री भी ठीक इसी प्रकार भीतर मल मूत्र आदि अपवित्र पदार्थोंसे पूर्ण तथा कुटिलतासे भरी हुई है और बाहरसे सुन्दरी देख पडती है यह ब्रह्मविचारकी शत्रु है इस कारण बुद्धिमान् लोग इसे दूरसेही छोड देते हैं ॥ २१ ॥

अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम् ।
अहो जातो रतस्तत्र अहो भवविडम्बना ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अज्ञात्वा, जीवितम्, लब्धम्, भवः, तत्र, एव, देहिनाम्, अहो, जातः, रतः, अहो, भवविडम्बना ॥

पदार्थः ।

अज्ञात्वा=आत्माको न जानकरके
तत्र=उस स्त्रीमें
जीवनम्=जीवन
लब्धम्=लाभकिया
तत्र एव=उसी स्त्रीमें ही
भवः=जन्म हुआ
देहिनाम्=देहधारियोंका
अहो जातः=बडा आश्चर्य और हुआ
तत्र=उसीमें
रतः=फिरभी प्रीतियुक्त हुआ
अहो भवविडम्बना=संसारकी विडम्बना वडी आश्चर्यरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मस्वरूप न जानकर जन्म लिया जन्म भी उसी अनर्थमूलक स्त्रीमें लिया वस्तु दो भूलोंके होनेपर भी यदि फिर आत्माके जाननेका यत्न करते तब भी कल्याण था पर उलटा उसी स्त्रीमें आनन्द करने लगा अहो इस जन्ममरणरूपी संसारमें कैसा तिरस्कार है ॥ २२ ॥

तत्र मुग्धा रमन्ते च सदेवासुरमानवाः ।
ते यान्ति नरकं घोरं सत्यमेव न संशयः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्र, मुग्धाः, रमन्ते, च, सदेवासुरमानवाः, ते, यान्ति, नरकम्, घोरम्, सत्यम्, एव, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

तत्र=तिसी स्त्रीमें	घोरम्=घोर
मुग्धाः=मूढबुद्धिवाले	नरकम्=नरकको
सदेवासुरमानवाः=देवतों और असुरों तथा मनुष्योंके सहित	यान्ति=गमन करते हैं
रमन्ते=रमण करते हैं	सत्यम् एव=निश्चयकरके यह सत्य है
ते=वे सब	न संशयः=इसमें संशय नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मज्ञान न होनेसे ही स्त्रीके गर्भमें वास हुआ वहीं जन्म पाया, बडे आश्चर्यकी बात है कि, गर्भवासका दुःख जानता हुआ भी फिर उसीमें आसक्त होगया यह कैसी संसारकी लज्जाकी बात है यदि मनुष्यको केवल १० महीने गर्भमें रहनेके कष्टका स्मरण रहे तो कभी संसारकी इच्छा न करे ॥२३॥

अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः ।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निकुण्डसमा, नारी, घृतकुम्भसमः, नरः, संसर्गेण, विलीयते, तस्मात्, ताम्, परिवर्जयेत् ॥

पदार्थः ।

अग्निकुण्डसमा नारी=अग्निके कुण्डके समान स्त्री है	विलीयते=पिघल जाता है
घृतकुम्भसमः=घृतके कुम्भके समान	तस्मात्=तिसी कारणसे
नरः=पुरुष है	ताम्=उस स्त्रीको
संसर्गेण=सम्बन्धसे	परिवर्जयेत्=त्याग कर देवे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इन्द्रायणका फल वाहरसे बडा मनोहर देख पडता है और भीतर दुर्गन्धि तथा कुरूपपूर्ण है, स्त्री भी ठीक इसी प्रकार भीतर मल मूत्र आदि अपवित्र पदार्थोंसे पूर्ण तथा कुटिलतासे भरी हुई है और वाहरसे सुन्दरी देख पडती है यह ब्रह्मविचारकी शत्रु है इस कारण बुद्धिमान् लोग इसे दूरसेही छोड देते हैं ॥ २१ ॥

अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम् ।
अहो जातो रतस्तत्र अहो भवविडम्बना ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अज्ञात्वा, जीवितम्, लब्धम्, भवः, तत्र, एव, देहिनाम्, अहो, जातः, रतः, अहो, भवविडम्बना ॥

पदार्थः ।

अज्ञात्वा=आत्माको न जानकरके
तत्र=उस स्त्रीमें
जीवनम्=जीवन
लब्धम्=लाभकिया
तत्र एव=उसी स्त्रीमें ही
भवः=जन्म हुआ
देहिनाम्=देहधारियोंका
अहो जातः=बडा आश्चर्य और हुआ
तत्र=उसीमें
रतः=फिरभी प्रीतियुक्त हुआ
अहो भवविडम्बना=संसारकी विडम्वना वडी आश्चर्यरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मस्वरूप न जानकर जन्म लिया जन्म भी उसी अनर्थमूलक स्त्रीमें लिया वस्तु दो भूलेंके होनेपर भी यदि फिर आत्माके जाननेका यत्न करते तब भी कल्याण था पर उलटा उसी स्त्रीमें आनन्द करने लगा अहो इस जन्ममरणरूपी संसारमें कैसा तिरस्कार है ॥ २२ ॥

तत्र मुग्धा रमन्ते च सदेवासुरमानवाः ।
ते यान्ति नरकं घोरं सत्यमेव न संशयः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्र, मुग्धाः, रमन्ते, च, सदेवासुरमानवाः, ते, यान्ति, नरकम्, घोरम्, सत्यम्, एव, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

तत्र=तिसी स्त्रीमें
मुग्धाः=मूढबुद्धिवाले
सदेवासुरमानवाः=देवतों और असुरों तथा मनुष्योंके सहित
रमन्ते=रमण करते हैं
ते=वे सब
घोरम्=घोर
नरकम्=नरकको
यान्ति=गमन करते हैं
सत्यम् एव=निश्चयकरके यह सत्य है
न संशयः=इसमें संशय नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मज्ञान न होनेसे ही स्त्रीके गर्भमें वास हुआ वहीं जन्म पाया, बडे आश्चर्यकी बात है कि, गर्भवासका दुःख जानता हुआ भी फिर उसीमें आसक्त होगया यह कैसी संसारकी लज्जाकी बात है यदि मनुष्यको केवल १० महीने गर्भमें रहनेके कष्टका स्मरण रहे तो कभी संसारकी इच्छा न करे ॥२३॥

अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः ।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निकुण्डसमा, नारी, घृतकुम्भसमः, नरः, संसर्गेण, विलीयते, तस्मात्, ताम्, परिवर्जयेत् ॥

पदार्थः ।

अग्निकुण्डसमा नारी=अग्निके कुण्डके समान स्त्री है
घृतकुम्भसमः=घृतके कुम्भके समान
नरः=पुरुष है
संसर्गेण=सम्बन्धसे
विलीयते=पिघल जाता है
तस्मात्=तिसी कारणसे
ताम्=उस स्त्रीको
परिवर्जयेत्=त्याग कर देवे

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—स्त्री आगकी भट्टीके समान है, पुरुष घीके घडेके समान है, उन दोनोंका संयोग होते ही काम विकार सिद्ध है इसलिये उन्नति चाहनेवाला पुरुष स्त्रीका परित्याग करे ॥ २४ ॥

गौडी पैष्टी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ॥२५॥

पदच्छेदः ।

गौडी, पैष्टी, तथा, माध्वी, विज्ञेया, सुरा, चतुर्थी, स्त्री, सुरा, ज्ञेया, यया, इदम्, मोहितम्, जगत्॥

पदार्थः ।

त्रिविधा=तीन प्रकारकी	चतुर्थी=चौथी
सुरा=शराव	स्त्री=स्त्रीको
विज्ञेया=जानो	सुरा ज्ञेया=शराव जानो
गौडी=एक गुडकी	यया=जिस स्त्रीरूपा मदिरा करके
पैष्टी=दूसरी जौकी	इदम्=यह
तथा=उसी प्रकार	जगत्=जगत् सब
माध्वी=तीसरी मौवेकी बनती है	मोहितम्=मोहको प्राप्त होरहा है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—गुड, आटा और मधुसे मद्य बनता है, यह अधम मद्य है परन्तु स्त्रीरूपी चौथा मद्य ऐसा प्रबल है कि जिसने यह संसार वशमें कर लिया है आशय यह है कि ऊपर कही हुई तीन शराब तो पीकर नशा करती हैं परन्तु यह स्त्रीरूप मद्य ऐसा विचित्र है कि,देखनेसे ही मनुष्यको उन्मत्त कर देता है॥२५॥

मद्यपानं महापापं नारीसङ्गस्तथैव च ।
तस्माद्द्वयं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवेन्मुनिः ॥२६॥

पदच्छेदः ।

मद्यपानम्, महापापम्, नारीसंगः, तथा, एव, च, तस्मात्, द्वयम्, परित्यज्य, तत्त्वनिष्ठः, भवेत्, मुनिः ॥

पदार्थः।

मद्यपानं=जिस प्रकार शराबपीना
महापापम्=महान् पापरूपी है
नारीसंगः=स्त्रीका संग भी
एव=निश्चयकरके [रूपही है
तथा=वैसाही है अर्थात् महापाप-
तस्मात्=तिसी कारणसे
द्वयम्=इन दोनोंका परित्याग करके
मुनिः=मुनि
तत्त्वनिष्ठः=आत्मनिष्ठावाला
भवेत्=होवे

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहते हैं--शराब पीना और स्त्रीका प्रसंग करना बडा पाप है इससे इन दोनोंको छोडकर मुनि तत्त्वज्ञानयुक्त होवै ॥ २६ ॥

चिन्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् । तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ॥ २७ ॥

चिन्ताक्रान्तम्, धातुबद्धम्, शरीरम्, नष्टे, चित्ते, धातवः, यान्ति, नाशम्, तस्मात्, चित्तम्, सर्वतः, रक्षणीयम्, स्वस्थे, चित्ते, बुद्धयः, संभवन्ति ॥

चिन्ताक्रांतम्=चिन्तासे दबाया हुआ चित्त जब कि अतिदुःखित होता है तब तिसकालमें
नष्टे चित्ते=चित्तके नाश होनेपर
धातुबद्धम्=धातुवोंकरके बांधाहुआ शरीर भी नष्ट होजाताहै
धातवः=सब धातु भी शरीरकी
नाशम्=नाशको
यान्ति=प्राप्त हो जाती हैं
तस्मात्=तिसी कारणसे
चित्तम्=चित्तकी
सर्वतः=सर्व ओरसे रक्षा करनी चाहिये क्योंकि
स्वस्थे चित्ते=चित्तके स्वस्थ होनेपर
बुद्धयः=सारअसारको विचारनेवाली
संभवन्ति=उत्पन्न होती हैं [बुद्धियें.

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-प्राणियोंका देह जो कि रस, रक्त, मांस,चर्बी, हड्डी, मज्जा और शुक्रसे बँधाहुआहै वह बहुत फिकर करनेसे मनका नाश कर देता है, मनके नाश होनेसे धातुओंका नाश होजाता है, इस लिये सावधानीसे चित्तकी रक्षा करनी चाहिये मनके दोष रहित होनेसे बुद्धि ठीक रहती है ॥२७॥

दत्तात्रेयावधूतेन निर्मितानन्दरूपिणा ।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेषां नैव पुनर्भवः ॥ २८ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मसँविंत्त्युपदेशेष्टमोऽध्यायः ॥८॥

पद०--दत्तात्रेयावधूतेन, निर्मिता, आनंदरूपिणा, ये, पठन्ति, च, शृण्वन्ति, तेषाम्, न, एव, पुनर्भवः ॥

दत्तात्रेयावधूतेन } =श्रीस्वामीदत्तात्रेयजी अवधूतने
आनन्दरूपिणा=आनन्दरूपने
निर्मिता=इस अवधूतगीताकानिर्माण किया है
ये=जो मुमुक्षुजन
पठन्ति=इसका पाठ करते हैं
च=और
शृण्वन्ति=या इसको श्रवण करते हैं
तेषाम्=उनका
पुनर्भवः=पुनर्जन्म फिर
एव=निश्चयकरके
न=नहीं होता है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं--आनन्दमूर्ति श्रीदत्तात्रेय योगिराजने यह अवधूतगीता बनाई है जो इसको पढते हैं अथवा किसीसे सुनते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २८ ॥

उन्नीसौं छचासठि सँव्वत, भाद्र द्वादशी शुद्ध ।
ग्रंथ यहै पूरण भयो, जानहु सकल सुबुद्ध ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.